॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ श्री विवेकचूड़ामणिः॥

श्री आद्य शंकराचार्य विरचित

॥श्री विवेक चूड़ामणिः॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

विषय अनुक्रमणिका

मंगलाचरण 7

मनुष्य का जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है 7

बंधनों में आस्था नहीं रखनी चाहिए 9

आत्मज्ञान होने से ही मोक्ष प्राप्त होता है 10

काम्यकर्म मोक्ष का कारण नहीं है 10

मनुष्य को अपनी मुक्ति का उपाय करना चाहिए 11

सांसारिक दुखों का नाश आत्मज्ञान से ही संभव है 13

आत्मज्ञान के अधिकारी तथा साधन 14

मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन भक्ति है 21

तत्वज्ञान में गुरु ही सहायक है 22

तत्वज्ञान में गुरु का कर्तव्य 26

शिष्य का प्रश्न 30

गुरु का शिष्य को साधुवाद 31

मोक्ष, आत्मबंधन, आत्म स्वरुप तथा आत्म ज्ञान प्रप्ति 32

वाक् कुशलता मोक्ष प्राप्त का साधन नहीं है 35

विद्या प्रप्ति का मुख फल ब्रह्मज्ञान है 35

केवल ब्रह्म शब्द से मोक्ष प्राप्त नही होता 37

मोक्ष के साधन 40

स्थूल शरीर का वर्णन 42

विषयों का त्याग ही मोक्ष का कारण है..... 46
केवल शरीर का पोषण करना आत्मघातक है 47
स्थूल शरीर नश्वर है..... 49
ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों का विषय 51
अंत: करण का विषय 52
पञ्च प्राण का भेद 53
लिंग शरीर और सूक्ष्म शरीर..... 54
आत्मा निर्लेप है 56
माया का स्वरुप 59
रजोगुण का धर्म..... 61
तमोगुण का धर्म..... 62
सत्वगुण का धर्म..... 64
आत्मा – अनात्मा का स्वरुप..... 66
परमात्मा का स्वरुप..... 67
आत्मा का स्वरुप..... 72
तमोगुण से मोहित हुए मनुष्यों की स्थिति..... 75
रजोगुण से मोहित हुए मनुष्यों की स्थिति 76
संसार वृक्ष का स्वरुप..... 79
अन्नमय कोश का विचार 83
प्राणमय कोश का विचार 89

मनोमय कोश का विचार 90
मनोमय कोश का विचार 91
विज्ञानमय कोश का विचार 99
परमात्म तत्व से बद्ध आत्मा के विषय में शिष्य का प्रश्न 103
गुरु का उत्तर 104
आत्म स्वरुप के विषय में शिष्य का प्रश्न 113
गुरु का उत्तर 113
महावाक्य का विचार 127
ब्रह्म विचार का वर्णन 132
देहाभि मान का त्याग करने की आवश्यकता 140
जगत रुपी भ्रम के त्याग की आवश्यकता 145
शरीर और अहंकार का त्याग करने की आवश्यकता 153
वासना के उन्मूलन की आवश्यकता 161
ब्रह्म विचार में प्रमाद करने से हानि 165
वैराग्य व् बोध की आवश्यकता 171
देहात्मा बुद्धि का त्याग करने की आवश्यकता 178
आत्म विचार तथा ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति 182
मौन तथा वैराग्य धारण करने की आवश्यकता तथा फल 189
चित्त के साथ परब्रह्म के लय का विषय 195
पूर्ण ब्रह्म प्रप्ति का उपदेश 206

वैराग्य तथा ज्ञान, अज्ञान का फल 216
ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त जीवन्मुक्त के लक्षण 219
अद्वैत का उपदेश 228
क्या मिथ्या है? 239
ब्रह्म ज्ञान उपदेश का उपसंहार 241
ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होने पर शिष्य द्वारा अपनी अवस्था का वर्णन 245
कृतज्ञ शिष्य का गुरु को नमस्कार 263
गुरु का पुन: शिष्य को उपदेश 265
कृत्य कृत्य होकर शिष्य का गुरु को पुन: प्रणाम 291
विवेक चूड़ामणि ग्रन्थ का उपसंहार 292

॥ॐ श्री गणेशाय नमः॥
॥श्री हरि शरणम्॥

॥ श्री विवेक चूड़ामणिः ॥

मंगलाचरण

मंगल सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम्॥ १॥

मंगल, सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरम्, तम्, अगोचरम् ।
गोविन्दम्, परमानन्दम्, सद्गुरुम्, प्रणतः, अस्मि, अहम्॥ १॥

सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्रों के जो सिद्धान्त वाक्य है, उस वाक्य के विषय और इन्द्रियों से अगोचर परमानन्दस्वरूप सदगुरु श्री गोविन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १॥

मनुष्य का जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्मादैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् ।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति
मुक्ति! शतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते॥२॥

जन्तूनाम्, नरैजन्म, दुर्लभम्, अतः, पुंस्त्वम्, ततः, विप्रता,
तस्मात्, वैदिकधर्ममार्गपरता, विद्वत्त्वम्, अस्मात्, परम् ।
आत्मानात्मविवेचनम्, स्वनुभवः, ब्रह्मात्मना, संस्थितिः,
मुक्तिः, नो, शतजन्मकोटिसुकृतैः, पुण्यैः, विना, लभ्यते॥ २॥

सर्वप्रथम तो चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कार मनुष्य शरीर प्राप्त होना ही दुर्लभ है, यदि दैवयोग से मनुष्य शरीर प्राप्त हो भी गया तो भी समस्त कर्मों के अधिकारी ब्राह्मण होना दुर्लभ है, ब्राह्मण होने पर भी वैदिक धर्म का अनुगामी होना कठिन है, वैदिक धर्म होने पर भी विद्वान् होना दुर्लभ है, यह सब कुछ प्राप्त होने पर भी आत्मा और अनात्मा वस्तु का यथार्थ विवेक दुर्लभ है, आत्म अनात्म विवक होने पर भी उसे स्वयं अनुभव करना दुर्लभ है, अनुभव होने पर भी 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी स्थिति होना दुर्लभ है। देवाधीन यह सब होने पर भी करोड़ों जन्मों के द्वारा किए हुए पुण्यसमूह की सहायता के बिना मोक्ष प्राप्त होना नहीं हो सकता॥ २॥

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥ ३॥

दुर्लभम्, त्रयम्, एँव, एतद्, देवानुग्रहहेतुकम्,
मनुष्यत्वम्, मुमुक्षुत्वम्, महापुरुषसंश्रयः॥ ३॥

समस्त वस्तुओ यह तीन वस्तु परम दुर्लभ हैं – प्रथम मनुष्य होना, दूसरा मोक्ष की इच्छा होना और तीसरा महान पुरुषों का संग । इनकी प्रप्ति केवल भगवद कृपा से ही संभव है।॥ ३॥

बंधनों में आस्था नहीं रखनी चाहिए

लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम् ।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्॥ ४॥

लब्ध्वा, कथंचित्, नरजन्म, दुर्लभम्, तत्र, अपि, पुंस्त्वम, श्रतिपारदर्शनम।
यः, आत्ममुक्तौ, यतेत, मूढधीः, सः, हि, आत्महा, स्वम्, विनिहन्त, असद्ग्रहात्॥ ४॥

पूर्वजन्मके पुण्यपुंज से परम दुर्लभ मनुष्य जन्म और वेदान्त शास्त्र के यथार्थ सिद्धान्तों को जानकर जो मनुष्य अपनी मुक्ति होने का उपाय नहीं करता और केवल सांसारिक अनित्य बन्धनों में ही आस्था रखता है वह निश्चय ही मूर्ख बुद्धि और साक्षात् आत्मघाती है॥ ४॥

इतः कोऽन्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम्॥ ५॥

इतः, कैः, नु, अस्ति, महात्मा, यः, तु, स्वार्थे, प्रमाद्यति ।
दुर्लभं, मानुषं, देहं, प्राप्य, तत्र, अपि, पौरुषम्॥ ५॥

उससे अधिक मूढ कौन होगा जो दुर्लभ मनुष्य शरीर और पुरुषार्थ पाकर भी अपना प्रयोजन सिद्ध करने में आलस्य करता है॥ ५॥

आत्मज्ञान होने से ही मोक्ष प्राप्त होता है

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः,
त्मैक्यबोधेन विनापि मुर्क्तिन सिद्ध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि॥ ६॥

वदन्तु, शास्त्राणि, यर्जन्तु, देवान्, कुर्वन्तु, कर्माणि, भजन्तु, देवताः।
आत्मैक्यबोधेन, विना, अपि, मुक्ति, न, सिद्धयति, ब्रह्मशतान्तरे, अपि॥ ६॥

शास्त्रों की व्याख्या से, यज्ञ द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने से, काम्य कर्मों के करनेसे और देवताओं का भजन करने पर भी, जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता, तब तक सैंकड़ों ब्रह्म बीतने पर भी मुक्ति नहीं होती अर्थात केवल आत्मज्ञान होने से ही मोक्ष प्राप्त होता है॥ ६॥

काम्यकर्म मोक्ष का कारण नहीं है

अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेनेत्येव हि श्रुतिः ।
ब्रवीति कर्मणो मुक्तेरहेतुत्वं स्फुटं यतः॥७॥

अमृतत्वस्य, न, आशा, अस्ति, वित्तेन, इति, एव, हि, श्रुतिः ।

ब्रवीति, कर्मणः, मुक्तेः, अहेतुत्वं, स्फुटं, यंतः॥ ७॥

श्रुति स्पष्ट रूप से कहती हैं कि जिस प्रकार 'धन से अमरत्व की आशा नहीं है' उसी प्रकार 'यज्ञ आदि कर्म करने से मोक्ष प्राप्त नहीं होता' इससे यह स्पष्ट है कि काम्यकर्म मोक्ष का कारण नहीं है॥ ७॥

मनुष्य को अपनी मुक्ति का उपाय करना चाहिए

अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वान् संन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृहः सन् ।
सन्तं महान्तं समुपेत्य देशिकं तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा॥ ८॥

अंतः, विमुक्त्यै, प्रयतेत, विद्वोन्, संन्यस्तबाह्यार्थसुखस्पृहः, सन् ।
सन्तम्, महान्तम्, समुपेत्य, देशिकम्, तेने, उपदिष्टार्थसमाहितात्मा॥ ८॥

इसलिये संत शिरोमणि महात्मा उपदेष्टा गुरु की शरण में जाकर और गुरुके उपदेशों में मनोयोग से समाहित होकर और बाह्य विषयों के सुख की इच्छा त्याग कर मोक्ष प्राप्त करने का सर्वथा उपाय करना सबको उचित है॥ ८॥

उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ ।
योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया॥ ९॥

उद्धरेत, आत्मना, आत्मनं, मग्नं, संसारवारिधौ ।
योगारूढत्वं, औसाद्य, सम्यग्दर्शननिष्ठया॥ ९॥

मोक्ष प्राप्त करने का उपाय यही है कि शास्त्रों में विश्वास करके और चित्तवृति का निरोध कर संसार समुद्र में डूबे हुए आत्मा का अपने आप ही उद्धार करना चाहिए॥९॥

संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये ।
यत्यतां पण्डितैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितैः॥ १०॥

संन्यस्य, सर्वकर्माणि, भवबन्धविमुक्तये ।
यत्यतां, पण्डितैः, धीरैः, आत्माभ्यासे, उपस्थितैः॥ १०॥

संसार बन्धनसे मुक्त होनेके लिये धैर्यवान् विद्वानों को सम्पूर्ण कर्मों को त्याग कर आत्मज्ञान का अभ्यास करना चाहिए॥ १०॥

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्मकोटिभिः॥ ११॥

चित्तस्य, शुद्धये, कर्म, न, तु, वस्तूपलब्धये ।
वस्तु सिद्धिः, विचारेण, न, किंचित्, कर्मकोटिभिः॥ ११॥

कर्म करने से आत्मसाक्षात्कार नहीं होता केवल चित्त की शुद्धि ही कर्मों का फल है आत्मसाक्षात्कार तो केवल ज्ञान से ही संभव है और करोडों कर्म करने पर आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता॥ ११॥

सांसारिक दुखों का नाश आत्मज्ञान से ही संभव है

सम्यग्विचारतः सिद्धा रज्जुतत्त्वावधारणा,
भ्रान्तोदितमहासर्पभयदुःखविनाशिनी॥ १२॥

सम्बग्विचारतः, सिद्धा, रज्जुतत्त्वावधारणा ।
भ्रान्तोदित महासर्पभयदुःखविनाशिनी॥ १२॥

जैसे रज्जु में जो सर्प का भ्रम होता है उसको यथार्थ विचार करने से सर्प का जो भयरुपी दुःख है उसको नाश करनेवाला रज्जु का यथार्थ ज्ञान ही होता है। वैसे ही संसार के दुखों का नाश करनेवाला आत्मज्ञान ही होता है॥ १२॥

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारण हितोक्तितः ।
न स्नानेन न दानेन प्राणायामशतेन वा॥ १३॥

अर्थस्य, निश्चयः, दृष्टः, विचारेण, हितोक्तितः ।
न, स्नानेन, न, दानेन, प्राणायामशतेन, वा॥ १३॥

स्नान करने से, दान करने से अथवा सैकड़ों प्राणायाम करनेसे आत्मज्ञान नहीं होता किन्तु कल्याण प्रद उपदेशों और उक्तियों द्वारा विचार करने से तत्त्व ज्ञान होता है॥ १३॥

अधिकारिणमाशास्ते फलसिद्धिर्विशेषतः ।

उपाया देशकालाद्याः सन्त्यस्मिन्सहकारिणः॥१४॥

अधिकारिणम्, आशास्ते, फलासद्धिः, विशेषतः,
उपायाः, देशकालाद्याः, सन्ति, अस्मिन्, सहकारिणः॥ १४॥

ब्रह्मज्ञानरूप जो फल की सिद्धि अधिकारी पुरुष को ही होती है और देश, पुण्यकाल, तीर्थभूमि का वास आदि यह सभी उपाय ब्रह्मज्ञान के सहायक होते हैं॥ १४॥

अतो विचारः कर्तव्यो जिज्ञासोरात्मवस्तुनः ।
समासाद्य दयासिन्धुं गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम्॥ १५॥

अतः, विचारः, कर्तव्यः, जिज्ञासोः, आत्मवस्तुनः ।
समासाद्य, दयासिन्धुम्, गुरुम्, ब्रह्मविदुत्तमम्॥ १५॥

इसलिए आत्मज्ञान की इच्छा करने वाले मनुष्य को दया के समुद्र ब्रह्मज्ञानी उत्तम गुरु के पास जाकर आत्मविचार करना उचित है॥ १५॥

आत्मज्ञान के अधिकारी तथा साधन

मेधावी पुरुषो विद्वानूहापोहविचक्षणः।

अधिकार्यात्मविद्यायामुक्तलक्षणलक्षितः॥१६॥

मेधावी, पुरुषः, विद्वान्, उहाँपोहविचक्षणः,
अधिकारी, मात्मविद्यायाम्, उक्तलक्षणलक्षितः॥ १६॥

आत्मविद्या का अधिकारी वही है जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है, तर्क शक्ति में चतुर है, गुरु के उपदेश मे और वेदवेदान्त में विश्वास रखता है और बाह्य विषयों वैराग्ययुक्त होकर लोभ रहित रहता है अर्थात विषया अभिलाषी लोभी पुरुष आत्मविद्या का अधिकारी कभी नहीं हो सकता॥ १६॥

विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः ।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता॥१७॥

विवकिनः, विरक्तस्य, शमादिगुणशालिनः ।
मुर्मुक्षोः, एवं, हि, ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता, मता॥ १७॥

आत्मअनात्म के विचार करनेवाला विरक्त, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा, इन छः गुणोंसे संयुक्त मुमुक्षु, अर्थात् मोक्ष की इच्छा करने वाला पुरुष ब्रह्मज्ञान के योग्य होता है॥ १७॥

साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः ।
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिद्धयति॥ १८॥

साधनानि, अत्र, चत्वारि, कथितानि, मनीषिभिः ।
येषु, सत्सु, एव, संनिष्ठा, यदभावे, ने, सिद्धयति॥ १८॥

चार प्रकार के साधनों का सम्पादन करने से आत्मतत्त्व मे स्थिरता होती है, ऐसा विद्वानजन कहते हैं। जिनको साधन प्राप्त नहीं हुआ उनकी आत्मतत्त्व में स्थिति नहीं हो सकती॥ १८॥

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते ।
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम्॥ १९॥

आदौ, नित्यानित्यवस्तुविवेकः, परिगण्यते ।
इहामुत्रफल भोगविरागः, तदनन्तरम्॥ १९॥

क्या नित्य वस्तु है और क्या अनित्य वस्तु है इसका विवेक होना पहला साधन है। दूसरा इहलोक और परलोक दोनों फलोंसे वैराग्य होना है।॥ १९॥

शमादिषट्कसंपत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः॥ २०॥

शमादिषट्कसंपत्तिः, मुमुक्षुत्वम्, इति, स्फुटम् ।
ब्रह्म, सत्यम्, जगत्, मिथ्या, इति, एवंरूपः, विनिश्चयः॥ २०॥

सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः ।

तदैराग्यं जिहासा या दर्शनश्रवणादिभिः॥ २१॥

सः, अयं, नित्या नित्य वस्तु विवेकः, समुदाहृतः ।
तत्, वैराग्यम्, जिहासा, या, दर्शनश्रवणादिभिः॥ २१॥

तीसरा शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान,श्रद्धा इन छःगुणों का सम्पादन करना है और मोक्ष की इच्छा करना चौथा साधन है । केवल एक ब्रह्ममात्र नित्य है ब्रह्म से अतिरिक्त अखिल जगत् मिथ्या है ऐसे निश्चय होना को ही नित्यानित्य वस्तुविवेक कहा जाता है॥ २०-२१॥

देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि ।
विरज्य विषयवातादोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः॥ २२॥

देहां दिब्रह्मपर्यन्ते, हि, अनित्ये, भोगैवस्तुनि ।
विरज्य, विषयवातात्, दोषदृष्टया, मुहुर्मुहुः॥ २२॥

देह आदि ब्रह्मपर्यन्त जितने भोग्य वस्तु हैं उनके श्रवण दर्शन की इच्छा न होने का नाम वैराग्य है । शमदम आदि जो छः सम्पत्ति का लक्षण कहते हैं – इन्द्रियों के जो विषय हैं॥ २२॥

स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शम उच्यते।
विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके॥ २३॥

स्वलक्ष्ये, नियतावस्था, मनसः, शमः, उच्यते ।
विषयेभ्यः, परावर्त्य, स्थापनं, स्वस्वगोलके,॥२३॥

उनसे सर्वथा विरक्त होकर आत्मवस्तु में चित्त को लगा देना इसी को शम कहते हैं। ज्ञान इन्द्रिय और कर्म इन्द्रिय इन दोनों इन्द्रियों का जो विषय है॥ २३॥

उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः ।
बाह्यानालंबनं वृत्तेरेवोपरतिरुत्तमा॥ २४॥

उभयेषा, इन्द्रियाणां, सः, दमः, परिकीर्तितः
बाह्यानालंबनं, वृत्ते, एषा, उपरतिः, उत्तमा॥ २४॥

उसे रोक कर इन्द्रियों को अपने स्थानपर स्थिर रखना इसको दम कहते हैं । विषयों से इन्द्रियों की वृत्ति की निवृति होना इसी का नाम उपरति है॥ २४॥

सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम् ।
चिन्ताविलापराहतं सा तितिक्षा निगद्यते॥ २५॥

सहनं, सर्वदुःखानां, अप्रैतीकारपूर्वकम् ।
चिन्ताविलाप रहितं, साँ, तितिक्षा, निगयते॥ २५॥

चिन्ता, विलाप और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किए सब प्रकार के दुःखों को सह लेने का नाम तितिक्षा है॥ २५॥

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्धयवधारणम्,
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते॥ २६॥

शास्त्रस्य, गुरुवाक्यस्य, सत्यबुद्धयवधारणम्,
सा, श्रद्धा, कथिता, सद्भिः, यया, वस्तु, उपलभ्यते॥ २६॥

शास्त्र तथा गुरु का वचन इनको सत्य समझ कर उसपर पूर्ण विश्वास करने को श्रद्धा कहते हैं॥ २६॥

सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा,
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्॥ २७॥

सर्वदा, स्थापनं, बुद्धेः, शुद्धे, ब्रह्माणि, सर्वदा,
तत्, समाधानं, इति, उक्तं, ने, तु, चित्तस्य, लालनम्॥ २७॥

चित्त की इच्छा पूर्ती छोड़ कर केवल शुद्धचैतन्य परब्रह्म में बुद्धि को सदा स्थिर रखने का नाम समाधान है॥ २७॥

अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान्,
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता॥ २८॥

अहंकारादिदेहान्तान्, बन्धान्, अज्ञानकल्पितान्,
स्वस्वरू पावबोधेन, मोक्तुं, इच्छा, मुमुक्षुता॥ २८॥

आत्मस्वरूप का बोध होने से, अहंकार आदि देह पर्यन्त जितने अज्ञान कल्पित बंधन हैं, उनसे मुक्त होने की जो इच्छा का नाम मुमुक्षुता है॥ २८॥

मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना,
प्रसादेन गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम्॥ २९॥

मन्द मध्यम रूपा, अपि, वैराग्येण, शमादिना,
प्रसादेन, गुरोः, सा, इयं, प्रवृद्धा, सूयते, फलम्॥ २९॥

यही मुमुक्षता वैराग्य और शम दम आदि छः संपत्ति, और गुरु का प्रसाद यह सब होने पर मन्द, मध्यम, उत्तम रूप क्रमसे बढती है तो आत्मस्व रूप प्राप्ति रूप फलको उत्पन्न करती है॥ २९॥

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते,
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः॥३०॥

वैराग्यं, च, मुर्मुक्षुत्वं, तीनै, यस्य, तुं, विद्युते,
तस्मिन्, एवं, अर्थवन्तः, स्युः, फलवन्तः, शमादयः॥ ३०॥

जिस पुरुष में वैराग्य और मोक्ष की इच्छा यह दोनों तीव्र होते हैं उसी पुरुष में शम दम आदि आत्मबोध के उपाय सार्थक होकर आत्मज्ञानरूप फल प्रदान करता है॥ ३०॥

एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः,
मरौ सलिलवत्तत्र शमादेर्भानमात्रता॥ ३१॥

एतयोः, मन्दता, यत्र, विरक्तत्वमुमुक्षयोः,
मरौ, सलिलवत्, तत्र, शमादेः, भानमात्रता॥ ३१॥

जिस पुरुषमें वैराग्य और मोक्षकी इच्छा ये दोनों मन्द हैं उस पुरुषमें शम दम आदि उपाय मरु देश के जल समान निष्फल होते हैं। अर्थात् मरु देशमें वृष्टि होते ही जल सूख जाता है उस जल का कुछ भी लाभ नहीं होता वैसे ही वैराग्य के विना शम दम आदि उपाय निष्फल हो जाते हैं॥ ३१॥

मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन भक्ति है

मोक्षकारणसामग्यां भक्तिरेव गरीयसी,
स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते॥ ३२॥

मोक्षकारणसामग्यां, भक्तिः, एव, गरीयसी,
स्वस्वरूपानुसंधानं, भक्तिः, इति, अभिधीयते॥ ३२॥

मोक्षसाधन में जितने भी उपाय विद्यमान हैं उनमें सबसे श्रेष्ठ भक्ति है। अपने आत्म स्वरूप तत्व का ध्यान करना ही भक्ति अथव रामकृष्ण आदि सगुण ब्रह्म के रूपों का सदा चित्त में चिन्तन करना भी भक्ति है॥ ३२॥

स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे जगुः,
उक्तसाधनसंपन्नस्तत्वजिज्ञासुरात्मनः॥ ३३॥

स्वात्म तत्त्व अनुसन्धानं, भक्तिः, इति, अपरे, जगुः,
उक्त साध नसंपन्नः, तत्त्व जिज्ञासुः, आत्मनः॥ ३३॥

किसी किसी का मत है कि आत्मस्वरूप में रात दिन चित्त को लगाये रहना ही भक्ति है। उक्त साधन चतुष्टय आदि से सम्पन्न आत्मतत्व की जिज्ञासा रखने वाले अधिकारी को॥ ३३॥

तत्वज्ञान में गुरु ही सहायक है

उपसीदेद्गुरुं प्राज्ञं यस्माद्बन्धविमोक्षणम्,
श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः॥ ३४॥

उपसीदेत्, गुरुं, प्राज्ञं, यस्मात्, बन्धविमोक्षणम्,
श्रोत्रियः, अजिनः, अंकामहतः, यः, ब्रह्मवित्तमः॥ ३४॥

ब्रह्मनिष्ठ विद्वान गुरु की शरण में जाना उचित है जिसके अनुग्रह से संसार रूप बन्धन से मोक्ष होता है । वेद वेदान्त के यथार्थ ज्ञाता, पाप से रहित, निर्लोभी॥ ३४॥

ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः,
अहेतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम्॥ ३५॥

ब्रह्माणि, उपरतः, शान्तः, निरिन्धनः, ईव, अनलः,
अहेतुकदयासिन्धुः, बन्धुः, आनमतां, सताम्॥ ३५॥

तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रहप्रश्रयसेवनैः,
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मनः॥ ३६॥

तम्, आराध्य, गुरुं, भक्त्या, प्रहप्रश्रयसेवनैः,
प्रसन्नं, ते, अनुप्राप्य, पृच्छेत्, ज्ञातव्यं, आत्मनः॥ ३६॥

ब्रह्मज्ञानी, आत्मपरायण, निर्धूम अग्नि के समान शान्त, विना कारण दया के सिन्धु, शरणागत, सज्जनों के बन्धु, ऐसे गुरु देव के पास जाकर भक्ति सेवन, प्रणाम आदि शुश्रूषा आराधना से प्रसन्न करने के पश्चात आत्मतत्त्वज्ञान के निमित्त प्रश्न करना चाहिए॥ ३५-३६॥

स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धों कारुण्यसिन्धो पतितं भवाब्धौ,
मामुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्ट्या ऋज्व्यातिकारुण्यसुधाभिवृष्टया॥ ३७॥

स्वामिन्, नमः, ते, नतलोकबन्धो, कारुण्यसिन्धो, पतितं, भवाब्धौ,
मां, उद्धर, आत्मीयकटाक्षदृष्टया, ज्व्या, अंतिकारुण्यसुधाभिवृष्टया॥ ३७॥

तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास जाकर बडे विनीत भाव होकर गुरु से कहना चाहिए, हे स्वामिन् ! हे लोक के बंधु ! हे दया के सिंधु मैं संसारसमुद्र में डूब रहा हूँ, मेरा अपनी कृपा कटाक्ष दृष्टि से और दया सुधा वृष्टि से उद्धार कीजिये॥ ३७॥

दूर्वारसंसारदवाग्नितप्तं दोधूयमानं दुरदृष्टवातैः,
भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शरण्यमन्यद्यदहं न जाने॥ ३८॥

दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तं, दोधूयमानं, दुरदृष्टवातैः ।
भीतं, प्रपन्नं, परिपाहि, मुत्योः, शरण्यं, अन्यत्, यत्, अहं, न, जाने॥ ३८॥

हे दयासिन्धु ! जिससे छुटकारा पाना अत्यंत कठिन है, मैं उस संसार रूप दवाग्नि से दग्ध हूँ तथा दुर्भाग्य रूप प्रबल वायु से काँपता हूँ, मुझ शरणागत को आप मृत्यु भय से बचाइये क्योंकि आपके विना कोई अन्य रक्षक कोई मुझे दिखाई नहीं देता॥ ३८॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः,
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥ ३९॥

शान्ताः, महान्तः, निवसन्ति, सन्तः, वसन्तवत्, लोकहितं, चरन्तः,
तीर्णाः स्वयं, भीमभवार्णवं, जनान्, अहेतुनौं, अन्यान्, अपि, तारयन्तः॥ ३९॥

शान्त स्वभाव महात्मा लोग बडे भयानक संसार समुद्रसे स्वयं उत्तीर्ण होकर बिना कारण दया भावसे संसार समुद्र में बूडते हुये मनुष्योंको उद्धार करने के कारण संसारमें निवास करते हैं।॥३९॥

अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर श्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम्,
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल॥ ४०॥

अयं, स्वभावः, स्वतः, एँव, येत्, परश्रमापनोद प्रवणं, महात्मनाम् ।
सुंधांशुः, एषः, स्वयं, अर्ककर्कश प्रभाभितप्तां, भवति, क्षिति, किले॥ ४०॥

महात्माओं का तो यह स्वतः स्वभाव ही है जो दूसरे का दुःख दूर करने में तत्पर उसी प्रकार तत्पर होते हैं, जैसे सूर्य की प्रचण्ड किरणों से तपी हुई पृथ्वी को चन्द्रमा अपने सुधा संयुक्त किरणों से स्वयं ही शांत कर देता है॥ ४०॥

ब्रह्मानन्दरसानुश्रुतिकलितैः पूतैः
सुशीतैर्युतैर्युष्मदाकलशोज्झितैः श्रुतिसुखैर्वाक्यामृतैः सेचय,
संतप्तं भवतापदावदहनज्वालीभेरनं प्रभो धन्यास्ते
भवदीक्षणक्षणगतेः पात्रीकृताः स्वीकृताः ४१

ब्रह्मानंदरसानुभूतिकलितैः, पूतै, सुशीतैः, युतैः,
युष्म द्वाक्कलशोज्झितैः, श्रुतिसुखैः, वाक्यामृतैः, सेचये॥
संतप्तं, भवतापदावदहनज्वालाभिः, एनं, प्रभो, धन्याः, ते,

भव दीक्षणक्षणगतेः, पाँत्रीकृताः, स्वीकृताः॥ ४१॥

हे करुणाकर ! मैं संस्कारके दुःखरूप दावाग्नि की ज्वाला से पीडित हूँ मुझे शीतल ब्रह्मानन्द रस के आस्वादन से और मनोहर श्रुतियों से पवित्र कलशरूपी मुख से निकले हुए अपने श्रवण सुखद वचनामृत से सींचिये। वह वह मनुष्य धन्य हैं जो आपकी कृपा कटाक्ष दृष्टि से स्वीकृत हुए और ब्रह्मविद्या के पात्र बनाए गये॥ ४१॥

कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं का वा गतिर्मे कतमोस्त्युपायः,
जाने न किञ्चित्कृपयाव मां प्रभो संसारदुःखक्षतिमातनुष्य॥ ४२॥

कथं, तरेयं, भवसिन्धुं, एतं, का, वा, गतिः, में, कतमः, अस्ति, उपायः॥
जाने, न, किञ्चित्, कृपया, अर्व, मां, प्रभो, संसौरदुःखक्षतिं, आतनुष्य॥ ४२॥

हे दयासिंधु ! इस संसार सागर को मैं कैसे पार करूंगा! मेरी क्या गति होगी? और इसको पार करने का क्या उपाय है? मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। प्रभो ! इस सांसारिक दुःख से मेरी रक्षा कीजिए॥ ४२॥

तत्वज्ञान में गुरु का कर्तव्य

तथा वदन्तं शरणागतं स्वं संसारदावानलतापतप्तम्,
निरीक्ष्य कारुण्यरसादृष्ट्या दद्यादभीर्ति सहसा महात्मा॥ ४३॥

तथा, वदन्तं, शरणागतं, स्वं, संसारदांवानलतापतप्तं,

निरीक्ष्य, कारुण्यरसादृष्टया, दद्यात्, अभीति, सहसा, महात्मा॥ ४३॥

संसार ताप दावानल से संतप्त होकर विनीत भाव शरणागत हुए शिष्य को देखकर गुरु को उचित है कि, करुणा रसयुक्त आर्द्र दृष्टि दानसे शिष्य को अभय प्रदान करे॥ ४३॥

विद्वान्स तस्मा उपसत्तिमीयुषे मुमुक्षवे साधुयथोक्तकारिणे,
प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात्॥ ४४॥

विद्वान्, सः, तस्मै, उपसत्ति, ईयुषे, मुमुक्षवे, साधु यथोक्तकारिणे,
प्रशान्तचित्ताय, शमान्विताय, तत्त्वोपदेशं, कृपया, एवं, कुर्यात्॥ ४४॥

मोक्ष की इच्छा से शरणागत और आज्ञा पालन करने वाले प्रशान्तचित्त जितेन्द्रिय शिष्य पर दयाकार कर ब्रह्मविद्या का उपदेश करना विद्वान् ब्रह्मज्ञानी गुरु को उचित है॥ ४४॥

मा भैष्ट विदस्तव नास्त्यपायः संसारसिंधोस्तरणेऽस्त्युपायः,
येनैव याता यतयोऽस्य परं तमेव मार्ग तव निर्दिशामि॥ ४५॥

मा, भैष्ट, विद्वन्, तर्व, में, अस्ति, अपायः,
सारसिन्धोः, तरणे, अस्ति, उपायः,
येन, एवं, याताः, यतयः, अस्य, परं,
त, एवं, मार्ग, तव, निर्दिशीमि॥ ४५॥

हे विद्वन् ! तुम संसारी दुःख से मत डरो, तुम्हारा कभी नाश नहीं होगा, इस संसार समुद्र को पार करने का उपाय है। जिस उपाय से योगीजन इस दुःख से पार हुए वही उपाय मैं तुझे बतलाता हूँ। इस रीति से शिष्य को उपदेश करना गुरु को उचित है॥ ४५॥

अस्युपायो महान् कश्चित्संसारभयनाशनः,
तेन तीर्त्वा भवाम्भोधि परमानन्दमाप्स्यसि॥ ४६॥

अस्ति, उपायः, महान्, कश्चित्, संसारभयनाशनः॥
तेन, तीर्त्वा, भवाम्भोधि, परमानन्दं, आप्स्यसि॥ ४६॥

संसारी दुःख के विनाश एक सरल उपाय है, उसी उपाय से संसार समुद्र से पार होकर तुम परमानन्द को प्राप्त करोगे।॥ ४६॥

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम्,
तेनात्यन्तिकसंसारदुःखनाशो भवत्यनु॥ ४७॥

वेदान्तार्थविचारेण, जायते, ज्ञानं, उत्तमम्॥
तेन, आत्यन्तिक संसार दुःख नाशः, भवति, अनु॥ ४७॥

वेदान्त शास्त्र के अर्थ का विचार करने से उत्तम आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। इसी ज्ञान से निर्मूल दुःख नष्ट होता है। यही एक दुःख नाश होनेका परम उपाय है॥ ४७॥

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षोर्मुक्तेर्हेतून्यक्ति सा क्षाच्छ्रुतेर्गीः,
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य मोक्षोऽविद्याकल्पितादेहबन्धात्॥ ४८॥

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्, मुमुक्षोः, मुक्तेः, हेतून्, वक्ति, साक्षात्, श्रुतेः, गीः॥
यः, वै, एतेषु, ऐवे, तिष्ठति, अमुष्य, मोक्षः, अविद्यौंकल्पितात्, देहबन्धात्॥
४८॥

मोक्ष के विषय मे साक्षात् श्रुति कहती है कि श्रद्धा, भक्ति, ध्यान, योग, यह सभी मोक्ष में कारण हैं, इन सबका जो मनुष्य अनुष्ठान करता है वह अज्ञान कल्पित देह बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष पद को प्राप्त करता है॥ ४८॥

अज्ञानयोगात्परमात्मनस्तव ह्यनात्मबंधस्तत एव संसृतिः,
तयोविवेकोदितबोधवन्हिरज्ञानकार्य प्रदहेत्समूलम्॥ ४९॥

अज्ञानयोगात्, परमात्मनः, तव, हि, अनात्मबंधः, ततः, एवं, संसृतिः॥
तयोः, विवेकोदितंबोधवन्हिः, अज्ञानकार्य, प्रदेहेत्, समूलम्॥ ४९॥

तुम साक्षात् परब्रह्म हो, अज्ञान के संयोग होने से आत्मस्वरूप को भूलकर अनित्य वस्तुओं पर आसक्ति रखने से संसारी दुःख को भोगते हो। जब आत्म अनात्म वस्तु का विचार करने से बोध रूप अग्नि उत्पन्न होगी तो वही अग्नि अज्ञान के कार्य रूप संसार का समूल नाश कर देगा॥ ४९॥

शिष्य का प्रश्न

शिष्य उवाच,

शिष्य ने पूछा

कृपया श्रूयतां स्वामिन् प्रश्नोऽयं क्रियते मया,
यदुत्तरमहं श्रुत्वा कृतार्थः स्यां भवन्मुखात्॥ ५०॥

कृपया, श्रूयतां, स्वामिन्, प्रश्नः, अयं, क्रियते, मया॥
यदुत्तरं, अहं, श्रुत्वा, कृतार्थः, स्यां, भवन्मुखात्॥ ५०॥

हे स्वामिन् ! मैं आपसे यह प्रश्न करता हूँ, कृपया इस प्रश्न का उत्तर दीजिए। इस प्रश्न का उत्तर आपके मुखारविन्द से सुनकर मैं कृतार्थ हो जाऊंगा॥ ५०॥

को नाम बन्धः कथमेष आगतः कथं प्रतिष्ठाऽस्य कथं विमोक्षः,
कोऽसावनात्मा परमः क आत्मा तयोर्विवेकः कथमेतदुच्यताम्॥ ५१॥

कः, नाम, बन्धः, कथं, एषः, आगतः, कथं, प्रतिष्ठा, अस्य, कथं, विमोक्षः॥
कः, असौ, अनात्मा, परमः, कः, आत्मा, तयोः, विवेकः, कथं, एतद्, उच्यताम्॥ ५१॥

हे दयासिंधु ! यह देह रुपी बन्धन क्या वस्तु है ? कैसे यह स्थिर है? और कैसे इससे मोक्ष मिल सकता है ? आत्मवस्तु क्या है? अनात्म वस्तु क्या है और इन दोनों का विवेक कैसे होता है यह दया करके मुझसे कहिये॥ ५१॥

गुरु का शिष्य को साधुवाद

श्री गुरुवाच:

ऐसे विनीतभावसे युक्त शिष्य का वचन सुनके आचार्य बोले

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पावितं ते कुलं त्वया,
यदविद्याबन्धमुक्त्या ब्रह्मीभवितुमिच्छसि॥ ५२॥

धन्यः, असि, कृतकृत्यः, असि, पीवितं, ते, कुलं, त्वया॥
यदँ, अविद्याबन्धमुक्त्या, ब्रह्मीभवितुं, इच्छसि॥ ५२॥

तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो अर्थात जो तुमको करना चाहिये वह तुमने कर दिया, तुमसे तुम्हारा कुल पवित्र हो गया है क्योंकि तुम अज्ञान बन्धन से मुक्त होकर साक्षात् ब्रह्मभाव को प्राप्त होना की इच्छा करते हो॥ ५२॥

मोक्ष, आत्मबंधन, आत्म स्वरुप तथा आत्म ज्ञान प्रप्ति

ऋणमोचनकर्तारः पितुः सन्ति सुतादयः,
बन्धमोचनकर्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन॥ ५३॥

ऋणमोचनकर्तारः, पितुः, सन्ति, सुतादयः॥
बन्ध मोचन कर्ता, तु, स्वस्मात्, अन्यः, न, कश्चन॥ ५३॥

पिता का ऋण को चुकाने वाला तो पुत्र होता है पर संसार बन्ध से मुक्त करनेवाला अपने से भिन्न कोई अन्य नहीं होता अर्थात् अपने ही उद्योग से मोक्ष प्राप्त होता है॥ ५३॥

मस्तकन्यस्तभारादेर्दुःखमन्यैर्निवार्यते,
क्षुधादिकृतदुःखं तु विना स्वेन न केनचित्॥५४॥

मस्तकन्यस्तभारादेः, दुःखं, अन्यैः, निवार्यते॥
क्षुधादि कृतदुःखं, तु, विनीं, स्वेन, न, केनचित्॥ ५४॥

जैसे सर का बोझ दूसरा आदमी उतार ले तो वह दुःख दूर हो जाता है परन्तु भूख-प्यास से जो दुःख होता है वह दुःख दूसरे के भोजन कर लेने से दूर नहीं होता किन्तु केवल अपने ही भोजन करने से दूर होता है उसी प्रकार आत्मबन्धन अपने ही ज्ञान के सम्पादन से दूर होता है॥ ५४॥

पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन रोगिणा,
आरोग्यसिद्धिर्दृष्टास्य नान्यानुष्ठितकर्मणा॥ ५५॥

पथ्यं, औषधसेवा, चें, क्रियते, येन, रोगिणां॥
आरोग्यसिद्धिः, दृष्टी, अस्य, न, अन्यानुष्ठितकर्मणा॥ ५५॥

अथवा जैसे रोगी रोगविमुक्त होने के लिए पथ्य और औषध सेवन स्वयं करता है, उसी को आरोग्यता प्राप्त होती है परन्तु दूसरे के द्वारा पथ्य औषध सेवन कराए जाने से रोग कभी नहीं दूर होता॥ ५५॥

वस्तुस्वरूपं स्फुटबोधचक्षुषा स्वेनैव वेद्यं न तु पण्डितेन,
चन्द्रस्वरूपं निजचक्षुषैव ज्ञातव्यमन्यैरवगम्यते किम्॥ ५५॥

वस्तुस्वरूपं, स्फुटबोधचक्षुषा, स्वेने, एवं, वेद्यं, न, पण्डितेन॥
चन्द्रस्वरूपं, निजेचक्षुषा, एवं, ज्ञातव्यं, अन्यैः, अवगम्यते, किम॥ ५६॥

जैसे चन्द्रमा के शीतल स्वरूप का अनुभव अपने निर्मल नेत्र से ही होता है दूसरे के नेत्र से नहीं होता, उसी प्रकार विवेकी पुरुष को आत्मस्वरूप का अनुभव भी अपने ज्ञानरूप चक्षुओं से ही होता है॥ ५६॥

अविद्याकामकर्मादिपाशबन्धं विमोचितुम्,
कः शकुयादिनात्मानं कल्पकोटिशतैरपि॥ २७॥

अविद्या काम कर्मादि पाश बन्धं, विमोचितुम्॥
कः, शक्नूयात्, विना, आत्मानं, कल्पकोटिशतैः, अपि॥ ५७॥

अज्ञान, कामना तथा कर्म आदि पाश के बन्ध से मुक्त होने में आत्मज्ञान के सिवा कोई अन्य उपाय करोड़ों जन्म में भी समर्थ नहीं होता॥ ५७॥

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया,
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा॥५८॥

न, योगेनै, न, सांख्येनं, कर्मणा, नो, न, विद्यया॥
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन, मोक्षः, सिद्धयति, न, अन्यथा॥ ५८॥

मोक्ष न तो योगाभ्यास करने से, न सांख्यमत के अवलम्बन करने से, न यज्ञ आदि कर्म करने से और न ही अनेकों प्रकार की विद्या का अभ्यास करने से ही होता है। केवल जीव ब्रह्म में एकत्व बुद्धि अर्थात ब्रह्म और आत्मा की एकता के ज्ञान होने पर ही मोक्ष होता है।॥ ५८॥

वीणाया रूपसौन्दर्य तन्त्रीवादनसौष्ठवम्,
प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते॥ ५९॥

वीणायाः, रूपसौन्दर्य, तन्त्रीवादनसौष्ठवम्॥
प्रजा रञ्जनमात्रं, तत्, न, साम्राज्याय, कल्पते॥ ५९॥

जैसे वीणा का जो सुन्दर रूप है तथा वीणा का जो मनोहर शब्द है वह केवल मनुष्यों को प्रसन्न करने के लिए ही है इससे किसी साम्राज्य की प्राप्ति नहीं होती वैसे ही यज्ञ आदि कर्म करने से मोक्ष प्राप्त नहीं होता॥ ५९॥

वाक् कुशलता मोक्ष प्राप्त का साधन नहीं है

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्,
वैदुष्यं विदुषां तदद्भुक्तये न तु मुक्तये॥ ६०॥

वाग्, वैखरी, शब्दझरी, शास्त्र व्याख्यान कौशलम्॥
वैदुष्यं, विदुषां, तद्वत्, भुक्तये, न, तु, मुक्तये॥ ६०॥

उसी प्रकार पण्डितों की वाक कुशलता, शब्दों का चातुर्य, शक्त्रों की व्याख्या कुशलता यह सब विद्वता केवल अपनी उदरपूर्ति और भोग का ही कारण हो सकते हैं मोक्ष के नहीं॥ ६०॥

विद्या प्रप्ति का मुख फल ब्रह्मज्ञान है

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला,
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला॥६१॥

अविज्ञाते, परे, तत्त्वे शास्त्रांधीतिः, तु, निष्फला॥

विज्ञाते, अपि, परे, तत्त्वे, शास्त्रीधीतिः निष्फला॥ ६१॥

जिन विद्वानों को आत्मबोध नहीं हआ उन लोगों का शास्त्र पढना निष्फल है और यदि बिना पढ़े देवाधीन ब्रह्मज्ञान हुआ तब भी पढना निष्फल है इससे स्पष्ट हुआ कि पढ़ने का मुख्य फल ब्रह्मज्ञान ही है॥ ६१॥

शब्दजालं महारण्यं चित्त भ्रमण कारणम्,
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञैस्तत्त्वमात्मनः॥६२॥

शब्दजालं, महारण्यं, चित्त भ्रमण कारणम्॥
अतः, प्रयत्नात्, ज्ञातव्यं, तत्त्वज्ञैः, तत्त्वं, आत्मनः॥ ६२॥

शब्दसमूहरूप जो महावन है वह चित्त में भ्रम उत्पन्न होने का कारण है क्योंकि शास्त्रोंमें अनेक प्रकारकी बातें लिखी है। बुद्धिमानों को ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास जाकर आत्मविचार में श्रम कर प्रयत्न पूर्वक आत्मतत्व को जानना चाहिए॥ ६२॥

अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना,
किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रैः किमौषधैः॥६३॥

अज्ञानसर्पदष्टस्य, ब्रह्म ज्ञान औषधं, विना, किमु, वेदैः,
च, शास्त्रैः, च, किमु, मन्त्रैः, किं, औषधैः॥ ६३॥

अज्ञान रूप महासर्प द्वारा डसे गए मनुष्यों को मुक्त होने में ब्रह्मज्ञान ही परम औषध है।इसके बिना वेद, शास्त्र, मन्त्र, यन्त्र, इत्यादि से क्या लाभ॥ ६३॥

केवल ब्रह्म शब्द से मोक्ष प्राप्त नही होता

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्दतः,
विनाऽपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैन मुच्यते॥ ६४॥

न, गच्छति, विना, पानं, व्याधिः, औषधशब्दतः॥
विना, अपरोक्षानुभवं, ब्रह्मशब्दैः, न, मुच्यते॥ ६४॥

जैसे रोगी पुरुषो का रोग केवल औषधी का नाम सुन लेने से दूर नहीं होता किन्तु औषधी का सेवन करें से रोग दूर होता है। उसी प्रकार देह बन्ध से मुक्त होने के लिए केवल 'ब्रह्म ब्रह्म' उच्चारण करने से कोई मुक्त नहीं हो सकता अर्थात मुक्ति के लिए परोक्ष ब्रह्म का अनुभव करना ही परम उपाय है॥ ६४॥

अकृत्वा दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मनः॥
बह्मशब्दैः कुतो मुक्तिरुक्तिमात्रफलैर्नृणाम्॥ ६५॥

अकृत्वा, दृश्यविलयं, अज्ञात्वा, तत्त्वं, आत्मनः॥
ब्रह्मशब्दैः, कुतः, मुक्तिः, उक्तिमात्रफलैः, नीम्॥ ६५॥

स्थूल देह आदि जड़ समूह का ब्रह्मज्ञान से नाश किये बिना और आत्मतत्व को समझे बिना, केवल बाह्य शब्दों के उच्चारण से मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है क्योंकि बही शब्दों का फल तो केवल उच्चारण मात्र है ।॥ ६५॥

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाऽखिलभूश्रियम्,
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति॥ ६६॥

अकृत्वा, शत्रुसंहारं, अगत्वा, अखिलभूश्रियम्॥
राजा, अहं, इति, शब्दात्, नो, राजा, भवितुं, अर्हति॥ ६६॥

समस्त शत्रुओं का नाश किये विना और भूमण्डल का ऐश्वर्य प्राप्त किए बिना 'मैं राजा हूँ' । ऐसा कहने से जैसे कोई राजा नहीं बन जाता, उसी प्रकार आत्मतत्त्व को समझे बिना 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहनेसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता॥ ६६॥

आप्तोक्तिं खननं तथोपरिशिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृति
निक्षेपः समपेक्षते नहि बहिः शब्दैस्तु निर्गच्छति,
तद्ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिर्लभ्यते
मायाकार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभिः॥६७॥

आप्तोक्तिं, खननं, तथा, उपरिशिलाद्युत्कर्षणं, स्वीकृति,
निक्षेपः समपेक्षते, ने, हि, बहिः, शब्दैः, तु, निर्गच्छति
तदैत्, ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिः, लभ्यते,

मायाकार्यतिरोहितं, स्वं, अमलं, तत्त्वं, न, दुर्युक्तिभिः॥६७॥

जमीन में दबे हुए धन को प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार पहले किसी विश्वसनीय ज्ञाता पुरुष के कथन की औए उसके पश्च्यात पृथ्वी को खोदने की, फिर कंकड़ पत्थर आदि अलग करने की और उस धन को स्वीकार करके की आवश्यकता होती है। केवल उसके विषय में विचार करने से वह प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार माया के प्रपञ्चमे छिपा हुआ आत्मा का बोध गुरू के उपदेश, उसके अनुसार मनन, साधन इत्यादि किए विना, दुष्ट युक्तियो द्वारा, कभी प्राप्त नहीं होता॥ ६७॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तये,
स्वैरेव यत्नः कर्तव्यो रोगादाविव पण्डितैः॥६८॥

तस्मात्, सर्वप्रयत्नेन, भवबन्धविमुक्तये,
स्वैः, एव, यत्ने, कर्तव्यः रोगादौ, इवं, पण्डितैः॥ ६८॥

इसलिए संसार बन्ध से मुक्त होने के लिए स्वयं ही उपाय करना उचित है। जैसे रोग से मुक्त होने के लिए स्वयं किया हुआ पथ्याचरण औषधी सेवन इत्यादि हितकारी होता है।॥ ६८॥

यस्त्वयाद्य कृतः प्रश्नो वरीयाशास्त्रविन्मतः॥
सूत्रप्रायो निगूढार्थो ज्ञातव्यश्च मुमुक्षुभिः॥ ६९॥

यः, त्वया, अद्य, कृतः, प्रश्नः, वरीयान्, शास्त्रविन्मतः,
सूत्रप्रायः, निगूढार्थः, ज्ञातव्यः, चैं, मुमुक्षुभिः॥ ६९॥

जो प्रश्न अभी तुमने किया है वह अति उत्तम है। सर्व शास्त्र से सम्मत है। सूत्ररूप है अर्थात कम अक्षरों में अधिक अर्थ को समाहित किए हुए है। यह प्रश्न मोक्ष की इच्छा रखने वालो के लिए अवश्य जानने योग्य है॥ ६९॥

शृणुष्वावहितो विदन् यन्मया समुदीयते,
तदेतच्छ्रवणात्सद्यो भवबन्धादिमोक्ष्यसे॥ ७०॥

शृणुंष्व, अवहितः, विद्वैन्, यत्, भवा, समुदीर्यते,
तेत्, एतच्छ्रवणात्, सद्यः, भवबन्धात्, विमोक्ष्यसे॥ ७०॥

हे विद्वन् ! जो मैं कहता हूँ, वह अपने मन को स्थिर करके सुनो। इसके सुनने और इस पर विचार करने से तुम अवश्य हे संसार बन्ध से मुक्त हो जावोगे॥ ७०॥

मोक्ष के साधन

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु,
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा न्यासः प्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम्॥ ७१॥

मोक्षस्य, हेर्तुः, प्रथमः, निगद्यते, वैराग्यं, अत्यन्तं, अनित्यवस्तुषु॥
ततः, शंमः, च, अपि, दमः, तितिक्षा, न्यासः, प्रसक्ता खिल कर्मणां, भृशम्॥ ७१॥

मोक्ष का प्रथम कारण अनित्य वस्तुओं मे अत्यन्त वैराग्य होना है। दूसरा कारण विषयों से इन्द्रियों का निग्रह करना है। तीसरा शम, दम, तितिक्षा। चौथा शीत उष्ण सुख दुःख आदि को सहन करना। पाचवां समस्त आसक्ति युक्त कर्मों का त्याग करना है॥ ७१॥

ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्वध्यानं चिरं नित्यनिरन्तरं मुनेः,
ततोऽविकल्पं परमेत्य विदा निहैव निर्वाणसुखं समृच्छति॥ ७२॥

तंतः, श्रुतिः, तन्मननं, सतत्त्व ध्यानं, चिरं, नित्य निरंतरं, मुनेः॥
ततः, अविकल्पं, परं, एत्य, विद्वान्, इह, एँव, निर्वाणंसुखं, समृच्छति॥ ७२॥

इसके पश्च्यात गुरुमुख से ब्रह्म विद्या का श्रवण, आत्मवस्तु का अपने मन में विचार करना और आत्म तत्व का निरंतर ध्यान करना चाहिए। यह सभी जो मोक्ष के साधन हैं, इनको करने से वह विद्वान निर्विकल्प परब्रह्म अवस्था को प्राप्त होकर, इसी देह से ब्रह्मानन्द सुख को प्राप्त करता है।॥ ७२॥

यद्बोद्धव्यं तवेदानीमात्मानात्मविवेचनम्,
तदुच्यते मया सम्यक् श्रुत्वात्मन्यवधारय॥ ७३॥

यत्, बोद्धव्यं, तव, इदानीं, आत्मानात्मविवेचनम्॥
तत्, उच्यते, मया, सम्यक्, श्रुत्वा, आत्मनि, अवधारय॥ ७३॥

आत्म अनात्म वस्तु का विवेक जो तुम चाहते हो, वह मैं समझाता हूँ। इसको भली भाँती समझ कर, आत्मस्वरूप में तुम अपने चित्त को स्थिर करो॥ ७३॥

स्थूल शरीर का वर्णन

मज्जास्थिमेदापलरक्तचर्म त्वगाह्वयैर्धातुभिरेभिरन्वितम्,
पादोरुवक्षोभुजपृष्ठमस्तकै रङ्गैः रुपाङ्गरुपयुक्तमेतत्॥ ७४॥

मज्जा अस्थि मेदः पल रक्त चर्म त्वगाव्हयैः(त्वच आव्हय), धातुभिः, एभिः, अन्वितं॥
पादोरु वक्षो भुज पृष्ठ मस्तकैः, अंगैः, उपांगौः, उपयुक्तं, एतत्॥ ७४॥

मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त, चर्म और त्वचा, इस सात धातुओं से संयुक्त तथा पैर, जंघा, भुजा, वक्ष स्थल पृष्ठभाग और मस्तक इस सभी अंग उपांग संयुक्त।७४॥

अहं ममेति प्रथितं शरीरं मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः,
नभोनभवदहनांबुश्रुमयः सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि॥ ७५॥

अहं, मम, इति, प्रथितं, शरीरं, मोहीस्पदं, स्थूल, इति, ईर्यते, बुधैः॥

नभोनभस्वदहनांबुभूमयः (नभः नभस्वत् दहन अंबु भूमि), सूक्ष्माणि, भूतानि, भँवन्ति, तानि॥ ७५॥

अहंकार, ममता इत्यादि से प्रसिद्ध मोह का स्थान यह स्थूल शरीर कहा जाता है। आकाश, वायु, तेज, जल पृथिवी यह पांच सूक्ष्म भूत कहे जाते हैं।॥ ७५॥

परस्परांशैर्मिलितानि भूत्वा स्थूलानि च स्थूलशरीरहेतवः,
मात्रास्तदीया विषया भवन्ति शब्दादयः पञ्च सुखाय भोक्तुः॥ ७६॥

परस्परांशैः, मिलि तानि, भूत्वा, स्थूलानि, च, स्थूल शरीर हेतवः॥
मात्राः, तदीयाः, विषयाः, भवन्ति, शब्दादयः, पंञ्च, सुखाय, भोक्तुंः॥ ७६॥

आकाश आदि पांच तत्त्व अपने अपने अंश से इकत्रित होकर स्थूल शरीर का कारण होते हैं तथा आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी पञ्च तत्त्वो की सूक्ष्म मात्रा का नाम शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, है। यह सब भोक्ता पुरुष के सुख के साधन क्रम से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण इन पांचों ज्ञानेंद्रियो का विषय कहे जाते हैं॥ ७६॥

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन,
आयान्ति निर्यान्त्यध उर्ध्वमुच्चैः स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः॥ ७७॥

ये, एषु, मूढाः, विषयेथें, बद्धाः, रागोरुपाशेन, सुदुर्दमेन॥
आयान्ति, नियन्ति, अधः, ऊर्ध्व, उच्चैः, स्वकर्मदतेन, जवेन, नीताः॥ ७७॥

जो मुढ जन इन शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रुपी पाँचों विषयों की प्रबल प्रीति रुपी पाश में फँस जाते हैं, वही मनुष्य अपने कर्मरुपी दूत के वेग से प्रेरित होकर इस लोक और पर लोक में आवागमन करते रहते हैं॥ ७७॥

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः,
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीन भृङ्गा नरः पञ्चभिरञ्चितः किम्॥ ७८॥

शब्दादिभिः, पञ्चभिः, एव, पञ्च, पञ्चत्वं, आयुः, स्वगुणेन, बद्धाः॥
कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग मीन भृङ्गाः, नरः, पंञ्चभिः, अञ्चितः, किम॥ ७८॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पांच विषयों में से एक एक विषय के स्नेह से बंधे हुए मृग, हाथी, पतंगा, मछली और भ्रमर यह पांचों मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर जो मनुष्य इन पांचों विषयों के स्नेह में सदा फँसा रहता है वह कैसे बच सकता है॥ ७८॥

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि,
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम्॥ ७९॥

दोषेण, तीव्रः, विषयः, कृष्ण सर्प विषात्, अपि॥
विषं, निर्हंन्ति, भोक्तारं, दृष्टारं, चक्षुषा, अपि, अयम्॥ ७९॥

काले सर्प के विष से भी आधिक शब्द स्पर्श आदि विषयों का दोष अति तीव्र है क्योंकि विष तो केवल खाने से और सर्प काटने से मनुष्यों को दुःख देता है परन्तु शब्द आदि विषय तो देखने सुनने से भी दुःख देते हैं॥ ७९॥

विषयाशामहापाशाद्यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात्,
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्रवेद्यपि॥ ८०॥

विषयाशामहापाशात्, यः, विमुक्तः, सुदुस्त्यजात्॥
सः, एव, कल्पते, मुक्त्यै, न, अन्यः, षट्शास्त्र वेदी, अपि॥ ८०॥

विषय के आशा रूप कठिन महापाश से बचे हुए मनुष्य ही मोक्ष के भागी होते हैं, कोई अन्य नहीं। आशापाश मे फँसा हुआ छहों दर्शनों का ज्ञाता भी मोक्ष का भागी नहीं होता॥ ८०॥

आपातवैराग्यवतो मुमुक्षून् भवाब्धिपारं प्रतियातुमुद्यतान्,
आशाग्रहो मज्जयतेऽन्तराले निगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात्॥ ८१॥

आपातवैराग्यवतः, मुमुक्षून्, भवाब्धिपारं, प्रतियातुं, उद्यतान्॥
आशाग्रहो, मज्ज्यते, अन्तराले, निर्गुह्य, कण्ठे, विनिवर्त्य, वेगात्॥ ८१॥

अतितीव्र वैराग्य से युक्त होकर संसार समुद्र को पार करने में उद्यत, मोक्ष की इच्छा करनेवाले मनुष्यों को आशा रुपी ग्राह, तीव्र वेग से मध्य में ही रोक कर, कण्ठ से पकड़ कर डुबो देता है॥ ८१॥

विषयों का त्याग ही मोक्ष का कारण है

विषयाँशाग्रहो येन सुविरत्तयसिना हतः,
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः॥ ८२॥

विषयांशाग्रहः, येन, सुविरक्तयोसना, हतः॥
सः, गच्छति, भवाम्भोधेः, पारं, प्रत्यूहवर्जितः॥ ८२॥

विषय रुपी ग्राह को जो मनुष्य वैराग्य रुपी तलवार से मार देता है, वह मनुष्य निर्विघ्न संसार समुद्र के उस पार चला जाता है॥ ८२॥

विषमविषयमार्गेर्गच्छतोऽनच्छबुद्धेः
प्रतिपदमभियातो मृत्युरप्येष विद्धि,
हितसुजनगुरूत्या गच्छतःस्वस्य युक्त्या
प्रभवति फलसिद्धिः सत्यमित्येव विद्धि॥ ८३॥

विषर्मविषयमार्गे, गच्छतः, अनच्छबुद्धेः,
प्रतिपदं, अभियातः, मृत्युः, अपि, एषः, विद्धि॥
हितसुजन गुरूक्त्या, गच्छतः, स्वस्य, युक्तया,
प्रभवति, फलसिद्धिः, सत्यं, इति, एव, विद्धि॥ ८३॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य कुटिल विषय मार्ग से अर्थात् विषयभोग करता हुआ, संसार समुद्र के पार जाना चाहता है उसको पद पद में मृत्यु

रुपी परम दुःख भोगना पड़ता है। जो मनुष्य हितकारी श्रेष्ठ गुरु के उपदेश से तथा अपनी युक्ति से, विषय रस त्याग कर पार होना चाहता है उसको निश्चय मोक्ष रुपी फल प्राप्त होता है॥ ८३॥

मोक्षस्य काङ्क्षा यदि वै तवास्ति त्यजातिदूरादिषयान् विषं यथा,
पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जव प्रशान्तिदान्तीभंज नित्यमादरात्॥ ८४॥

मोक्षस्य, काङ्क्षा, यदि, वै, तव, अस्ति, त्यज,
अतिदूरीत्, विर्षयान्, विषं, यथा,
पीयूषवत्, तोदया क्षमार्जवप्रशान्तिदान्तीः,
भैज, नित्यं, औदरात्॥ ८४॥

यदि तुम्हे मोक्ष की इच्छा है तो विषतुल्य विषयों का त्याग करो और अमृततुल्य संतोष, दया, क्षमा, कोमलता, शान्ति, इन्द्रियों के निग्रहों का आदरपूर्वक सेवन करो॥ ८४॥

केवल शरीर का पोषण करना आत्मघातक है

अनुक्षणं यत्परिहत्य कृत्य मनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम्,
देहः परार्थोऽयममुष्य पोषणे यः सज्जते स स्वमनेन हन्ति॥ ८५॥

अक्षणं, यत्, परिहत्य, कृत्यं, अनाद्यविद्याकृतबन्ध मोक्षणं॥
देहः परार्थः, अयं, अमुष्य, पोषणे, यः संजते, सः, स्वं, अनेन, हन्ति॥ ८५॥

अनादि अविद्या कृत बन्धन से मोक्ष होने के उपाय का सर्वथा त्यागकर, जो मनुष्य इस अनित्य स्थूल देह के पालन में तत्पर होता है वह मनुष्य साक्षात् आत्मघातक है॥ ८५॥

शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदक्षति,
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदी तर्तु स गच्छति॥८६॥

शरीरपोषणार्थी, संन्, यः, आत्मानं, दिदक्षति॥
ग्राहं, दारुधिया, धृत्वा, नदी, तत्, सः, गच्छति॥ ८६॥

जो मनुष्य अनित्य शरीर का पालन करता हुआ आत्मसाक्षात्कार चाहता है वह काष्ठ बुद्धि से ग्राह को पकड़कर नदी पार करने की इच्छा करता है॥ ८६॥

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु,
मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमहति॥ ८७॥

मोहः, एव, महामृत्युः, मुमुक्षोः, वपुरादिषु॥
मोहः, विनिर्जितः, येन, सः, मुक्तिपदं, अर्हति॥ ८७॥

मोक्षार्थी पुरुष का अपने शरीर से मोह रखना होना यही महामृत्यु है, जिसने मोह को जीत लिया वही पुरुष मोक्षपद का अधिकारी है।॥ ८७॥

मोहं जहि महामृत्युं देहदारसुतादिषु,
यं जित्वा मुनयो यान्ति तद्विष्णोः परमंपदं॥८८॥

मोहं, जहि, महामृत्युं, देहदारसुतादिषु
यं, जित्वा, मुनयः, यौन्ति, तत्, विष्णोः, परमं, पदम्॥ ८८॥

अपनी देह, स्त्री और पुत्र आदि में मोह रूपी महामृत्यु का त्याग करो, जिसको जीत कर मुनिलोग साक्षात् विष्णुपद को प्राप्त होते हैं।॥ ८८॥

स्थूल शरीर नश्वर है

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्,
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः॥ ८९॥

त्वचा, मांस रुधिर स्नायु मेदो मज्जा अस्थि संकुलम्॥
पूर्ण, मूत्र पुरीषाभ्यां, स्थूलं, निन्द्य, इदं, वपुः॥ ८९॥

त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मज्जा, अस्थि इन सबसे संयुक्त और मल मूत्र से भरा हुआ यह स्थूल शरीर सर्वथा निंदनीय है॥ ८९॥

पञ्चीकृतेभ्यो श्रुतेभ्यः स्थूलेभ्यः पूर्वकर्मणा,
समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः॥
अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः॥ ९०॥

पंञ्चीकृतेभ्यः, भूतेभ्यः, स्थूलेभ्यः, पूर्वकर्मणा,
समुत्पनं, इदं, स्थूलं, भोगायतनं, आत्मनः॥
अवस्था, जागरः, तस्य, स्थूलार्थानुभवः, यतः॥ ९०॥

परस्पर मिले हुए आकाश आदि पञ्चतत्त्वों से, आत्मा का भोग स्थान, यह स्थूल शरीर उत्पन्न होता है इस स्थूल शरीर की स्थूल वस्तुओं का अनुभव कराने वाली जाग्रत अवस्था होती है॥ ९०॥

बाह्येन्द्रियैःस्थूलपदार्थसेवां स्रक्चन्दनस्यादिविचित्ररूपाम्,
करोति जीवःस्वयमेतदात्मना तस्मात्प्रशस्तिर्वपुषोऽस्य जागरे॥ ९१॥

बाह्येन्द्रियैः स्थूलपदार्थसेवां, स्रक्चन्दनस्त्र्यादिविचित्र रूपां॥
करोति, जीवः, स्वयं, ऐतदात्मना, तस्मात्, प्रेशस्तिः, वपुषः, अस्य, जागरे॥
९१॥

श्रोत्र आदि बाह्य इन्द्रियों से माला, चन्दन, स्त्री आदि स्थूल पदार्थों का सेवन यथा रूप होकर जीवात्मा करता है। इसलिए स्थूल शरीर की जाग्रत् अवस्था प्रसिद्ध है॥ ९१॥

सर्वोपि बाह्यसंसारः पुरुषस्य यदाश्रयः,
विद्धि देहमिदं स्थूलं गृहवगृहमेधिनः॥ ९२॥

सर्वः, अपि, बाह्यसंसारः, पुरुषस्य, यदाश्रयः॥

विद्धि, देहं, इदं, स्थूलं, गृहवेत्, गृहमेधिनः॥ ९२॥

जिसके आश्रय से यह दृश्यमान संपूर्ण बाह्य संसार प्रतीत होता है, गृहस्थों के गृह के समान वही पुरुष का स्थूल देह है॥ ९२॥

स्थूलस्य संभवजरामरणानि धर्माः
स्थौल्यादयो बहुविधाः शिशुताद्यवस्थाः,
वर्णाश्रमादिनियमा बहुधामयाः स्युः
पूजावमानबहुमानमुखा विशेषाः॥ ९३॥

स्थूलस्य, संभवजेरामरणानि, धर्माः,
स्थौल्यादयः, बहुविधाः, शिशुताद्यवस्थाः॥
वर्णाश्रमादिनियमाः, बहुधा, आमयाः, स्युः,
पूजामानबहुमानमुखाः, विशेषाः॥ ९३॥

जन्म लेना, बढना, स्थूल होना, दुर्बल होना, यह सभी स्थूल शरीर के धर्म हैं । बाल, युवा, वृद्ध, मृत्यु इत्यादि अनेक प्रकार की अवस्थाएँ हैं। वर्णाश्रम आदि अनेक नियम तथा यम हैं और प्रतिष्ठा, अनादर, अपमान आदि अनेक प्रकार की इसमें आधि व्याधि होती हैं।॥ ९३॥

ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों का विषय

बुद्धीन्द्रियाणि श्रवणं त्वगक्षि घ्राणं च जिव्हा विषयावबोधनात्,
वाक्पाणिपादा गुदमप्युपस्थः कर्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु॥ ९४॥

बुद्धीन्द्रियाणि, श्रवणं, त्वक्, अक्षि, घ्राणं, च, जिव्हा, विषयावबोधनात्॥
वाक्पाणिपादाः, गुंदं, अपि, उपस्थः, कर्मेन्द्रियाणि, प्रवणेन, कर्मसु॥ ९४॥

श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण इन पांच इन्द्रियो से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों विषयों का ज्ञान होता है इसलिये इनको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पांचों का वचन आहरण, गमन, विसर्ग, आनन्द आदि कर्म में प्रवृत्त होनेसे इनको कर्मेन्द्रिय कहते हैं॥ ९४॥

अंत: करण का विषय

निगद्यतेऽन्तःकरणं मनोधी रहंकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः,
मनस्तु संकल्पविकल्पनादिभि बुद्धिः पदार्थाध्यवसायधर्मतः॥ ९५॥

निर्गद्यते, अन्तःकरणं, मनः, धीः, अहंकृतिः, चित्तं, इति, स्ववृत्तिभिः॥
मनः, तु, संकल्पविकल्पनादिभिः, बुद्धिः, पदार्थाध्यवसायधर्मतः॥ ९५॥

अत्राभिमानादहमित्यहंकृतिः, स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम्॥ ९६॥

अत्र, अभिमानात्, अहं, इति, अहंकृतिः स्वार्थ अनुसन्धान गुणेन, चित्तम्॥ ९६॥

मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त यह चार अंतःकरण कहे जाते हैं। सङ्कल्प विकल्प होना यह मन की वृत्ति है पदार्था का निश्चय करना बुद्धि का धर्म है, अभिमान होना यह अहंकार का धर्म है, विषयों पर चिंतन करना चित्त का धर्म है॥९५- ९६॥

पञ्च प्राण का भेद

प्राणापानव्यानोदानसमाना भवत्यसौप्राणः,
स्वयमेववृत्तिभेदाद्विकृतिभेदात्सुवर्णसलिलादिवत्॥ ९७॥

प्राण अपान व्यान उदान समानाः, भवति, असौ, प्राणः
स्वयं, एवं, वृत्तिभेदात्, विकृतिभेदात्, सुवर्णसलिलादिवत्॥ ९७॥

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, यह पांच प्राण कहे जाते हैं यद्यपि प्राण एक ही है तथापि हृदय, गुदा, नाभि, कण्ठ, सर्वदेह इन स्थानों पर रहकर वृत्तिभेद होने से पांच भेद होते हैं। जैसा सुवर्ण विकार को प्राप्त होने से कटक कुंडल आदि अनेक संज्ञाओं को प्राप्त होता है॥ ९७॥

वागादि पञ्च श्रवणादि पञ्च प्राणादि पञ्चाभ्र मुखानि पञ्च,
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥ ९८॥

वागादि, पञ्च, श्रवणादि, पञ्च, प्राणादि, पञ्च, अभ्र मुखानि, पञ्च॥

बुद्धयादि, अविद्या, अपि, च, कामकर्मणी, पुर्यष्टकं, सूक्ष्म शरीरं, आहुः॥ ९८॥

वचन आदि पांच कर्मेंद्रिय, श्रवण आदि पांच ज्ञान इन्द्रिय, प्राण अपान आदि पांच वायु, आकाश आदि पांच तत्व, बुद्धि आदि अंतःकरण, अज्ञान, काम और कर्म पुर्यष्टक ये सब मिलकर सूक्ष्मशरीर होता है।॥ ९८॥

लिंग शरीर और सूक्ष्म शरीर

इदं शरीरं शृणु सूक्ष्मसंज्ञितं लिङ्गं त्वपञ्चीकृतभूतसंभवम्,
सवासनं कर्मफलानुभाव स्वाज्ञानतोऽनादिरुपाधिरात्मनः॥ ९९॥

इदं, शरीरं, शृणं, सूक्ष्मसंज्ञितं, लिङ्ग, तु, अपञ्ची कृतभूतसंभवम्॥
सर्वासनं, कर्मफलानुभावकं, स्वाज्ञानतः, अनादिः, उपाधिः, आत्मनः॥ ९९॥

पंचीकरण के बिना आकाश आदि पंचतत्त्व से उत्पन्न, पूर्व वासनाके सहित कर्म फल की इच्छा करता हुआ जो आत्मा का अनादि उपाधि है उसी को लिङ्ग शरीर कहते हैं॥ ९९॥

स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र,
स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्रत् कालीननानाविधवासनाभिः॥ १००॥

स्वप्नः, भवति, अस्य, विभक्त्यवस्था, स्वमात्रशेषेण, विभाति, यत्र॥
स्वप्ने, तु, बुद्धिः, स्वयं, एवं, जाग्रत्कालीन नानाविधवासनाभिः॥ १००॥

स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर के विभाग के निमित्त स्वप्न अवस्था है, इस स्वप्न अवस्था में जाग्रत् अवस्था की जो अनेक प्रकार की वासना है उससे संयुक्त होकर बल बुद्धि का मान होता है॥ १००॥

कत्रादिभावं प्रतिपद्य राजते यत्र स्वयं भाति ह्ययं परात्मा,
धीमात्रकोपाधिरशेषसाक्षी न लिप्यते तत्कृतकर्मलेशैः॥ १०१॥

कादिभावं, प्रतिपद्य, राजते, यत्र, स्वयं, भाति, हि, अयं, परात्मा,
धीमात्रकोपाधिः, अशेषसाक्षी, ने लिप्यते, तत्कृतकर्मलेशैः॥१०१॥

सर्वसाक्षी परमात्मा कर्तृत्व भोकृत्व भाव को प्राप्त होकर बुद्धिमात्र उपाधि संयुक्त होने पर भी बुद्धि आदि द्वारा किए गए कर्मलेश से लिप्त नहीं होते इस कारण असंग तथा निर्लेप कहे जाते हैं।॥१०॥

सर्वव्यापृतिकरणं लिङ्गमिदंस्याच्चिदात्मनःपुंसः,
वास्यादिकमिव तक्षणस्तेनैवात्मा भवत्यसङ्गोऽयम्॥ १०२॥

सर्वव्यापृतिकरणं, लिङ्ग, इदं, स्यात्, चिदात्मनः, पुंसः
वौस्यादिकं, इव, तक्षणः, तेन, एव, आत्मा, भवति, असङ्गः, अयम्॥ १०२॥

मनुष्य का जो सर्व वस्तु विषयक व्यापार है वही व्यापार चैतन्य आत्मा का चिह्न है अर्थात् बिना चैतन्य के इस जड़ शरीर से कोई व्यापार नहीं होता। जिस प्रकार बढ़ई के बिना वसुला अपने आप किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता, इसलिये आत्मा असङ्ग है॥ १०२॥

आत्मा निर्लेप है

अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्माः सौगुण्यवैगुण्यवशाद्धि चक्षुषः,
बाधिर्यमूकत्वमुखास्तथैव श्रोत्रादिधर्मा न तु वेत्तुरात्मनः॥ १०३॥

अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्माः, सौगुण्यवैगुण्यवशात् हि चक्षुषः॥
बाधिर्यमुकत्वमुखाः, तथा, एवं, श्रोत्रादिधर्माः, न, तु, वेत्तुः, आत्मनः॥ १०३॥

अन्धा होना, कम दिखाई देना, अधिक दिखाई देना, यह सब सुन्दर गुण और दोष नेत्र का धर्म है इसी तरह बधिर होना, मूक होना ये सब श्रोत्रादि इन्द्रिय का धर्म है, सर्व साक्षी सर्वज्ञ आत्मा का धर्म नहीं है॥ १०३॥

यस्मादसङ्गस्तत एव कर्मभि, न लिप्यते किञ्चिदुपाधिना कृतैः॥
यस्मात्, असङ्गः, ततः, एवं, कर्मभिः, न, लिप्यते, किंञ्चित्, उपाधिना, कृतैः॥

इसलिए आत्मा सङ्गरहित है अत एव उपाधिकृत कर्मोंसे कुछ भी लिप्त नहीं होता॥

उच्छ्वासनिः श्वासविजृम्भणक्षुत्प्रस्यन्दनाद्युत्क्रमणादिकाः क्रियाः,
प्राणादिकर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः प्राणस्य धर्मौवशनापिपासे॥ १०४॥

उच्छासनिःश्वासविजृम्भणात्प्रस्यन्दनाद्युत्क्रमणादिकाः क्रियाः,
प्राणादिकर्माणि, वदन्ति, तज्ज्ञाः, प्राणस्य, धौं, अर्शनापिपासे॥ १०४॥

श्वास- प्रश्वास, जम्हाई, छींकना, भूख लगना, कांपना, सीधा चलना, टेढा चलना, खाना पीना, यह सभी धर्म प्राण-अपान आदि वायु का है, आत्मा का नहीं है। आत्मा इन सब धर्मों से रहित है।॥ १०४॥

अन्तःकरणमेतेषु चक्षुरादिषु वर्ष्मणि,
अहमित्यभिमानेन तिष्ठत्याभासतेजसा॥ १०५॥

अन्तःकरणं, एतेषु, चक्षुरादिषु, वर्ष्मणि॥
अहं, इति, अभिमानेन, तिष्ठति, आभासतेजसा॥ १०५॥

मन चित्त आदि चारों अन्तःकरण, संकल्प विकल्प आदि धर्म से युक्त होकर, आँख, नाक आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रिय में स्थित रहते हैं॥ १०५॥

अहंकारःस विज्ञेयः कर्ता भोक्ताऽभिमान्ययम्,
सत्वादिगुणयोगेन चावस्थात्रयमश्नुते॥ १०६॥

अहंकारः, सः, विज्ञेयः, कर्ता, भोक्तो, अभिमानी, अयम्॥
सत्वादिगुणयोगेन, चँ, अवस्थात्रयं, अश्नुते॥ १०६॥

जो कर्ता, भोक्ता और अभिमानी है उसी को अहंकार जानना चाहिए और यही अहंकार सत्त्वगुण, तमोगुण और रजोगुण के योग से जाग्रत् स्वप्न और सुषुत्ति इन तीन अवस्थाओ को भोगता है॥ १०६॥

विषयाणामानुकूल्ये सुखी दुःखी विपर्यये,
सुखं दुःखं च तद्धर्मः सदानन्दस्य नात्मनः॥१०७॥

विषयाणां, अनुकूल्ये, सुखी, दुःखी, विपर्यये॥
सुख, दुःखं, च, तद्धर्मः, सदानन्दस्य, न, आत्मनः॥ १०७॥

इच्छानुकूल विषय प्राप्त होने से अन्तःकरण सुखी होता है, न मिलने से दुःखी होता है इस लिये सुख दुःख यह दोनों अन्तःकरण के धर्म हैं सदा आनन्द स्वरूप आत्मा का धर्म नहीं है।॥ १०७॥

आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान्विषयो न स्वतः प्रियः,
स्वत एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो यतः॥१०८॥

आत्मार्थत्वेन, हि, प्रेयॉन्, विषयः, न स्वतः, प्रियः,
स्वतः, एव, हि, सर्वेषां, आत्मा, प्रियतमः यतः॥ १०८॥

विषय में आत्मबुद्धि होनेसे विषय प्रिय होता है, स्वतः विषय प्रिय नहीं है किन्तु विना कारण सभी का परम प्रिय केवल आत्मा है दूसरा नहीं॥ १०८॥

तत आत्मा सदानन्दो नास्य दुःखं कदाचन,
यत्सुषुप्तौ निर्विषय आत्मानन्दोऽनुभूयते
श्रुति प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं च जाग्रति,॥ १०९॥

ततः, आत्मा, सदानन्दः, न, अस्य, दुःखं, कदाचन,
यत्, सुषुप्तौ, निर्विषयः, आत्मानन्दः, अनुभूयते,
श्रुतिः, प्रत्यक्षं, ऐति ह्यं, अनुमानं, चं, जाति॥ १०९॥

इस कारण आत्मा सदा आनन्दस्वरूप है, आत्मा को कभी दुःख नहीं होता। सुषुप्तिकाल में जो सुख विशेष का अनुभव होता है वही आत्मानन्द है । ऐसेही श्रुति 'प्रत्यक्ष ऐतिह्य और अनुमान प्रमाण जागृत हैं॥ १०९॥

माया का स्वरुप

अव्यक्तनानि परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा,
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥ ११०॥

अव्यक्तनाम्नी, परमेशशक्तिः, अनाद्यविद्या, त्रिगुणांत्मिका, परा,
कार्यानुमेया,सुधिया एव, माया, यया, जगत्, सर्वे, इदं, प्रसूयते॥ ११०॥

ईश्वर की शक्ति है, जिसका नाम अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका, अव्यक्त इत्यादि प्रसिद्ध हैं उसीको माया कहते इस मायाका अनुमान कार्य से होता है जिससे सम्पूर्ण दृश्य जगत् उत्पन्न हुआ है॥ ११०॥

सन्नाप्यसनाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो,
सङ्गाप्यनङ्गा हयुभयात्मिका नो महाशताऽनिर्वचनीयरूपा॥ १११॥

सत, न, अपि, असत्, न, अपि, उभयात्मिका, नो,
भिन्ना, अपि, अभिन्ना, अपि, उभयात्मिका नो॥
सङ्गा, अपि, अनङ्गा, हि उभयात्मिको, नो, महादुता, अनिर्वचनीयरूपा॥ १११॥

इस माया को सत्य भी नहीं कह सकते क्योंकि अद्वैत प्रतिपादन करने वाली बहुत सी श्रुतियां विरोध करती हैं। मिथ्या भी नहीं कह सकते क्योंकि इस माया का कार्य प्रत्यक्ष दिखाई देता है। अंगसहित अथवा अंग से रहित भी नहीं कह सकते क्योंकि यह अद्‌भुत अनिर्वचनीय अर्थात वर्णन न किए जाने योग्य रूप माया है॥ १११॥

शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या सर्पभ्रमो रज्यु विवेकतो यथा,
रजस्तमःसत्त्वमिति प्रासिद्धा गुणास्तदीयाःप्रथितैःस्वकार्यैः॥ ११२॥

शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या, सर्पभ्रमः, रज्जुविवेकतः, यथा॥
रजः, तमः, सत्त्वं, 'इति, प्रसिद्धा, गुणाः, तदीयाँः, प्रैथितैः, स्वकार्यैः॥ ११२॥

शुद्ध अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान होने पर इस माया का नाश होता है जैसे रज्जु स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होने पर सर्प का भ्रम नष्ट हो जाता है। इस माया के सत्त्व रज तम यह तीन गुण हैं॥ ११२॥

रजोगुण का धर्म

विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी,
रागादयोऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं दुःखादयो ये मनसो विकाराः॥ ११३॥

विक्षेपशक्तिः, रजसः, क्रियात्मिकाः, यतः, प्रकृतिः, प्रसूता, पुराणी॥
रागादयः, अस्याः, प्रभवन्ति, नित्य, दुःखांदयः, ये, मनसः, विकाराः॥ ११३॥

रजोगुण का अंश माया की एक विक्षेप शक्ति है जिससे वह माया सब क्रियाओं में मनुष्यों को प्रवृत्त कराती है और राग दुःख आदि जितने मन के विकार हैं वह सभी विक्षेप शक्ति से ही प्रबल होते हैं॥ ११३॥

कामः क्रोधो लोभदम्भाधसूयाहंकारामत्स राधास्तु घोराः,
धर्मा एते राजसाः पुम्प्रवृत्तिर्यस्मादेषा तद्रजोबन्धहेतुः॥ ११४॥

कामः, क्रोधः, लोभैदम्भाद्यसूयाहंकारेणूंमत्सरायाः, तु, घोराः
धर्माः, एते, राजसाः, पुम्प्रवृत्तिः, यस्मात्, एषा, तत्, रजः, बन्धहेतु :॥ ११४॥

काम-क्रोध, लोभ-दम्भ, ईर्ष्या-असूया (गुणों में दोष ढूंढना), अहंकार-मत्सर, यह अभी रजोगुण के घोर धर्म हैं । जिनके वश में होने से पुरुष की प्रवृत्ति विषयों में होती है इसलिये रजोगुण बन्धन का कारण है॥ ११४॥

तमोगुण का धर्म

एषाऽऽवृतिर्नाम तमोगुणस्य शक्तिर्यया वस्त्वव भासत्तेऽन्यथा,
सैषा निदानं पुरुषस्य संसृते विक्षेपशक्तेः प्रवणस्य हेतुः॥ ११५॥

एषा, आवृतिः, नाम, तमोगुणस्य, शक्तिः, यया, वस्तु, अवभासते, अन्यथा॥
सा, एषा, निदानं, पुरुषस्य, संसृतेः, विक्षेपशक्तेः, प्रवणस्य, हेतु :॥ ११५॥

तमोगुण का अंश माया की दूसरी शक्ति का नाम आवरणशक्ति है जिससे वस्तुओं का यथार्थरूप नहीं दिखाई अपितु विक्षेपशक्ति होने के कारण उसी वस्तु में दूसरी वस्तु का भान होता है। इसलिये पुरुष का संसार सम्भावना होने मे माया की जो विक्षेप शक्ति है वही पुरुष के जन्म मरण रूप संसार का आदि कारण है।॥ ११५॥

प्रज्ञावानपि पण्डितोऽपि चतुरोऽप्यत्यन्तसूक्ष्मात्मदृग्
व्यालीढस्तमसा न वेत्ति बहुधा संबोधितोऽपि स्फुटम्,
भ्रान्त्यारोपितमेव साधु कलयत्यालम्बते तद्गुणान्
हन्तासौ प्रबला दुरन्ततमसः शक्तिर्महत्यावृतिः॥ ११६॥

प्रज्ञावान्, अपि, पण्डितः, अपि, चतुरः, अपि, अत्यन्तसूक्ष्मात्मदृक्,

व्यालीढः, तमेसा, न, वेत्ति, बहुधा, संबोधितः, अपि, स्फुटम्॥
भ्रान्त्या, आरोपितम्, एवं, साधु, कलयति, आलम्बते, तद्गुणान्,
हन्त, असौ, प्रबला, दुरन्ततमसः, शक्तिः, महती, आवृतिः॥ ११६॥

तमोगुण के अंश माया की विक्षेपशक्ति का प्रादुर्भाव होने के कारण वस्तु कुछ की, कुछ और प्रतीत होने लगती है। यदि किसी पढे लिखे बुद्धिमान पण्डित, अत्यंत चतुर, सूक्ष्म दृष्टि संयुक्त पुरुष को भी भली भांति कोई वस्तु समझाई जाये तो भी वह वस्तु को न समझकर, भ्रांति से, उसी वस्तु में दूसरे वस्तु का आरोप करता है और उसी दूसरी वस्तु का दृढ अवलम्बन करता है। अहो ! यही तमोगुण की आवरण शक्ति की महिमा है।॥ ११६॥

अभावना वा विपरीतभावनाऽसंभावना विप्रति पत्तिरस्याः,
संसर्गयुक्तं न विमुञ्चति ध्रुवं विक्षेपशक्तिःक्षपयत्यजस्रम्॥ ११७॥

अभावना, वो, विपरीतभावना, असंभावना, विप्रतिपत्तिः, अस्याः॥
संसर्गयुक्तं, न, विमुञ्चति, ध्रुवं, विक्षेपशक्तिः, क्षपयति, अजस्रम्॥ ११७॥

इस आव्रंद शक्ति के संसर्ग से युक्त पुरुष को अभावना, विपरीत भावना, संभावना और निश्चयात्मिका शक्ति यह सभी सब मायायुक्त होने से नहीं छोडती नहीं और विक्षेप शक्ति भी निरंतर डावांडोल रखती है॥ ११७॥

अज्ञानमालस्यजडत्वनिद्राप्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः,

एतैः प्रयुक्तो न हि वत्ति किञ्चिनिद्रालवत्स्तम्भवदेव तिष्ठति॥ ११८॥

अज्ञानं, आलस्य जडत्व निद्रा प्रमाद मूढत्व मुखाः, तमोगुणाः,
एतैः, प्रयुक्तः, न, हि, वेति, किञ्चित्, निद्रालुंवत्, स्तम्भवत्, एवं, तिष्ठति॥ ११८॥

अज्ञान, आलस्य, जडता, निद्रा, प्रमाद और मूढता यह अभी तमोगुण के धर्म हैं। इन गुणों के संयुक्त होने से मनुष्य को किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होता केवल निद्रालु के सदृश जडवत स्थिर रहता है॥ ११८॥

सत्वगुण का धर्म

सत्वं विशुद्धं जलवत्तथापि ताभ्यां मिलित्वा सरणाय कल्पते,
यत्रात्मबिम्बः प्रतिबिम्बितः सन् प्रकाशयत्यर्क इवाखिलं जडम्॥ ११९॥

सत्त्वं, विशुद्धं, जलवत्, तथा, अपि, ताभ्यां, मिलित्वा, सरणाय, कल्पते॥
यत्र, आत्मविम्बः, प्रतिबिम्बितः, सन्, प्रकाशयति, अर्कः, इव, अखिलं, जडम्॥ ११९॥

सत्त्वगुण जलके समान स्वच्छ है, तब भी रजोगुण तमोगुण में मिलने से आत्मबिम्ब में प्रतिबिम्बित होकर सूर्य के समान सम्पूर्ण जड समूह को प्रकाशित करता है।॥ ११९॥

मिश्रस्य सत्वस्य भवन्ति धर्मास्त्वमानिताद्या नियमा यमाद्याः,
श्रद्धा च भक्तिश्च मुमुक्षुता च दैवी च संपत्तिरसन्निवृत्तिः॥ १२०॥

मिश्रस्य, सत्त्वस्य, भवन्ति, धर्माः, तु, अमानिताद्याः, नियमाः, यमाद्याः,
श्रद्धा, च, भक्तिः, च, मुर्मूक्षुता, च, दैवी, संपत्तिः, असन्निवृत्तिः॥ १२०॥

रजोगुण से मिले हुए सत्त्वगुण के मान, नियम, यम, श्रद्धा, भक्ति, मोक्ष की इच्छा आदि धर्म हैं और सत्त्वगुण का उदय होने से असत्मार्ग से निवृत्ति और दैवी क्रिया में प्रवृत्ति होती है॥ १२०॥

विशुद्धसत्वस्य गुणाः प्रसादः स्वात्मानुभूतिः परमा प्रशान्तिः,
तृप्तिः प्रहर्षः परमात्मनिष्ठा यया सदानन्दरसं समृच्छति॥ १२१॥

विशुद्धसत्त्वस्य, गुणाः, प्रसादः,स्वात्मानुभूतिः, परमा, प्रशान्तिः,
तृप्तिः, प्रहर्षः, परमात्मनिष्ठा, यया, सदानन्दरसं, समृच्छति॥ १२१॥

आत्मस्वरूप का अनुभव होना, परमशान्ति होना, सदा तृप्त रहना, आनन्द होना, परमात्मा में श्रद्धा होना, यह सभी रजोगुण से रहित केवल विशुद्ध सत्त्वगुण के धर्म हैं। सत्त्वगुण के उदय होने से परमानन्द रस प्राप्त होता है।॥ १२१॥

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं तत्कारणं नाम शरीर मात्मनः,
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था प्रलीन सर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः॥ १२२॥

अव्यक्तं, एतंत्रिगुणैः, निरुक्तं, तत्, कारणं, नाम, शरीरं, आत्मनः,
सुषुप्तिः, एतस्य, विभक्त्यवस्था, प्रली नैसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः॥ १२२॥

सत्त्व रज तम इन तीनों गुणों से संयुक्त माया है इसका कारण आत्मशरीर है। माया के विभाग के लिये सुषुप्ति अवस्था होती है, उस अवस्था में समस्त इन्द्रियों की और बुद्धि की वृत्ति नष्ट हो जाती है॥ १२२॥

सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्तीजात्मनावस्थितिरे व बुद्धेः,
सुषुप्तिरेतस्य किल प्रतीतिः, किञ्चिन्न वेद्मीति जगत्प्रसिद्धेः॥ १२३॥

सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्तिः, बीजात्मना, अवस्थितिः, एव, बुद्धेः॥
सुषुप्तिः, एतस्य, किल, प्रतीतिः, किञ्चित्, न, वेद्मी, इति, जगत्प्रसिद्धेः॥ १२३॥

सुषुप्ति अवस्था में सब प्रमिति का नाश होने से बीजरूप केवल बुद्धि की स्थिति रहती है। बीजरूप से बुद्धिक स्थिर रहने में प्रमाण यही है कि "मैं सुख से सोया था मुझे कुछ नहीं जानता" ऐसा जागने पर अनुभव होता है और यह लोक प्रसिद्ध है॥ १२३॥

आत्मा – अनात्मा का स्वरुप

देहेन्द्रियप्राणमनोहमादयः सर्वे विकारा विषयाः सुखादयः,
व्योमादिश्भूतान्यखिलं च विश्व मव्यक्तपर्यन्तमिदं ह्यनात्मा॥ १२४॥

देहेन्द्रियप्राणमनोहमादयः, सर्वे, विकारोः, विषयाः, सुखादयः॥
व्योमादिभूतानि, अखिलं, च, विश्व अव्यक्तपर्यन्तं, इदं, हि, अनात्मा॥ १२४॥

देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, अहंकार, आदि समस्त विकार, सुख दुःख आदि सम्पूर्ण विषय, आकाश आदि पञ्चभूत और मायापर्यन्त अखिल संसा, यह सभी आत्मा से भिन्न अनात्म वस्तु हैं॥ १२४॥

माया मायाकार्य सर्व महदादिदेहपर्यन्तम्,
असदि दमनात्मतत्त्वं विद्धि त्वं मरुमरीचिकाकल्पम्॥ १२५॥

माया, मायाकार्ये, सर्वे, महदादिदेहपर्यन्तं॥
अर्त्, इदं, अनात्मतत्त्वं, विद्धि, त्वं, मरुमरीचिकाकल्पम्॥ १२५॥

बुद्धि आदि देहपर्यन्त यह सब माया के कार्य तथा माया आत्मा से भिन्न, अनित्य और मरुस्थल की मरीचिका में विद्यमान जल के समान सर्वथा मिथ्या है॥ १२५॥

परमात्मा का स्वरुप

अथ ते संप्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमात्मनः,
यद्विज्ञाय नरो बन्धान्मुक्तः कैवल्यमश्नुते॥ १२६॥

अंथ, ते, संप्रवक्ष्यामि, स्वरूपं, परमात्मनः,
यत्, विज्ञाय, नरः, बन्धात्, मुक्तः, कैवल्यं, अश्नुते॥ १२६॥

अब मैं तुमसे परमात्मा का स्वरूप कहूंगा जिसके जानने से मनुष्य संसार बन्धन से मुक्त होकर कैवल्य मोक्षपद को प्राप्त करता है॥ १२६॥

अस्ति कश्चित्स्वयं नित्यमहंप्रत्ययलम्बनः,
अवस्थात्रयसाक्षी सन् पञ्चकोशविलक्षणः॥ १२७॥

अस्ति, कश्चित्, स्वयं, नित्यं, अहंप्रत्ययलम्बनः॥
अवस्थात्रयसाक्षी, सन्, पञ्चकोशविलक्षणः॥ १२७॥

एक कोई अनिर्वचनीय वस्तु है, जो नित्य है, 'अहं' इस प्रतीति को आलम्बन करता है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, यह तीनो अवस्थाओं का साक्षी है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, पांचोकोशी से विलक्षण है॥ १२७॥

यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वमसुषुप्तिषु,
बुद्धितद्वृतिसद्भावमभावमहमित्ययम्॥ १२८॥

यः, विजानाति, सकलं, जाग्रत्स्वमसुषुप्तिषु,
बुद्धितद्वृतिसद्भाव, अवं, अहं, इति, अयम्॥ १२८॥

जो जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में बुद्धि और बुद्धि की वृत्ति का सद्भाव और अभाव इन सभी वृतियों में 'अहंभाव' से स्थित हुआ जानता है॥ १२८॥

यः पश्यति स्वयं सर्व यं न पश्यति कश्चन,
यश्चेतयति बुध्यादि न तद्यं चेतयत्ययम्॥ १२९॥

यः, पश्यति, स्वयं, सेर्व, यं, न, पश्यति, कश्चन,
येः, चेतयति, बुध्यादि, न, तत्, 'यं, चेतयति, अयम्॥ १२९॥

जो स्वयं सबको देखता है और उसको कोई नहीं देख पाता, जो बुद्धि आदि समस्त जड पदार्थों को चैतन्य करता है और उसको दूसरा कोई अन्य उसको प्रकाशित नहीं कर सकता॥ १२९॥

येन विश्वमिदं व्याप्तं यं न व्यामोति किञ्चन,
आभारूपमिदं सर्व यं भान्तमनुभात्ययम्॥ १३०॥

येन, विश्व, इदं, व्याप्तं, यं, न, व्यामोति, किञ्चन॥
आभारूपं, इदं, सर्व, यं, भान्तं, अनु, भाति, अयम्॥ १३०॥

जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है और उसमें कोई व्याप्त नहीं कर सकता। जिसका ज्ञान होने से सब जगत् मिथ्या प्रतीत होता है, वही परमात्मा है॥ १३०॥

यस्य सन्निधिमात्रेण देहेन्द्रियमनोधियः,
विषयेषु स्वकीयेषु वर्तन्ते प्रेरिता इव॥ १३१॥

यस्य, सन्निधिमात्रेण, देहेन्द्रियमनोधियः॥
विषयेषु, स्वकीयेषु, वर्तन्ते, प्रेरिताः, इव॥ १३१॥

जैसे किसी के कहने से कोई किसी में प्रवृत्त होता वैसे केवल परमात्मा की सन्निधि से देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि यह सभी अपने अपने विषय में प्रवृत्त होते हैं॥ १३१॥

अहङ्कारादिदेहान्ता विषयाश्च सुखादयः,
वेद्यन्ते घटवद्येन नित्यबोधस्वरूपिणा॥ १३२॥

अहङ्कारादिदेहान्ताः, विषयाः, च, सुखादयः॥
वेद्यन्ते, घटवत्, येन, नित्यबोधस्वरूपिणा॥ १३२॥

जिस नित्य चैतन्य रूप की सान्निधि से अहंकार आदि देह पर्यन्त आदि स्थूल, सूक्ष्म, शरीर और सुख आदि सब विषय घटके समान स्पष्ट प्रतीत होते हैं ।॥ १३२॥

एषोऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो निरन्तराखण्डसुस्वानुभूतिः,
सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो येनेषिता वागसवश्चरन्ति॥ १३३॥

एषः, अन्तरात्मा, पुरुषः, पुरॊणः, निरन्तराखण्डसुखानुभूतिः॥

सदा, एकरूपः, प्रतिबोधमात्रः, येनं, ईषिताः, वाग, असवः, चरन्ति॥ १३३॥

यही अन्तरात्मा पुराणपुरुष निरंतर अखण्ड सुख का अनुभव करनेवाला, सदा एक रूप, केवल चैतन्य स्वरूप परब्रह्म है जिसकी इच्छा से वाणी और प्राण यह सभी अपने अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं।॥ १३३॥

अत्रैव सत्त्वात्मनि धीगुहायामव्याकृताकाश उशत्प्रकाशः,
आकाश उच्चैरविवत्प्रकाशते स्वतेजसा विश्वमिदं प्रकाशयन्॥ १३४॥

अत्रं, एवं, सत्त्वात्मनि, धीगुँहायां, अव्याकृताकाशे, उशत्प्रकाशः॥
आकाँशः, उच्चैः, रविवत्, प्रकाशते, स्वतेजसा, विश्व, इदं, प्रकाशयन्॥ १३४॥

इसी सत्त्व स्वरूप बुद्धिरूप गुहा में, विकार रहित परम प्रकाश तेज स्वरूप ईश्वर, आकाश में सूर्य के सदृश अपने तेज से, इस सकल विश्व को प्रकाशित करता हुआ तीव्रता से प्रकाशमान हो रहा है॥ १३४॥

ज्ञातामनोहंकृतिविक्रियाणांदेहेन्द्रियप्राणकृत क्रियाणाम्,
अयोऽग्निवत्तानुवर्तमानोन चेष्टते नो विकरोति किञ्चन॥ १३५॥

ज्ञाता, मनोहंकृतिविक्रियाणां, देहेन्द्रियप्राणकृतक्रियाणां॥
अयःअग्निवत्, तान्, अनुवर्तमानः, न, चेष्टते, नो, विकरोति, किञ्चन॥ १३५॥

यह परमात्मा मन अहंकार के विकार और देह, इन्द्रिय, प्राण और इन सबकी क्रियाओं का ज्ञाता है। जैसे लोहे के संयोग होने के कारण अग्नि लोहे की आकृति से समान दिखाई देता है पर अग्नि का विकार नहीं होता वैसे ही आत्मा इन्द्रिय आदि के किये हुए कर्मों का ज्ञाता अवश्य है परन्तु अपनी कोई चेष्टा नही करता करता और न ही किसी विकार को प्राप्त होता है। वह केवल साक्षी रूप से स्थित रहता है॥ १३५॥

आत्मा का स्वरुप

न जायते नो म्रियते न वर्धते न क्षीयते नो विकरोति नित्यः,
विलीयमानेऽपि वपुष्यमुषमिन्न लीयते कुम्भ इवाम्बरं स्वयम्॥१३६॥

न, जायते, नो म्रियते, ने, वर्धते,न, क्षीयते, नो, विकरोति, नित्यः,
विलीयमाने, अपि, वपुषि, अर्मुष्मिन्, न, लीयते, कुम्भे, इव, अम्बरं, स्वयम्॥ १३६॥

आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न बढ़ता है, न क्षीण होता है, न कभी विकार को प्राप्त होता है। वह नित्य है, उसका कभी नाश नहीं होता इस शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा वैसे ही वर्तमान रहता है जैसे घट टके नाश होने पर भी घट के भीतर के आकाश का नाश नहीं होता वैसे ही आत्मा का भी कभी नाश नहीं होता॥ १३६॥

प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोधस्वभावः सदसदिदमशेषं भासयन्निविशेषः,
विलसति परमात्मा जाग्रदादिष्ववस्था वहमहमिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धेः॥१३७॥

प्रकृतिविकृतिभिन्नः, शुद्धबोधस्वभावः, सदसद्, इदं, अशेषं, भासयन्, निर्विशेषः॥
विलसति, परमात्मा, जानेदादिषु, अवस्थासु, अहं, अहं, इति, साक्षात्, साक्षि रूपेण, बुद्धेः॥ १३७॥

परमात्मा प्रकृति विकृति भाव से भिन्न शुद्ध सत्त्व स्वभाव है अर्थात् न तो आत्मा का किसी से प्रादुर्भाव होता है न आत्मा से किसी की उत्पत्ति होती है। स्वप्न, जागृत, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में अहं ऐसी प्रतीति होने से साक्षात् बुद्धि का साक्षी होकर स्थूल- सूक्ष्म सब जगत को निर्विशेष प्रकाश करता हुआ स्वयं प्रकाशित होता है॥ १३७॥

नियमितमनसामुं त्वं स्वमात्मानमात्म न्ययमहमिति साक्षादिद्धि बुद्धिप्रसादात्,
जनिमरणतरंगापारसंसारसिन्धुं प्रतर भव कृतार्थों ब्रह्मरूपेण संस्थः॥ १३८॥

नियमितमनसा, अमुं, त्वं, स्वं, आत्मानं, आत्मनि, अयं, अहं, इति, साक्षात्, विद्धि, बुद्धिप्रसादात्॥

जनि मरणतरंगापारसंसारसिन्धुं, प्रतर, भव, कृतार्थः, ब्रह्मरूपेण, संस्थः॥ १३८॥

शिष्य के प्रति गुरु का उपदेश है कि तुम अपने मन को स्थिर करके बुद्धि के प्रसाद से 'यह मैं साक्षात् आत्मा हूँ - ऐसा अपने अंत:करण में साक्षात् अनुभव कर और इस प्रकार जनम मरण रूप तरंगों वाले इस अपार संसार समुद्र को पार कर ब्रह्मस्वरूप मे प्राप्त होकर कृतार्थ हो जा॥ १३८॥

अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्बन्ध एषोऽस्य पुंसः प्राप्तोऽज्ञानाजननमरणक्लेशसंपातहेतुः,
येनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुध्या पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिः कोशकृद्वत॥ १३९॥

अत्र, अनात्मनि, अहं, इति, मतिः, बन्धः, एषः, अस्यं, पुंसः, प्राप्तः, अज्ञानात्, जननमरणक्लेशसंपातहेतुः॥
येन, एव, अयं, वपुः, इदं, असत्, सत्यं, इति, आत्मबुध्या, पुष्यति, उक्षति, अवति, विषयैः, तन्तुभिः, कोशकृद्वत॥ १३९॥

आत्मा से भिन्न इस स्थूलशरीर मे जिनकी अज्ञानपूर्वक 'अहं' "मैं और मेरा" बुद्धि होती है, उन पुरुषों को जन्म-मृत्यु आदि क्लेशसमूह के कारण बन्धन सदा ही प्राप्त रहता है। जिस बन्धन के होने से वह मनुष्य आनित्य इस स्थूल शरीर को आत्मवृद्धि से सत्य समझ कर

विषयों से पुष्ट करते हैं, उसका सेवन करते हैं और पालन करते हैं॥ १३९॥

तमोगुण से मोहित हुए मनुष्यों की स्थिति

अतस्मिंस्तबुद्धिःप्रभवति विमूढस्य तमसा विवेकाभावाव्दै स्फुरति भुजगे रज्जुधिषणा,
ततोऽनर्थबातो निपतति समादातुरधिकस्ततो योऽसद्ग्राहः सहि भवति बन्धः शृणु सखे॥ १४०॥

बतस्मिन्, तद्बुद्धिः, प्रभवति, विमूढस्य, तमेसा, विवेकाभावात्, वे, स्फुरैति, भुजंगे, रज्जुधिषणा॥
ततः, अर्नेर्थबातः, निपतति, समादातुः, अधिकः, ततः, यः, असदग्राहः, सः, हि, भवति, बन्धः, शृणु , सखे॥ १४०॥

तमोगुण से विशेष मोह को प्राप्त मनुष्यों का असत्य शरीरादिक में सत्य वस्तु की बुद्धि उत्पन्न होती है। विवेक का अभाव तथा अत्यधिक मोह होने पर सर्प मे रज्जु बुद्धि की उत्पत्ति होती है। ऐसी बुद्धि होने वालों को अति अनर्थ प्राप्त होता है। इसलिए हे मित्र सुन! असदग्राह का ग्रहण करना अर्थात असत तो सत मानना ही बन्धन का कारण होता है।॥ १४०॥

अखण्डनित्यादयबोधशक्त्या स्फुरन्तमात्मान मनन्तवैभवम्,
समावृणोत्यावृतिशक्तिरेषा तमोमयी राहुरिवार्कबिम्बम्॥ १४१॥

अखण्डनित्याद्वयबोधशक्त्या, स्फुरन्तं, आत्मानं, अनन्त वैभवम्॥
समावृणोति, आवृतिशक्तिः, एषा, तमोमयी, राहुः, इव, अर्कबिम्बम्॥ १४१॥

अखण्ड, नित्य, अद्वितीय बोधशक्ति से प्रकाश मान अनन्त वैभव संपन्न, आत्मा का यह तमोगुणमयी शक्ति इस प्रकार आवरण कर लेती है, जैसे प्रकाशमान सूर्यमंडल को राहु ढक लेता है॥ १४१॥

रजोगुण से मोहित हुए मनुष्यों की स्थिति

तिरोभूते स्वात्मन्यमलतरतेजोवति पुमान नात्मानं मोहादहमिति शरीरं कलयति,
ततः कामक्रोधप्रभृतिभिरमुं बन्धनगुणैः परं विक्षेपाख्या रजस उरुशक्तिर्व्यथयति॥ १४२॥

तिरोभूते, स्वात्मनि, अमलतरतेजोवति, पुमान्, अर्नात्मानं, मोहात्, अहम्, इति, शरीरं, कलयति॥ ततः, कामक्रोधप्रभृतिभिः, अमुं, बन्धनगुणैः, परं, विक्षेपाख्या, रजसः, उरुशक्तिः, व्यथयति॥ १४२॥

माया की प्रबल आवरण शक्ति से परम प्रकाश स्वरूप आत्मा जब छिप जाता है तब पुरुष मोह को प्राप्त होकर आत्मा से भिन्न इस जड शरीर में अहं बुद्धि उत्पन्न करता है। इस शरीर में अहंबुद्धि होने के बाद रजोगुण की विक्षेपनामक शक्ति, काम, क्रोध, आदि अपना बन्धन गुण से उस पुरुष को परमदुःख देती है॥ १४२॥

महामोहग्राहग्रसनगलितात्मावगमनोधियो
नानावस्थां स्वयमभिनयंस्तद्गुणतया,
अपारे संसारे विषयविषपूरे जलनिधौ
निमज्योन्मज्ज्यायं भ्रमति कुमतिः कुत्सितगतिः॥१४३॥

महामोह ग्राह ग्रसन गलितात्मा वगमनः, धियः,
नानावस्थां, स्वयं, अभिनयन्, तद्गुणतया॥
अपारे, संसौरे, विषयविष पूरे, जलंनिधौ,
निमज्ज्य, उन्मज्य, अयं, भ्रमति, कुमतिः, कुत्सितगतिः॥ १४३॥

जिस पुरुष के आत्मज्ञान को माहामोह रुपी ग्राह जब ग्रस कर लेता है, तब वह कुबुद्धि पुरुष तमोगुण से अपनी बुद्धि को नाना प्रकार की अवस्था को प्राप्त करता हुआ. विषय रुपी विष से भरा हुआ, अपार संसार समुद्र से डूबता उतरता हुआ, परम निन्दित गति को प्राप्त होता है।॥ १४३॥

भानुप्रभासंजनिताभ्रपतिर्भानुं तिरोधाय विजृम्भते यथा,
आत्मोदिताहंकृतिरात्मतत्त्वं तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम्॥ १४४॥

भानुप्रभासंजनिताभ्रपंक्तिः, भानु, तिरोधाय, विज़म्भते, यथा॥
आत्मोदिता, अहंकृतिः, आत्मतत्त्वं, तथा, तिरोधाय, विजृम्भते, स्वयम्॥
१४४॥

जैसे सूर्य के तेज से उत्पन्न होकर मेघमंडल सूर्य को छिपाकर आत्म विस्तार दिखाता है वैसे ही आत्मा से उत्पन्न हुआ अहंकार आत्मतत्त्व को छिपा कर अपने रूप को बढाता है॥ १४४॥

कवलितदिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेषैर्व्यथयति हिमझञ्झावायुरुग्रोयथैतान्,
अविरततम सात्मन्यावृते मूढबुद्धिं क्षपयति बहुदुः खैस्तीवविक्षपशक्तिः॥ १४५॥

कवलितदिननाथे, दुर्दिने, सौन्द्रमेघैः, व्यथयति, हिम झञ्झावायुः, उग्रः, यथा, एतान्॥
अविरततमसा, आत्मनि, आवृते, मूबुद्धि, क्षपयति, बहुदुःखैः, तीव्रविक्षेपशक्तिः॥ १४५॥

जैसे सघन मेघों द्वारा सूर्य के छिप जाने पर शीतल जलकणों के सहित तीव्र प्रबल वायु मनुष्यों को व्यथित कर देती है, वैसे ही तमोगुण से आत्मज्ञान के नष्ट होने पर माया की प्रबल विक्षेप शक्ति, अनेक प्रकार के दुखों से पुरुषों को क्लेश देती है॥ १४५॥

एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बन्धः पुंसः समागतः,
याभ्यां विमोहितो देहं मत्वात्मानं भ्रमत्ययम्॥ १४६॥

एताभ्यां, एव, शक्तिभ्यां, बन्धः, पुंसः, समागतः,
याभ्यां, विमोहितः, देह, मत्वा, आत्मानं, भ्रमति, अर्यम्॥ १४६॥

इसी दोनों माया की आवरणशक्ति और विक्षेप शक्ति से पुरुष को बन्ध प्राप्त होता है और इन्ही दोनों शक्तियों से मोहित होने पर इस देह में आत्मबुद्धि उत्पन्न होती है॥ १४६॥

संसार वृक्ष का स्वरुप

बीजं संसृतिभूमिजस्य तु तमो देहात्मधीरङ्कुरो
रागः पल्लवमम्बु कर्म तु वपुः स्कन्धोऽसवः शाखिकाः,
अग्राणीन्द्रियसंहतिश्च विषयाः पुष्पाणि दुःखं फलं
नानाकर्मसमुद्भवं बहुविधं भोक्तात्र जीवः खगः॥ १४७॥

बीजं, संसृतिभूमिजस्य, तु, तमः, देहात्मधीः, अंकुरः,
रागः, पल्लवं, अम्बु, कर्म, तु, वपुः, स्कन्धः, असवः, शाखिकाः॥
अग्रणि, इन्द्रियसंहतिः, च, विषयाः, पुष्पाणि, दुःख, फलं, नानीकर्मसमुद्भवं,
बहुविधं, भोक्ता, अत्रे, जीवः, खगः॥ १४७॥

इस संसार रुपी वृक्ष का तमोगुण बीज है, देह में आत्मबुद्धि होना अंकुर है, देहादि में प्रीति होना पल्लव है, काम्यकर्म जल है, शरीर इस वृक्ष का स्तम्भ (तना) है, प्राण आदि पञ्चवायु शाखा है, इन्द्रिय उस वृक्ष का अग्रभाग है, शब्द आदि विषय पुष्प है, अनेकों प्रकार के कर्मों से उत्पन्न अनेक प्रकार का दुःख है फल है, इस फल का भोक्ता जीवात्मा पक्षी है॥ १४७॥

अज्ञानमूलोऽयमनात्मबन्धोनैसर्गिको ऽनादिरनन्त ईरितः,
जन्माप्ययव्याधिजरा दिदुःखप्रवाहपातं जनयत्यमुष्य॥ १४८॥

अज्ञानमूलः, अयं, अनात्मबन्धः, नैसर्गिकः, अनादिः, अनन्तः, ईरितः॥
जन्माप्यय व्याधिजरादि दुःख प्रवा हपातं, जनयति, अमुष्य॥ १४८॥

यह जो अज्ञानजनित अनात्म वस्तु का बन्धन है, वही अनादि और अनंत कहा गया है। यही जीव के जन्म. मरण, व्याधि और जरा (वृद्धावस्था) आदि दुःख प्रवाह को उत्पन्न करता है॥ १४८॥

नास्त्रैर्न शस्त्रैरनिलेन वन्हिना छेत्तुं न शक्यो न च कर्मकोटिभिः,
विवेकविज्ञानमहासिना विना धातुः प्रसादेन सितेन मज्जुना॥ १४९॥

न, अस्त्रैः, न, शैक्षैः, अनिलेन, वन्हिना, छेत्तुं, न, शक्यः, न, चैं, कर्मकोटिभिः॥
विवेकविज्ञानमहासिना, विना, धातुः, प्रसौदेन, सितेन, मज्जुना॥ १४९॥

इस प्रबल अज्ञानरूप बन्धन को विवेक और विज्ञान रूप महा तलवार के बिना और मनोहर स्वच्छ ईश्वर के प्रसाद बिना कोई शस्त्र छेदन कर सकता है, न कोई अस्त्र काट सकता है, न वायु उडा सकता है, न ही अग्नि जला सकता है और न किसी भी प्रकार का कर्म नाश कर सकता है। केवल ज्ञान ही से यह अज्ञान बन्धन नष्ट हो सकता है॥ १४९॥

श्रुतिप्रमाणैकमतेः स्वधर्मनिष्ठा तयैवात्मविशुद्धिरस्य,

विशुद्धबुद्धेः परमात्मवेदनं तेनैव संसारसमूलनाशः॥ १५०॥

श्रतिप्रमाणैकमतेः, स्वधर्मनिष्ठा, तया, एव, आत्मविशुद्धिः, अस्य॥
विशुद्धबुद्धेः, परमात्मवेदनं, तेनं, एव, संसारसमूलनाशः॥ १५०॥

जो मनुष्य श्रुतियों का प्रमाण स्थिर मानता है, उसी मनुष्य की स्वधर्म में श्रद्धा भक्ति होती है, श्रद्धा होने से चित शुद्ध हो जाता है, चित्त शुद्धि होने से पर परमात्मा का ज्ञान होता है, परमात्म ज्ञान होने ही से संसार रुपी वृक्ष का समूल नाश होता है।॥ १५०॥

कोशैरन्नमयाद्यैः पञ्चभिरात्मा न संवृतो भाति,
निजशक्तिसमुत्पन्नैः शैवालपटलैरिवाम्बुवापीस्थम्॥ १५१॥

कोशैः, अनमयाद्यैः, पञ्चभिः, आत्मा, न, संवृतः, भाति॥
निजैशक्तिसमुत्पन्नैः, शैवालपटलैः, इव, अम्बु, वापीस्थम्॥ १५१॥

जैसे जल की ही शक्ति से उत्पन्न होकर शैवाल, तालाब के समस्त जल का आच्छादन कर लेता है। उसी प्रकार आत्मा की शक्ति से उत्पन्न होकर, अन्नमय आदि पंच कोश आत्मा का आवरण कर लेता है और प्रत्यक्ष रूप ईश्वर का प्रकाश नष्ट हो जाता है।॥ १५१॥

तच्छेवालापनये सम्यक् सलिलं प्रतीयते शुद्धम्,
तृष्णासंतापहरं, सद्यः सौख्यप्रदं परं पुंसः॥ १५२॥

तच्छेवालापनये, सम्यक्, सलिलं, प्रतीयते, शुद्धं॥
तृष्णासंतापहरं, सद्यः, सौख्यप्रदं, परं, पुंसः॥ १५२॥

उस शैवाल को दूर करने से, शीघ्र ही, मनुष्य को परम सुख प्रदान करने वाला और इच्छा संताप का नाश करने वाला, परम पवित्र स्वच्छ जल दिखाई देता है॥ १५२॥

पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्धः,
नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परं स्वयंज्योतिः॥ १५३॥,

पञ्चनां, अपि, कोशानां, अपवादे, विभाति, अयं, शुद्धः॥
नित्यानन्दैकरसः, प्रत्यग्रूपः, परं, स्वयंज्योतिः॥ १५३॥

जैसे अन्नमय आदि पंच कोश के ज्ञानद्वारा, अज्ञान दूर करने से, नित्य आनन्दस्वरूप जन्म आदि से रहित प्रत्यक्ष स्वयम् प्रकाश स्वरूप शुद्ध परब्रह्म का ज्ञान होता है॥ १५३॥

आत्मानात्मविवेकः कर्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा,
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम्॥ १५४॥

आत्मानात्मविवेकः, कर्तव्यः, बन्धमुक्तये, विदुषा॥
तेन, एवं, आनन्दी, भवति, स्वं, विज्ञाय, सच्चिदानन्दम्॥ १५४॥

संसार के बंधन से मुक्त होने के लिए, विद्वान् मनुष्य को आत्म-अनात्म वस्तु का विवेक करना चाहिये। जिस विचार से अपने आप को सच्चिदानन्द स्वरूप जान कर ज्ञानी जन, परमानन्द को प्राप्त होते हैं।॥ १५४॥

मुञ्जादिषीकामिव दृश्यवर्गात् प्रत्यञ्चमात्मान मसङ्गमक्रियम्,
विविच्य तत्र प्रविलाप्य सर्व तदात्मना तिष्ठति यः स मुक्तः॥ १५५॥

मुञ्जात्, इषीकां, इव, दृश्यवर्गात्, प्रत्यञ्च, आत्मानं, असंग, अक्रियं॥
विविच्य , तंत्र, प्रविलाप्य, सर्व, तदात्मना, तिष्ठति, यः, सः, मुक्तः॥ १५९॥

जैसे प्रत्यक्ष दृश्यमुञ्ज को हटाने से उसके भीतर का कीलक अलग दिखाई देता है वैसे ही प्रत्यक्ष सभी प्रपञ्चों को भी असंग, अक्रिय, आत्मरूप समझ कर इसी में प्रपञ्च को लय करके आत्मबुद्धि से जो भी मनुष्य स्थित रहता है वही मुक्त कहलाता है॥ १५५॥

अन्नमय कोश का विचार

देहोऽयमनभवनोऽन्नयमस्तु कोशश्चान्नेन जीवति विनश्यति तदिहीनः
त्वक्चर्ममांसरुधिरास्थिपुरीषराशिर्नायं स्वयं भवितुमर्हति नित्यशुद्धः॥
१५६॥

देहः, अयं, अन्नभवनः, अन्नमयः, तु, कोशः, च, अन्नेन, जीवति, विनश्यति, तद्विहीनः॥
त्वचर्ममांसरुधिरास्थिपुरीषराशिः, न, अयं, स्वयं, भवितुं, अर्हति, नित्यशुद्धः॥ १५६॥

यह देह अन्न से उत्पन्न होता, अन्नमय इसका कोश है, अन्न से ही इसका पालन होता है और अन्न न मिलने से विनाश को प्राप्त होता है। त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, अस्थि, मल इन्ही सब का समूह है इसलिये यह देह नित्यशुद्ध चैतन्यस्वरूप कभी नहीं हो सकता है॥ १५६॥

पूर्व जनेरधि मृतेरपि नायमस्ति जातक्षणः क्षणगुणोऽनियतस्वभावः,
नैकोजडश्च घटवत्परिदृश्यमानः स्वात्मा कथं भवति भावविकावेत्ता॥ १५७॥

पूर्व, जनेः, अधि, मृतेः, अपि, न, अयं, अस्ति, जातक्षणः, क्षणगुणः, अनियतस्वभावः॥
न, एकः, जडः, च, घटवत्, परिदृश्यमानः, स्वात्मा, कथं, भवति, भावविकारवेत्ता॥ १५७॥

यह देह जन्म से पहले नहीं था, न मरने की बाद रहेगा, केवल उत्पत्ति होने पर ही दिखाई देता है, क्षणिक इसमें गुण है, इसकी स्थिरता भी निश्चित नहीं है। यह अनन्तानन्त है और जड है। घटके से समान

सृद्श्य है फिर यह ऐसा भाव विकार युक्त, जड देह, आत्मा कैसे हो सकता है॥ १५७॥

पाणिपादादिमान देहो नात्माव्यङ्गेऽपि जीवनात्,
तत्तच्छक्तेरनाशाच्च न नियम्यो नियामकः॥ १५८॥

पाणिपादादिमान्, देहः, न, आत्मा, व्यंङ्गे, अपि, जीवनात्॥
तत् तत्शक्तेः, अनाशात्, च, न, नियम्यः, नियामकः॥ १५८॥

हाथ और पैर आदि अंगों के भंग होने पर भी यह देह जीवित रहता है इसलिये हस्त, पाद संयुक्त यह शरीर आत्मा नहीं हो सकता है। इसके अलावा जो शरीर स्वयं शासित है, वह शासक आत्मा कभी नहीं हो सकता॥ १५८॥

देहतद्धर्मतत्कर्मतदवस्थादिसाक्षिणः,
स्वत एव स्वतः सिद्धं तदैलक्षण्यमात्मनः॥१५९॥

देहतद्धर्मतत्कर्मतदवस्थादिसाक्षिणः॥
स्वतः, एव, स्वतः, सिद्धं, तद्वैलक्षण्यं, आत्मनः॥ १५९॥

देह और देह का धर्म, कर्म, अवस्था आदि के साक्षी आत्मा की देह से विलक्षणता स्वयं सिद्ध है॥ १५९॥

कुल्यराशिर्मासलिप्तो मलपूर्णोऽतिकश्मलः,

कथं भवेदयं वेत्ता स्वयमेतदिलक्षणः॥ १६०॥

कुल्यराशिः, मांसलिप्तः, मलपूर्णः, अतिश्मलः,
कथं, भवेत्, अयं, वेत्ता, स्वयं, एतद्विलक्षणः॥ १६०॥

अस्थि का समूह, मांस से लिप्त, मल से परिपूर्ण, अतिनिन्दित यह देह चैतन्य नहीं हो सकता है क्योंकि चैतन्य इससे विलक्षण है॥ १६०॥

त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपुरीषराशावहंमति मूढजनः करोति,
विलक्षणं वेत्ति विचारशीलो निजस्वरूपं परमार्थभूतम्॥ १६१॥

त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपुरीषराशौ, अहंमतिं, मूढजनः, करोति॥
विलक्षणं, वेत्ति, विचारशीलः, निजस्वरूपं, परमार्थभूतम्॥ १६१॥

त्वचा, मांस, मज्जा, अस्थि, और मल का समूह इस देह में जो अहंबुद्धि करता है वह अतिमूढ है। जो विचारवान हैं, वह आत्मरूप परमार्थवेत्ता आत्मा को देह से विलक्षण जानते हैं॥ १६१॥

देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धिदेहे च जीवे विदुष स्त्वहंधीः,
विवेकविज्ञानवतो महात्मनोब्रह्माहमित्येव मतिः सदात्मनि॥ १६२॥

देहः, अहं, इति, एवं, जडस्य, बुद्धिः, देहे, च, जीवे, विदुषः, तु, अहंधीः॥
विवेकविज्ञानवतः, महात्मनः, ब्रह्म, अहं, इति, ऐव, मैंतिः, सदात्मनि, (सत् यात्मनि)॥ १६२॥

जिस पुरुष को इस जड़ देह में 'अहं बुद्धि' होती है, वह जड मनुष्य है। देह में और जीव में जिनकी आत्मबुद्धि है वह विद्वान है। 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी बुद्धि सदा अपने में जिसकी होती है वहीं विवेकयुक्त विज्ञानी महात्मा है।॥ १६२॥

अत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढबुद्धे त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपु रीषराशौ,
सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पेकुरुष्व शान्ति परमां भजस्व॥ १६३॥

अत्रै, आत्मबुद्धिं, त्यजै, मूढबुद्धे, त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपु रीषराशौ॥
सर्वात्मनि, ब्रमणि, निर्विकल्पे, कुरुष्व, शौन्ति, परमां, भेजस्व॥ १६३॥

हे मूढजन ! त्वचा, मांस, मज्जा, अस्थि और मल आदि के समूह, इस देह में जो तुम्हारी आत्मवृद्धि हुई है इसको छोडकर विकल्प से रहित, सर्वात्मा परब्रह्म में परमशान्ति का अनुभव करो और उन्हीं का सेवन करो॥ १६३॥

देहेन्द्रियादावसति भ्रमोदितां विद्धानहंतां न जहाति यावत्,
तावन्न तस्यास्ति विमुक्तिवार्ताप्यस्त्वेष वेदान्तनयान्तदर्शी॥ १६४॥

देहेन्द्रियादौ, असति, भ्रमोदितां, विद्वान्, अहंतां, न, जहाति, यावत्॥
तावत्, न, तस्य, अस्ति, विमुंक्तिवार्ता, अपि, अस्तु, एषः, वेदान्तनयान्तदर्शी॥
१६४॥

मनुष्य जब तक इस अनित्य देह में और इन्द्रियों में भ्रम से उत्पन्न हुई अहं बुद्धि को जब तक नहीं त्यागता तब तक वेदान्त शास्त्र के नीतिमार्गों का पारदर्शी होने पर भी उस मनुष्य से मुक्ति की बात भी दूर रहती है॥ १६४॥

छायाशरीरे प्रतिबिम्बगात्रे यत्स्वप्नदेहे हृदि कल्पिताङ्गे,
यथात्मबुद्धिस्तव नास्ति काचि ज्वीवच्छरीरे च तथैव मास्तु॥ १६५॥

छायोशरीरे, प्रतिबिम्बगात्रे, यत्, स्वप्नदेहे, हृदि, कल्पिताङ्गे॥
यथा, आत्मबुद्धिः, तव, न, अस्ति, काचित्, जीवच्छरीर (जीवत् शरीरे), च, तथा, एव, मा, अस्तु॥ १६५॥

अपनी शरीर की छाया में, अपने प्रतिबिम्ब में, स्वप्नावस्था में दिखाई देने वाले के शरीर में और मन में कल्पित किए हुए देह में जैसे तुम्हारी कोई आत्मबुद्धि नहीं होती, वैसे इस जीवित शरीर में भी कभी आत्म बुद्धि नहीं होनी चाहिये॥ १६५॥

देहात्मधीरेव नृणामसद्धियांजन्मादिदुःखप्रभवस्य बीजम्,
यतस्ततस्त्वं जहि तां प्रयत्नात्त्यक्ते तु चित्ते न पुनर्भवाशा॥ १६६॥

देहात्मधीः, एव, नृणा, असद्धियां, जन्मादिदुःखप्रभ वस्य, बीजम्॥
यतः, ततः, त्वं, जहि, तां, प्रयत्नात्, त्यक्ते, तु, चित्ते, न, पुनः, भवाशा॥ १६६॥

जन्म मरण आदि दुःख होने के कारण मनुष्यों की इस देह में आत्मबुद्धि उत्पन्न होती है। इसलिये तुम इस देह की आत्मबुद्धि का प्रयत्न पूर्वक त्याग करो, इस बुद्धि को चित्त से त्याग देने के पश्च्यात पुन: जन्म होने की कोई आशा नहीं रहेगी॥ १६६॥

प्राणमय कोश का विचार

कर्मेन्द्रियैः पञ्चभिरञ्चितोऽयंप्राणो भवेत्प्राणमयस्तु कोशः,
येनात्मवानन्नमयोनु पूर्णः प्रवर्ततेऽसौ सकलक्रियासु॥ १६७॥

कर्मेन्द्रियैः, पञ्चभिः, आञ्चतः, अयं, प्राणः, भवेत्, प्राणमयः, तुं, कोशः॥
येनं, आत्मवान्, अन्नमयः, अनुपूर्णः, प्रवर्तते, असौ, सकलक्रियासु॥ १६७॥

प्राणवायु इत्यादि पंच कर्मेन्द्रियों से संयुक्त होकर प्राणमयकोश होता है। जिससे यह देह आत्मवान् होता है और अन्न से पूर्ण होने से अन्नमय कोश कहा जाता है और अन्न से पुष्ट होकर समस्त कर्मों में प्रवृत्त होता है॥ १६७॥

नैवात्मापि प्राणमयो वायुविकारो,
गन्तागन्तावायुवदन्तर्बहिरेषः,
यस्मात्किञ्चित्वापि न वेत्तीष्टमनिष्टं
स्वं वाऽन्यं वा किञ्चन नित्यं परतन्त्रः॥ १६८॥

न, एवं, आत्मा, अपि, प्राणमयः, वायुविकारः,

गन्ता आगन्ता, वायुवत्, अन्तः, बहिः, एषः॥
यस्मात्, किंचित्, क्व, अपि, न, वेत्ति, इष्टं, अनिष्टं,
स्वं, वा अन्यं, वा, किञ्चन, नित्यं, परतन्त्रः॥ १३८॥

वायु का विकार प्राणमय कोश है, वायु के समान ही अन्दर-बाहर आता जाता रहता है और यह कभी इष्ट-अनिष्ट और अपना -पराया कुछ भी नहीं जानता। इसलिये सदा परतंत्र रहने वाला यह जो प्राणमय कोश है कह भी आत्मा नहीं है॥ १६८॥

मनोमय कोश का विचार

ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयःस्यात्
कोशो ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतुः,
संज्ञादिभेदकलनाकलितो बलीयांस्तत्पूर्व
कोशमभिपूर्य विजृम्भते यः॥ १६९॥

ज्ञानेन्द्रियाणि, च, मनः, च, मनोमयः, स्यात्,
कोशः, मम, अहं, इति, वस्तुविकल्पहेतुः॥
संज्ञादिभेदेकल नाकलितः, बलीयान्, तत्पूर्वकोशं,
अभिपूर्य, विजंम्भते, यः॥ १६९॥

श्रोत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन, यह सब मिलकर 'मैं, मेरा', ममता, अहंकार आदि विकल्पों के कारण और अनेक प्रकार की

सम्भावनों से संपन्न होने के कारण, प्राणमय कोश को व्याप्त कर, यह जो मनोमय कोश है, वह प्रबल वृद्धि को प्राप्त होता है।॥ १६९॥

मनोमय कोश का विचार

पञ्चेन्द्रियैःपञ्चभिरेव होतृभिः प्रचीयमानो विषयाज्यधारया,
जाज्वल्यमानो बहुवासनेन्धनै मनोमयाग्निर्वहति प्रपञ्चम्॥ १७०॥

पञ्चेन्द्रियैः, पञ्चभिः, एव, होतृभिः, प्रचीयमानः, विषयाज्यंधारया॥
जाज्वल्यमानः, बहुवासँनेन्धनैः, मनोमयो निः, वहति, प्रपंचम्॥ १७०॥

यह मनोमय कोशरूप अग्नि, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय रूप पांच होताओं से संचित और विषय रुपी धृत धारा से पोषित और अनेक जन्म के वासनारूप इन्धन से अतिशय प्रज्वलित होकर, अनेक प्रकार महा प्रपंच को दग्ध कर देता है॥ १७०॥

नास्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्तामनोह्यविद्या भवबन्धहेतुः,
तस्मिन् विनष्टे सकलं विनष्टं विजृम्भितेऽस्मिन् सकलं विजृम्भते॥ १७१॥

न, हि, अस्ति, अविद्या, मनसः, अतिरिक्ता, मनः, हि, अविद्या, भर्वबन्धहेतुः॥
तस्मिन्, विनष्टे, संकलं, विनष्टं, विजृम्भिते, अस्मिन्, सकलं, विजृम्भिते॥ १७१॥

मन के अतिरिक्त दूसरी अविद्या नहीं है, मन रूप अज्ञान संसार बन्धन का कारण है, मन का तरंग नष्ट होने से सकल प्रपञ्च नष्ट हो जाता है और मन के जाग्रत होने पर सब कुछ प्रतीत होने लगता है॥ १७१॥

स्वप्नेऽर्थशून्ये सृजति स्ववत्या भोक्त्रादि विश्वं मन एव सर्वम्,
तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्त त्सर्वमेतन्मनसो विजृम्भणम्॥ १७२॥

स्वप्ने, अर्थशून्ये, सृजति, स्ववत्या,
भोक्त्रादि, विश्व, मनः, एवं, सर्वम्॥
तथा, एवं, जाग्रेति,, अपि, नो, विशेषः,
तत्, सर्वं, एतत्, मनसः, विजृम्भणम्॥ १७२॥

जैसे स्वप्न अवस्था में अथवा शून्य प्रदेश में मन ही भोक्तृत्व आदि समस्त विश्व की सृष्टि करता है, वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी कुछ विशेष नहीं है यह सम्पूर्ण प्रपञ्च केवल मन की ही तरंग है॥ १७२॥

सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने नैवास्ति किञ्चि त्सकलप्रसिद्धेः,
अतो मनःकल्पित एव पुंसः संसार एतस्य न वस्तुतोऽस्ति॥ १७३॥

सुषुप्तिकाले, मनसि, प्रलीने, न,
एव, अस्ति, किञ्चित्, सकलप्रसिद्धः,
अतः, मनःकल्पितः, एव, पुंसः,
संसारः, एतस्य, न, वस्तुतः, अस्ति॥ १७३॥

सुषुप्तिकाल में जब मन लीन हो जाता है उस काल में किसी भे वस्तु आभास नहीं होता है, इससे स्पष्ट होता है कि, इस पुरुष अर्थात जीव जो संसार की संभावना करता है, वह केवल मन की ही कल्पना है अगर ऐसा नहीं होता तो सुषुप्ति में भी संसार का आभास होता॥ १७३॥

वायुनानीयते मेघः पुनस्तेनैव नीयते,
मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते॥ १७४॥

वायुना, आनीयते, मेघः, पुनः, तेन, एव, नीयते॥
मनसा, कल्प्यते, बन्धः, मोक्षः, तेन, एव, कल्प्यते॥ १७४॥

जैसे वायु मेघ को इकट्ठा करता है फिर वही वायु मेघ को अन्यत्र उडा देता है वैसे मन से ही पुरुष की बन्धकल्पना होती है और मन से ही मोक्ष भी होता है। ॥ १७४॥

देहादिसर्वविषये परिकल्प्य रागं बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद्गुणेन,
वैरस्यमत्र विषवत्सुविधाय पश्चा देनं विमोचयति तन्मन एव बन्धात्॥ १७५॥

देहादिसर्वविषये, परिकल्प्य, रागं,
बध्नाति, तेने, पुरुषं, पशुवत्, गुणेन॥
वैरैस्यं, अत्र, विषवत्, सुविधाय, पश्चात्,

एन, विमोचैयति, तत्, मन, एव, बन्धात्॥ १७॥

जैसे रस्सी से पशु बांधा जाता है वैसे ही देह आदि सब विषयों में प्रीति बढाकर विषयगुण से मन ही पुरुषको बाँध देता है और फिर वही मन विषयों में विष समान विरसता को उत्पन्न करके, उस बन्धन से पुरुष को मुक्त भी कर लेता है॥ १७५॥

तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तोर्बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने,
बन्धस्य हेतुर्मलिनं रजोगुणे मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम्॥ १७६॥

तस्मात्, मनः, कारणं, अस्य, जन्तोः, बन्धंस्य, मोक्षस्य, च, वाँ, विर्धाने॥
बन्धस्य, हेतुः, मेलिनं, रजोगुणैः, माक्षस्य, शुद्धं, विरजस्तमस्कम्॥ १७६॥

मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष दोनों के विधान में आदिकारण मन ही है। रजोगुण के योग से मलिन होकर मन बन्धन का कारण होता है और रजोगुण तमोगुण से रहित शुद्धसत्त्व प्रधान मन पुरुष के मोक्ष में कारण होता है॥ १७६॥

विवेकवैराग्यगुणातिरेकाच्छुद्धत्वमासाद्य मनो विमुक्त्यै,
भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षोस्ताभ्यां दृढाभ्यां भवितव्यमग्रे॥ १७७॥

विवेकवैराग्यगुणातिरेकात्, शुद्धत्वं, आसाद्य, मनः, विमुक्त्यै॥
भवति, अतः, बुद्धिमतः, मुमुक्षोः, ताभ्यां, दृढाभ्यां, भवितव्यं, अग्रे॥ १७७॥

विवेक और वैराग्य के गुण बढ़ने से मन शुद्धता को प्राप्त होकर मोक्ष का कारण होता है इसलिये बुद्धिमान् मुमुक्षु पुरुषों को प्रथम विवेक और वैराग्य दोनों को दृढ करना योग्य है।॥ १७७॥

मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु,
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः॥ १७८॥

मनः, नाम, महाव्याघ्रः, विषयारण्यभूमिषु॥
चरति, अत्र, न, गच्छन्तु, साधवः, ये, मुमुक्षवः॥ १७८॥

विषय रुपी अरण्य भूमि में मन नामक एक महाव्याघ्र सदा वर्तमान रहता है इसलिये साधू मुमुक्षु पुरुष को विषयरूप अरण्यभूमि में कभी नहीं जाना चाहिए॥ १७८॥

मनः प्रसूते विषयानशेषान् स्थूलात्मना सूक्ष्मतया च भोक्तुः,
शरीवर्णाश्रमजातिभेदान गुणक्रियाहेतुफलानि नित्यम्॥ १७९॥

मनः, प्रमूते, विषयान्, अशेषान्,
स्थूलात्मना, सूक्ष्म तया, चं, भोक्तः॥
शरीरवर्णाश्रमजातिभेदान्, गुणक्रिया,
हेतुफलानि, नित्यम॥ १७९॥

स्थूल सूक्ष्म रूप से भोक्ता पुरुष के सम्पूर्ण विषय को तथा शरीर, वर्णाश्रम, जाति, भेद गुण. क्रिया कारण फल आदि, इन सभी को भोक्ता के लिए सदा मन ही उत्पन्न करता है।॥ १७९॥

असङ्गःचिद्रूपममुं विमोह्य देहेन्द्रियप्राणगुणैर्निबध्य,
अहं ममेति भ्रमयत्यजत्रं मनः स्वकृत्येषु फलोपभुक्तिषु॥ १८०॥

असङ्गःचिद्रूपं, अँ,, विमोह्य, देहेन्द्रियप्राणगुणैः, निर्बध्य॥
अहं, मम, इति, भ्रमयति, अजस्रं, मनः, स्वर्कत्येषु, फलोपभुक्तिषु॥ १८०॥

असंग चैतन्यस्वरूप आत्मा को मोहित कर तथा देह, इन्द्रिय, प्राण सत्त्वादिगुणो से बांधकर, स्वयं कल्पित जो सुख दुःख आदि फल है उसके उपभोग में 'अहं मम' अर्थात् 'यह मेरा है' 'यह मै हूँ' ऐसे भ्रम को मन सर्वथा प्राप्त करता है॥१८०॥

अध्यासदोषात्पुरुषस्य संसृतिरध्यासबन्धस्त्व मुनैव कल्पितः,
रजस्तमोदोषवतोऽविवेकिनो जन्मादिदुःखस्य निदानमेतत्॥ १८१॥

अध्यासदोषात्, पुरुषस्य, संसृतिः,
अध्यासबन्धः, तु, अर्मुना, एव, कल्पितः॥
रजस्तमोदोषवतः, अविवेकिनः, जन्मादिदुःखस्य,
निदानं, एतत्॥ १८१॥

विषयों से पुरुष का संसर्गाध्यास होन से आत्मा में संसार संभावना होती है और अध्यास रूप बन्धन की कल्पना मन ही करताहै इसलिये रजस्तम रूपदोषयुक्त मनही विवेकी पुरुष के जन्म मरण आदि दुःख का मूल कारण है॥ १८१॥

अतः प्राहुर्मनोऽविद्यां पण्डितास्तत्वदर्शिनः,
येनैव भ्राम्यते विश्वं वायुनेवाभ्रमण्डलम्॥ १८२॥

अतः, प्राहुः, मनः, अविद्यां, पण्डिताः, तत्त्वदर्शिनः,
येन, एवं, भ्राम्यते, विश्व वायुना, इवें, अभ्रमण्डलम्॥ १८२॥

इसलिये यथार्थदर्शी विद्वान मन को ही अविद्या कहते हैं जिस प्रकार वायुवेग से मेघमण्डल भ्रमण करता है वैसे मन के ही वेग से सम्पूर्ण विश्व भ्रम को प्राप्त हो रहा है॥ १८२॥

तन्मनःशोधनं कार्य प्रयत्नेन मुमुक्षुणा,
विशुद्धे सति चैतस्मिन् मुक्तिः करफलायते॥ १८३॥

तन्मनः शोधनं (तत्मनःशोधनं), कार्य, प्रयत्नेन, मुमुक्षुणा॥
विशुद्धे, सति, च, एतस्मिन्, मुक्तिः, करफलायते॥ १८३॥

इस कारण मोक्षार्थी पुरुषों को प्रयत्न पूर्वक मन को ही शुद्ध करना चाहिए। जब मन विशद्ध होगा तो मुक्ति हस्तामलक अर्थात हाथ में लिए हुए आंवले के समान स्पष्ट प्राप्त हो जायगी॥ १८३॥

मोक्षकसत्त्या विषयेषु रागं निर्मूल्य संन्यस्य च सर्वकर्म,
सच्छ्रद्धया यः श्रवणादिनिष्ठोरजः स्वभावं स धुनोति बुद्धेः॥ १८४॥

मोक्षैकसक्त्या, विषयेषु, रागं, निर्मूल्यं, संन्यस्य, च, सर्वकर्म॥
सच्छ्रद्धया, यः, श्रवणादिनिष्ठः, रजःस्वभावं, सेः, धुनोति, बुद्धेः॥ १८४॥

प्रबल मोक्ष की शक्ति से जो पुरुष विषय में प्रीति का निर्मूल नाश कर और समस्त काम्य कर्मों को त्यागकर सम्यक् श्रद्धा से श्रवण मनन आदि उपायों में युक्त होता है वही मनुष्य बुद्धि के रजोगुण स्वभाव को नष्ट कर देता है॥ १८४॥

मनोमयो नापि भवेत्परात्मा ह्याद्यन्तवत्त्वात्परिणामिभावात्,
दुःखात्मकत्वादिषयत्वहेतो द्रष्टा हि दृश्यात्मतया न दृष्टः॥ १८५॥

मनोमयः, न, अपि, भवेत्, परात्मा, हि, आद्यन्तवत्त्वात्, परिणामिभावात्॥
दुःखात्मकत्वात्, विषयत्वहेतोः, द्रष्टा, हि, दृश्यात्मतया, न, दृष्टः॥ १८५॥

मनोमयकोश भी परम आत्मा नहीं है क्योंकि मनोमयकोश उत्पत्ति विनाशयुक्त है। मनोमय कोश की वृद्धि का क्षय भी होता है और इसका परिणाम दुःखात्मक है। आत्मा तो आदि अन्तसे रहित, उत्पत्ति विनाश रहित, सुखात्मक, विषयातिरिक्त, सबका द्रष्टा है। जो द्रष्टा होता है वह दृश्य होकर नहीं दिखाई देता इसलिये मनोमयकोश भी आत्मा नहीं है॥ १८५॥

विज्ञानमय कोश का विचार

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्ध सवृत्तिः कर्तृलक्षणः,
विज्ञानमयकोशः स्यात् पुंसः संसारकारणम्॥ १८६॥

बुद्धिः, बुद्धीन्द्रियैः, सार्धं, सवृत्तिः, कर्तृलक्षणः॥
विज्ञानमयकोशः, स्यात्, पुंसः, संसारकारणम्॥ १८६॥

पंच ज्ञानेन्द्रिय सहित और अपनी वृत्ति संयुक्त जो बुद्धि है वह कर्तृत्वयुक्त विज्ञानमयकोश है जिससे आत्मा में भी उत्पत्ति विनाशरूप संसार की संभावना होती है॥ १८६॥

अनुव्रजच्चित्प्रतिबिम्बशक्तिर्विज्ञातसंज्ञः प्रकृतेर्विकारः,
ज्ञानक्रियावानहमित्यजस्रं देहेन्द्रियादिष्वभिमन्यते भृशम्॥ १८७॥

अनुव्रजच्चित्प्रतिबिम्बशक्तिः, विज्ञानसंज्ञः, प्रकृतेः, विकारः॥
ज्ञानक्रियावान्, अंहं, इति, अजस्रं, देहेन्द्रियादिषु, अभिमन्यते, भृशम्॥ १८७॥

चैतन्य की प्रतिबिम्ब शक्ति से युक्त होकर, जो प्रकृति का विकार विज्ञानमय कोश है वही देह और इन्द्रियों में 'मैं ज्ञानी और क्रियावान हूँ' ऐसे अभिमान को उत्पन्न करता है॥ १८७॥

अनादिकालोऽयमहंस्वभावो जीवः समस्तव्यवहारवोढा,
करोति कर्माण्यपि पूर्ववासनः पुण्यान्यपुण्यानि च तत्फालनि॥ १८८॥

अनादिकालः, अयं, अहंस्वभावः, जीवः, समस्तव्यवहारवोढा॥
करोति, कर्माणि, अपि, पूर्ववासनः, पुण्यानि, अपुण्यानि, च, तत्फलानि॥ १८८॥

अहंकार स्वभाव वाला, संयुक्त अनादि काल का जो यह जीव है वही समस्त व्यवहार को प्राप्त करता है और पूर्व वासना संयुक्त होकर पुण्य, पाप आदि समस्त कर्मों को करता है और उसके फल को स्वयं भोगता है॥ १८८॥

भुङ्क्ते विचित्रास्वपि योनिषुवजन्नायाति निर्यात्यध उर्ध्वमेषः,
अस्यैव विज्ञानमयस्य जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थाः सुखदुःखभोगः॥ १८९॥

भुङ्क्ते, विचित्रासु, अपि, योनिषु, व्रजन, आयाति, निर्याति, अंधः, ऊर्ध्व, एषः॥
अस्य, एव, विज्ञानमयस्य, जाग्रत्स्वप्नाद्यवस्थाः, सुख दुःख भोगः॥ १८९॥

यह जीव अनेक प्रकार की योनितों में घूमता हुआ परलोक को जाता है और इस लोक को भी वापस आता है। इस विज्ञान मय कोश की जाग्रत्, स्वप्नादि अवस्था है वह सुख दुःख का अनुभव करता है॥ १८९॥

देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्मगुणाभिमानं सततं ममेति,
विज्ञानकोशोयमतिप्रकाशः प्रकृष्ट सांनिध्यवशात्परात्मनः॥
अतो भवत्येष उपाधिरस्य यदात्मधीःसंसरति भ्रमेण॥ १९०॥

देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्मगुणाभिमानं, संततं, मम, इति
विज्ञानकोशः, अयं, अतिप्रकाशः, प्रकृष्टसांनिध्यवशात्, परात्मनः॥
अतः, भवति, एषः, उपाधिः, अस्य, यदात्मधीः, संसरति, भ्रमेण॥ १९०॥

यह विज्ञानमय कोश परमात्माके अत्यन्त सन्निहित रहनेसे सब वस्तुओका परम प्रकाशक है और देहमें रहनेवाला वर्णाश्रम धर्मकर्म गुणका और ममताका आभिमान -सदा करता है । इसलिये देहादिमें जब भ्रमसे आत्मवृद्धि होती है तो आत्मा नाना तरहकी उपाधिको प्राप्त होकर संसारको प्राप्त होता है॥ १९०॥

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदि स्फुरत्ययं ज्योतिः,
कूटस्थः सन्नात्मा कर्ता भोक्ता भवत्युपाधिस्थः॥ १९१॥

यः, अयं, विज्ञानमयः, प्राणेषु, हृदि, स्फुरति, अयं, ज्योतिः॥
कूटस्थः, सन्, आत्मा, कर्ता, भोक्ता, भवेति, उपाधिस्थः॥ १९१॥

जो यह विज्ञानमयकोश प्राण में और हृदय में ज्योतिःस्वरूप से प्रकाश को प्राप्त होता है वही ज्योतिरूप कूटस्थ होने से आत्मा कहा जाता है और उपाधियुक्त होने से कर्ता भोक्ता होता है॥ १९१॥

स्वयंपरिच्छेदमुपेह्य बुद्धस्तादात्म्यदोषेण परं मृषात्मनः,
सर्वात्मकः सन्नपि वीक्षते स्वयं स्वतः पृथक्त्वेन मृदो घटानिव॥ १९२॥

स्वयं, परिच्छेदं, उपेत्य, बुद्धेः, तादात्म्यदोषेण, परं, मृषात्मन,॥
सर्वात्मकः, सन्, अपि, वीक्षते, स्वयं, स्वतः, पृथक्त्वेन, मृदः, घटान्, इव॥
१९२॥

यद्यपि परमात्मा स्वयं सर्वात्मक, सर्वस्वरूप है तथापि मिथ्यात्मक बुद्धि के तादात्म्य दोष को प्राप्त होने से देहस्थ जीवभाव को प्राप्त होकर स्वयं अपने को अलग देखता है। जैसे मृत्तिका से अलग घट दिखाई देता है परन्तु वास्तविक रूप से अलग नहीं है वैसे ही आत्मा किसी से अलग नहीं है।॥ १९२॥

उपाधिसम्बन्धवशात्परात्मा ह्युपाधिधर्मान्नुभाति तद्गुणः,
अयोविकारानविकारिवान्हवत् सदैकरूपोऽपि परःस्वभावात्॥
१९३॥

उपाधिसम्बन्धवशात्, परात्मा, हि, उपोधिधर्मान्, अनुभाति, तद्गुणः॥
अयोविकारान्, अविकारिवीन्हवत्, सदा, एकरूपः, अपि, परः, स्वभावात्॥
१९३॥

जैसे विकारयुक्त लोहेके संबन्ध होने पर अग्नि भी विकारयुक्त प्रतीत होता है अर्थात् जैसी आकृति लोहे की होती है वैसी ही आकृति लोहे

के संबन्ध होने से अग्नि की भी प्रतीत होती है। परंतु अग्नि तो सदा अपने स्वभाव से एकरूप ही रहती है वैसे परमात्मा सदा एकरूप है परन्तु अनेक प्रकार की उपाधि के सम्बन्ध से उपाधि के धर्म और गुण को अनुभव करता हुआ वैसा ही प्रकाशित होता है।॥ १९३॥

परमात्म तत्व से बद्ध आत्मा के विषय में शिष्य का प्रश्न

शिष्य उवाच

भ्रमेणाप्यन्यथा वाऽस्तु जीवभावः परात्मनः,
तदुपारनादित्वान्नानादेनाश इष्यते॥ १९४॥

भ्रमेण, अपि, अन्यथा, वा, अस्तु, जीवभावः, परात्मनः॥
तदुपाधेः, अनादित्त्वात्, न, अनादेः, नाशः, इष्यते॥ १९४॥

इतना उपदेश गुरुमुख से सुनकर, शिष्य पुनः गुरु से प्रश्न करता है कि, जो परमात्मा जीव भाव को प्राप्त हुआ है चाहे भ्रम से हो अथवा सत्य हो परन्तु जीव की उपाधि अनादि है और जो अनादि है उसका नाश भी नहीं होता है॥ १९४॥

अतोऽस्य जीवभावोऽपि नित्यो भवति संसृतिः,
न निवर्तेत तन्मोक्षः कथं मे श्रीगुरो वद॥ १९५॥

अतः, अस्य, जीवभावः, अपि, नित्या, भवति, संसृतिः॥

न, निवर्तेत, तत्, मोक्षः, कथं, मे, श्रीगुरो, वद॥ १९५॥

उपाधि के अनादि होने से आत्मा का जीवभाव और संसार ये दोनों नित्य हुए, नित्य होने से यह दोनों निवृत्त नहीं हो सकते तो फिर, हे श्री गुरुदेव ! इसका मोक्ष कैसे होगा, वह कहिए॥ १९५॥

गुरु का उत्तर

श्रीगुरुरुवाचः

सम्यक्पृष्टं त्वया विदन् सावधानेन तच्छृणु,
प्रामाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना॥ १९६॥

सम्यक्, पृष्टं, त्वयो, विद्वन्, सावर्धानेन, तत्, शृणु॥
प्रामाणिकी, न, भवति, भ्रान्त्या, मोहितकल्पना॥ १९६॥

शिष्य का उत्तम प्रश्न सुनकर गुरुजी बोले: हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। भ्रांति से मोहयुक्त जो परमात्मा में जीवभाव की कल्पना होती है वह कल्पना प्रामाणिक नहीं है॥ १९६॥

भ्रान्ति विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः,
न घटेतार्थसम्बन्धो नभसो नीलतादिवत्॥१९७॥

भ्रांन्ति, विना, तु, असङ्गस्य, निष्क्रियस्य, निराकृतेः॥
न, घटेत, अर्थसम्बन्धः, नभसः, नीलादिवत्॥ १९७॥

जैसे आकाश में श्यामता भ्रांति कल्पित है वास्तविक में आकाश का कोई रूप नहीं है वैसे ही आकृति से रहित असंग आत्मा के विषय संबन्ध की घटना भी करना अयोग्य है।॥ १९७॥

स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुणस्याक्रियस्य प्रत्यग्बोधानन्द रूपस्य बुद्धेः,
भ्रान्त्या प्राप्तो जीवभावो न सत्यो मोहापाये नास्त्यवस्तुस्वभावात्॥ १९८॥

स्वस्य, द्रष्टुः, निर्गुणस्य, अक्रियस्य, प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य, बुद्धेः॥
भ्रान्त्या, प्राप्तः, जीवभावः, न, सत्यः, मोहापाये, न, अस्ति, अवस्तुस्वभावात्॥ १९८॥

स्वयंद्रष्टा, गुणक्रिया से रहित, बोधानन्दस्व रूप परमात्मा में भ्रान्ति से जीवभाव प्राप्त होता है वास्तविक रूप में यह सत्य नहीं है, मोह के नाश होने पर स्वभाव से ही अनित्य वस्तु जीवभाव आदि का नाश होजाता है॥ १९८॥

यावद्भान्तिस्तावदेवास्य सत्ता मिथ्याज्ञानोज्जृम्भि तस्य प्रमादात्,
रज्ज्वां सो भ्रान्तिकालीन एव भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पोऽपि तदत्॥ १९९॥

यावत्, भ्रांन्तिः, तावत्, एव, अस्य, सत्ता, मिथ्या ज्ञानोज्जृम्भितस्य, प्रमादात्॥
रज्ज्वां, सर्पः, भ्रौन्तिकालीनः, एवं, भ्रन्ते, नाशे, न, एव, सर्पः, अपि, तद्वत्॥
१९९॥

जैसे रस्सी में सर्प का आभास होता है वह बुद्धि के प्रमाद से है, जब तक भ्रांति की स्थिति है तब तक ही सर्प प्रतीत होता है, भ्रांति के नाश होने पर सर्पबुद्धि का भी नाश हो जाता है वैसे ही जब तक भ्रांति है तब तक ही मिथ्या ज्ञानकल्पित जीवसत्ता रहती है। श्रम नाश होने पर जीवभाव नष्ट होकर केवल आत्म सत्ता ही रहती है॥ १९९॥

अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथेष्यते,
उत्पन्नायां तु विद्यायामाविद्यकमनाद्यपि॥ २००॥

अनादित्वं, अविद्यायाः, कार्यस्य, अपि, तथो, इष्यते॥
उत्पन्नायां, तु, विद्यायां, अविद्यकं, अनादि, अपि॥ २००॥

माया और माया का कार्य यह दोनों अनादि हैं। जब ज्ञान उत्पन्न होता है, तब अनादि भी माया सहित नष्ट हो जाता है जैसे स्वप्नावस्था का सम्पूर्ण कार्य निद्रा खुलने पर नष्ट हो जाता है॥ २००॥

प्रबोधे स्वमवत्सर्व सहमूलं विनश्यति,
अनाद्यपीदं नोनित्यं प्रागभाव इव स्फुटम्॥ २०१॥

प्रबोधे, स्वमवेत्, 'सर्व, सहमूलं, विनश्यति,,

अनादि, अपि, इदं, नो, नित्यं, प्रोगभावः, इव, स्फुटम॥ २०१॥

यद्यपि मायाकार्य सब अनादि हैं तथापि नित्य नहीं है क्योंकि उत्पत्ति के पूर्व वस्तु का अभाव अनादि है परन्तु जिस वस्तु का अभाव रहता है उस वस्तु का सद्भाव होने से उस अभाव का नाश होता है॥ २०२॥

अनादेरपि विध्वंसः प्रागभावस्य वीक्षितः,
यब्दुद्धयुपाधिसम्बन्धात् परिकल्पितमात्मनि॥ २०२॥

अनादेः, अपि, विध्वंसः, प्रागभावस्य, वीक्षितः॥
यब्दुद्धयुपाधिसम्बन्धात्, परिकल्पितं, आत्मनि॥ २०२॥

वैसे ही नित्य भी मायाकार्य ज्ञान उत्पन्न होने पर नष्ट होजाता है और बुद्धि का उपाधिसम्बन्ध होने से परमात्मा में जीवत्व की कल्पना होती है॥ २०२॥

जीवत्वं न ततोऽन्यस्तु स्वरूपेण विलक्षणाः,
सम्बन्धः स्वात्मनो बुध्या मिथ्याज्ञानपुरःसरः॥ २०३॥

जीवत्वं, न, ततः, अन्यः, तु, स्वरूपेण, विलक्षणः॥
सम्बन्धः, स्वात्मनः, बुध्यां, मिथ्याज्ञानपुरःसरः॥ २०३॥

इसके अतिरिक्त कोई अन्य हेतु नहीं है। मिथ्या ज्ञानपूर्वक बुद्धि के साथ आत्मा स्वरूप से विलक्षण सम्बन्ध होता है॥ २०३॥

विनिवृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा,
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम्॥ २०४॥

विनिवृत्तिः, भवेत्, तस्य, सम्यग्ज्ञानेन, न, अन्यथा॥
ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं, सम्यग्ज्ञानं, श्रुतः, मतम्॥ २०४॥

यथार्थ ज्ञान होने पर ही जीवत्व भाव की विशेष निवृत्ति हो जाती है। विनासम्यय ज्ञान के द्वारा जीवत्व भाव की विशेष निवृत्ति नहीं होती। परब्रह्म से अपने को एकत्व बुद्धि होने का नाम सम्यक् ज्ञान है॥ २०४॥

तदात्मानात्मनोः सम्याग्ववेकेनैव सिध्यति,
ततो विवेकः कर्तव्यः प्रत्यगात्मसदात्मनोः॥ २०५॥

तत्, आत्मानात्मनोः, सम्यग्विवेकेन, एव, सिध्यति॥
ततः, विवेकः, कर्तव्यः, प्रत्यगात्मसदात्मनोः॥ २०५॥

जलं पङ्कवदत्यन्तं पङ्कापाये जलं स्फुटम्,
यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः॥ २०६॥

जलं, पङ्कचत्, अत्यन्तं, पङ्कापये, जलं, स्फुटम्॥
यथा, भाति, तथा, आत्मा, अपि, दोषाभावे, स्फुटप्रभः॥२०६॥

आत्मा और जीव इन दोनों की एकता सम्यक विवेक से ही सिद्ध होती है इसलिये जीवात्मा परमात्मा का विवेक करना चाहिये। जैसे कीचड मिश्रित जल, कीचड का नाश होने पर निर्मल दिखाई देता है, उसी प्रकार जीवात्मा द्वारा परमात्मा में विवेक करनेसे जीवत्व भाव का नाश होने पर केवल शुद्ध परमात्मा स्पष्ट रूप से प्रकाशित होता है॥ २०५-२०६॥

असन्निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः,
ततो निरासः करणीय एव सदात्मनः साध्वहमादिवस्तुनः॥ २०७॥

असैन्निवृतौ, तु, सदात्मना, स्फुटं, प्रतीतिः, एतस्य, भवेत्, प्रतीचः॥
ततः, निरासः, करणीयः, एव, सदात्मनः, साधु, अहमादिवस्तुनः॥ २०७॥

असत् वस्तुओ के निवृत्त होने पर प्रत्यक्ष पर आत्मा की आत्म रूप से सदा स्पष्ट प्रतीति होती है। आत्मवस्तु के प्रतीत होने बाद अहंकार आदि वस्तु से सदा दूर रहना ही उचित है॥ २०७॥

अतो नायं परात्मा स्याद्विज्ञानमयशब्दभाक्,
विकारित्वाज्जडत्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुतः॥
दृश्यत्वाव्यभिचारित्वान्नानित्यो नित्य इष्यते॥ २०८॥

अतः, न, अयं, परात्मा, स्यात्, विज्ञानमयशब्दभाक्॥
विकारित्वात्, जडत्वात्, च, परिछिन्नत्वहेतुतः,
दृश्यत्वात्, व्यभिचारित्वात्, न, अनित्यः, नित्यः, इष्यते॥ २०८॥

विज्ञानमयकोश आत्मा नहीं है क्योंकि विज्ञानमयकोश भी वृद्धि-क्षय आदि से विकारयुक्त है और जड है, आवृत है, दृश्य है, व्यभिचारी अर्थात् एकरूप से सदा वर्तमान नहीं रहता और अनित्य है। आत्मा में सब हेतु से भिन्न है अर्थात् आत्मा अविकारी, चैतन्य, अपरिच्छिन्न अर्थात् अनावृत नेत्रों के अगोचर, सर्वथा सर्वत्र, एकरूप से वर्तमान है। इसलिये जो अनित्य विज्ञानमयकोश है वह नित्य परमात्मा नहीं हो सकता॥ २०८॥

आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बिततनुवृत्तिस्तमोजृम्भिता स्यादानन्दमयः प्रियादिगुणकः स्खेष्टार्थलाभोदयः
पुण्यस्यानुभवे विभाति कृतिनामानन्दरूपः स्वयं श्रुत्वा नन्दति यत्र साधुतनुभृन्मात्रः प्रयत्नं विना॥ २०९॥

आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बिततनुः, वृत्तिः, तमोजृम्भिता, स्यात्, आनन्दमयः, प्रियादिगुणकः, स्वेष्टार्थलाभोदयः॥
पुण्यस्य, अनुभवे, विभाति, कृतिनां, आनन्दरूपः, स्वयं, भूत्वा, नन्दति, यत्र, साधु, तनुभृन्मात्रः, प्रयत्नं, विना॥ २०९॥

आनन्द के प्रतिबिम्ब से संयुक्त यह शीर तमोगुण वृत्ति से रहित आनन्दमय कोश होता है उसका प्रेम, मोद और प्रमोद गुण है, जो अपने इष्ट वस्तुओं का लाभ करने पर प्रकट होती है। पुण्यात्मा मनुष्यों के पुण्य का उदय होने पर, स्वयं आनन्दकोष उत्पन्न होकर

शोभित होता है, जिससे सभी पवित्र देहधारी पुण्यात्मा बिना प्रयत्न ही आनन्द को प्राप्त होते हैं॥ २०९॥

आनन्दमयकोशस्य सुषुप्तौ स्फूर्तिरुत्कटा,
स्वमजागरयोरीषदिष्टसंदर्शनादिना॥ २१०॥

आनन्दमयकोशस्य, सुषुप्तौ, स्फूर्तिः, उत्कटा॥
स्वमजागरयोः, ईषत्, इष्टसंदर्शनादिना॥ २१०॥

सुषुप्ति अवस्था में आनन्दमय कोश की यथार्थ रीति प्रतीति होती है, तथापि जाग्रत और स्वप्न अवस्था में इष्ट वस्तु के दिखाई देने से किंचित आनन्दमयकोश की प्रतीति होती है।॥ २१०॥

नैवायमानन्दमयः परात्मा सोपाधिकत्वात्प्रकृतेर्विकारात्,
कार्यत्वहेतोः सुकृतक्रियाया विकारसङ्घातसमाहितत्वात्॥ २११॥

न, एव, अयं, आनंदमयः, परात्मा, सोपांधिकत्वात्, प्रकृतेः, विकारात्॥
कार्यत्वहेतोः, सुकृतक्रियायाः, विकारसङ्घातसमाहितत्वात्॥ २११॥

आनन्दमयकोश उपाधि संयुक्त है और प्रकृति का विकार है और शुभ कर्मों का कार्य उसका कारण है और विकार समूह से संयुक्त है इसलिये आनन्दमयकोश परमात्मा नहीं है। आत्मा तो इन सब हेतुओं से रहित है॥ २११॥

पञ्चानामपि कोशानां निषेधे युक्तितःश्रुतेः,
तन्निषेधावधिः साक्षी बोधरूपोऽवशिष्यते॥२१२॥

पञ्चानां, अपि, कोशानी, निषेधे, युक्तितः, श्रुतेः॥
तन्निषेधावधिः, साक्षी, बोधरूपः, अवशिष्यते॥ २१२॥

युक्तियों और श्रुतियों से पंचकोश मे जो आत्मबुद्धि फैल रही है उसके निषेध करने पर उनके पर उनके निषेध की अवधि स्वरुप, शुद्ध साक्षी परमात्मा अवशेष रह जाता है।॥ २१२॥

योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्षणः,
अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जनः,
सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चिता॥ २१३॥

यः, अयं, आत्मा, स्वयंज्योतिः, पञ्चकोशविलक्षणः,
अवस्थात्रयसाक्षी, सन, निर्विकारः, निरञ्जनः,
सदानन्दः, सः, विज्ञेयः, स्वात्मत्वेन, विपश्चिता॥ २१३॥

पञ्चकोश से विलक्षण स्वयं प्रकाशस्वरूप यह जो आत्मा है वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी, निर्मल, निर्विकार, सदा आनन्द्ररूप है ऐसा आत्मरूप से विद्वान को समझना चाहिये॥ २१३॥

आत्म स्वरुप के विषय में शिष्य का प्रश्न

शिष्य उवाच

मिथ्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पञ्चसु,
सर्वाभावं विना किञ्चिन्न पश्याम्यन्न हे गुरो॥
विज्ञेयं किमु वस्त्वस्ति स्वात्मनात्मविपश्चिता॥ २१४॥

मिथ्यात्वेन, निषिद्धेषु, कोशेषु, एतेषु, पञ्चसु,
सर्वोभावं, विना, किंचित्, न, पश्यामि, अत्र है, गुरो॥
विज्ञेयं, किमु, वस्तु, अस्ति, स्वात्मना, आत्मविपश्चिता॥ २१४॥

शिष्य ने पुनः प्रश्न किया: हे गुरो ! अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय इन पांचों कोशों को मिथ्या रूप से निषिद्ध हो जाने के पश्चात् वस्तुमात्र का अभाव ही दिखाई देता है, अन्य कुछ दिखाई नहीं देता तो कौन सी वस्तु है जिसको विद्वान् पुरुष को आत्मस्वरूप समझना चाहिए॥ २१४॥

गुरु का उत्तर

श्रीगुरुरुवाच,

सत्यमुक्तं त्वया विद्वन्निपुणोऽसि विचारणे,

अहमादिविकारास्ते तदभावोऽयमप्यनु॥ २१५॥

सत्यं, उक्तं, त्वया, विद्वन्, निपुणः, असि, विचारणे॥
अहमादिविकाराः, ते, तदभावः, अयं, अपि, अनु॥ २१५॥

प्रश्न की प्रशंसा करते हुए गुरु बोले: हे विद्वन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया तुम आत्मविचार में निपुण हो। मैं तुमसे कहता हूँ ध्यान से सुनो, अहंकार आदि जितने विकार हैं उन विकारों को मिथ्या समझ कर निषेध करने के पश्चात जो कुछ अवशेष रह जाता है वही आत्मा है॥ २१५॥

सर्वे येनानुश्रुयन्ते यः स्वयं नानुभूयते,
तमात्मानं वेदितारं विद्धिबुद्ध्या सुसूक्ष्मया॥ २१६॥

सर्वे, येन, अनुभूयन्ते, यः, स्वयं, न, अनुभूयते॥
तं, आत्मानं, वेदितारं, विद्धि, बुध्या, सुसूक्ष्मया॥ २१६॥

सम्पूर्ण अहंकार आदि विकारों को जो अनुभव करता है जिसको कोई दूसरा अनुभव नहीं कर सकता, उन्हीं को सूक्ष्मबुद्धि से सुन्दर सर्वज्ञ आत्मा जानना चाहिए॥ २१६॥

तत्साक्षिकं भवेत्तत्तद्यद्ययेनानुश्रुयते,
कस्याप्यननुश्रूतार्थे साक्षित्वं नोपयुज्यते॥ २१७॥

तत्साक्षिकं, भवेत्, तत्, तत्, यद्, यद्, येर्ने, अनुभूयते॥
कस्य, अपि, अननुभूतार्थे, सौक्षित्वं, नैं, उपयुज्यते॥ २१७॥

जिस-जिस वस्तु के द्वारा जो जो अनुभव किया जाता है, वह उस वस्तु का साक्षी होता है। जिस वस्तु का जिसने नहीं अनुभव किया है उस वस्तु की साक्षिता उसमें युक्त नहीं होती।॥ २१७॥

असौ स्वसाक्षिको भावो यतः स्वेनानुभूयते,
अतः परं स्वयं साक्षात् प्रत्यगात्मा न चेतरः॥ २१८॥

असौ, स्वसाक्षिकः, भावः, यतः, स्वेन, अनुभूयते॥
अतः, परं, स्वयं, साक्षात्, प्रत्यगात्मा, न, च, इतरः॥ २१८॥

यह आत्मा स्वयं अपने को अनुभव करता है इसलिये इसे स्वसाक्षि कहा जाता है। इसके सिवा कोई दूसरा अपना साक्षात् अंतरात्मा नहीं है॥ २१८॥

जाग्रत्स्वमसुषुप्तिषु स्फुटतरं योऽसौ समुज्जृम्भते प्रत्यग्रूपतया सदाहमहमित्यन्तः स्फुरन्नैकधा,
नानाकारविकारभागिन इमान् पश्यन्नहंधीमुखान्
नित्यानन्दचिदात्मना स्फुरति तं विद्धि स्वमेतं हृदि॥ २१९॥

जाग्रत्स्वमसुषुप्तिषु, स्फुटतरं, यः, असौ, समुज्जृम्भते, प्रत्यग्रूपतया, सदा, अहं, अहं, इति, अन्तः, स्फुरेन, एकधा,

नानाकारविकारभागिनः, इमान्, पश्यन्, अहंधीमुखान्, नित्यानन्दचिदात्मना, स्फुरैति, तं, विद्धि, स्वं, एतं, हृदि॥ २१९॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति - इन तीनों अवस्थाओं में जो स्पष्ट प्रत्यक्षरूप से उद्यत रहता है और अन्तःकरण में 'अहं' ऐसी प्रतीति से सदा सम्पादित होता रहता है और अनेक तरह का विकारयुक्त जो यह बुद्धि आदि है उसको साक्षी रूप से देखता हुआ नित्यानन्द चैतन्य स्वरूप से हृदय में विद्यमान रहता है उसे आत्मा जानना चाहिए॥ २१९॥

घटोदके विम्बितमर्कबिम्बमालोक्य मूढो रविमेव मन्यते,
तथा चिदाभासमुपाधिसंस्थं भ्रान्त्याहमित्येव जडोऽभिमन्यते॥ २२०॥

घटोदेके, बिम्बितं, अर्कबिम्ब, आलोक्य, मूढः, रवि, एव, मन्यते॥
तथो, चिदाभासं, उपाधिसंस्थं, भ्रान्त्या, अहं, इति, एव, जडः, अभिमन्यते॥ २२०॥

जैसे घडे के जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब को देखकर मूर्ख मनुष्य उसी प्रतिबिम्बि को सूर्य मानते हैं वैसे ही शरीरादि उपाधि में स्थित जो चैतन्य का आभास अहंकार है। उसी अहंकारको मूर्ख मनुष्य आत्मा समझते हैं वास्तव मे वह अहंकार आदि आत्मा नहीं है।॥ २२०॥

घटं जलं तद्तमर्कबिम्बं विहाय सर्व विनिरीक्ष्यतेऽर्कः,
तटस्थ एतत्रितयावभासकः स्वयं प्रकाशो विदुषा यथा तथा॥ २२१॥

घटं, जलं, तद्गतं, अर्कबिम्बं, विहाय, सर्व, विनिरीक्ष्यतेऽर्कः,
तटस्थः, एतत्रितयावभासकः, स्वयंप्रकाशः, विदुषा, यथा, तथा॥ २२१॥

जैसे विद्वान घड़ा और जल तथा व जल में स्थित सूर्य के प्रतिबिम्ब इन सभी को छोड़ कर तीनों के प्रकाशक स्वयं प्रकाश स्वरूप सूर्यको पृथक दखते हैं॥ २२१॥

देहं धियं चित्प्रतिबिम्बमेवं विसृज्य बुद्धौ निहितं गुहायाम्,
द्रष्टारमात्मानमखण्डबोधं सर्वप्रकाशं सदसदिलक्षणम्॥ २२२॥

देहं, धिय, चित्प्रतिबिम्बं, एवं, विसृज्य, बुद्धौ, निहितं, गुहायाम्॥
द्रष्टारंआत्मानं, अखण्डबोधं, सर्वप्रकाशं, सदसद्विलक्षणम्॥ २२२॥

नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्ममन्तर्बहिःशून्यमन न्यमात्मनः,
विज्ञाय सम्यङ् निजरूपमेतत् पुमान् विपाप्मा विरजा विमृत्युः॥ २१३॥

नित्यं, विभुं, सर्वगतं, सुसंक्ष्मं, अंतर्बहिःशून्यं, अनन्यं, आत्मनः॥
विज्ञाय, सम्यक्, निजरूपं, एतत्, पुमान्, विपाप्मा, विह्वजाः, विमृत्युः॥ २२३॥

वैसे ही देह, बुद्धि तथा बुद्धि रुपी गुफा में पडा हुआ चैतन्य का प्रतिबिम्ब इन तीनो को छोडकर सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सबके प्रकाशक.

स्थूल-सूक्ष्म जगत से विलक्षण, नित्य व्यापक, सर्वगत, सूक्ष्मरूप. भीतर-बाहर से रहित ऐसे यथार्थ आत्म स्वरूप को जानकर मनुष्य पाप से रहित निर्मल और जन्न मरण से मुक्त हो जाता है ॥ २२२-२२३॥

विशोक आनन्दघनो विपश्चित् स्वयं कुतश्चिन्न बिभेति कश्चित्,
नान्योऽस्ति पन्था भवबन्धमुक्ते विना स्वतत्वावगमं मुमुक्षोः॥ २२४॥

विशोकः, आनन्दघनः, विपश्चित्, स्वयं, कुर्तश्चित्, न, बिभेति, कश्चित्॥
न, अन्यः, अस्ति, पन्थाः, भवबन्धमुक्तेः, विना, स्वतत्वावगमं, मुमुक्षोः॥ २२४॥

आत्म स्वरूपको यथार्थ रूप से जानने से विद्वान् शोक रहित आनन्द संयुक्त होकर निर्भय हो जाता है इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको भववन्धन से मुक्त होने का उपाय आत्मतत्व के ज्ञान के बिना दूसरा नहीं है॥ २२४॥

ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञानं भवंमोक्षस्य कारणम्,
येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्म सम्पद्यते बुधैः॥ २२५॥

ब्रह्माभिन्नत्वविज्ञानं, भवमोक्षस्य, कारणम॥
येन, अद्वितीयं, आनन्दं, ब्रह्म, सम्पद्यते, बुधैः॥ २२५॥

ब्रह्म और आत्मा के अभेद का ज्ञान अर्थात् 'मैं बहा हूँ' होना ही भवबन्ध से मुक्त होने का कारण है जिस बलज्ञान के द्वारा आनन्दस्वरूप अद्वितीय ब्रह्म को विद्वानजन प्राप्त होते हैं॥ २२५॥

ब्रह्मभूतस्तु संसृत्यै विदानावर्तते पुनः,
विज्ञातव्यमतः सम्यग्ब्रह्माभिन्नत्वमात्मनः॥ २२६॥

ब्रह्मश्रूतः, तु, संसृत्यै, विद्वान्, न, आवर्तते, पुनः,
विज्ञातव्यं, अतः, सम्यक्, ब्रह्माभिन्नत्वं, आत्मनः॥ २२६॥

ब्रह्मस्वरूप हो जाने पर विद्वान् पुनः संसार में जन्म नहीं लेते इसलिये यथार्थ रीति से विद्वानों को अपने को ब्रह्मस्वरूप समझना चाहिये।॥ २२६॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म विशुद्धं परं स्वतःसिद्धम्,
नित्यानन्दैकरसं प्रत्यगभिन्नं निरन्तरं जयति॥ २२७॥

सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं, ब्रह्म, विशुद्धं, परं, स्वतः, सिद्धम॥
नित्यानन्दैकरसं, प्रत्यागभिन्नं, निरन्तरं, जयति॥ २२७॥

परब्रह्म सत्य ज्ञानस्वरूप, अनन्त विशुद्ध, स्वतःसिद्ध, सदा आनन्दस्वरूप, सदा एकरस, प्रत्यक्ष रूप से भेदरहित रहकर निरन्तर सबसे अलग वर्तमान रहता है।॥ २२७॥

सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात्,
न ह्यन्यदस्ति किञ्चित् सम्यक्परमार्थतत्त्वबोधदशायाम्॥ २२८॥

सत्, इं, परमाद्वैतं, स्वस्मात्, अन्यस्य, वस्तुनः, अभावात्॥
न, हि, अन्यत्, अस्ति, किञ्चित्, सम्यक्, परमर्थितत्त्वबोधदशायाम्॥ २२८॥

आत्मातत्व ज्ञान होने पर ब्रह्म से भिन्न सब वस्तुओं के अभाव होने से अद्वितीय परब्रह्म ही स्पष्ट दिखाई देता है, ब्रह्म से भिन्न कुछ भी दिखाई नहीं देता॥ २२८॥

यदिदं सकलं विश्वं नानारूपं प्रतीतमज्ञानात्,
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम्॥ २२९॥

यत्, इदं, सकलं, विश्वं, नानारूपं, प्रतीतं, अज्ञानात्॥
तत्, सर्वे, ब्रह्म, एव, प्रत्यस्ताशेषभावनादोषम्॥ २२९॥

यह सम्पूर्ण संसार जो अज्ञान के कारण अनेकरूप प्रतीत होता है, यह समस्त ज्ञान दशा में संपूर्ण भावना दोष से रहित होकर केवल ब्रह्मस्वरूप ही है॥ २२९॥

मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्नः कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात्॥
न कुम्भरूपं पृथगस्ति कुम्भः कुतो मृषा कल्पितनाममात्रः॥ २३०॥

मृत्कार्यभूतः, अपि, मृदः, न, भिन्नः, कुम्भः, अस्ति, सर्वत्र, तु, मृत्स्वरूपात्॥

न, कुम्भेरूपं, पृथक्, अस्ति, कुम्भः, कुतः, मृषा, कल्पितनाममात्रः॥२३०॥

यद्यपि मृत्तिका का कार्य भूत घड़ा है अर्थात् मृत्तिका से उत्पन्न है परन्तु मृत्तिका से भिन्न नहीं है क्योंकि सर्वत्र मृत्स्वरूपही दीवना है तथा घट का रूप भी घट से अलग नहीं है मिथ्या कल्पित नाम मात्र ही भिन्न है।॥ २३०॥

केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते,
अतो घटः कल्पित एव मोहान्मृदेव सत्यं परमार्थभूतम्॥ २३१॥

केन, अपि, मृद्भिन्नतया, स्वरूपं, घंटस्य, संदर्शयितुं, नं, शक्यते॥
अतः, घटः, कल्पितः, एव, मोहात्, मृद, एव, सत्यं, परमार्थभूतम्॥ २३१॥

मिटटी से अलग घड़े का स्वरुप कोई भी नहीं दिखा सकता है इसलिये घड़ा और घड़े का रूप यह सभी मोह कल्पित है। वास्तव में सत्य तो परमार्थभूत मिटटी का ही सत्य है॥ २३१॥

सब्रह्मकार्य सकलं सदैव तन्मात्रमेतन ततोऽन्यदस्ति,
अस्तीति यो वक्ति न तस्य मोहो विनिर्गतो निद्रितवत्प्रजल्पः॥ २३२॥

सब्रह्मकार्य, सकलं, सदा, एव, तन्मात्रं, एतत्, न, ततः, अन्यत्, अस्ति,
अस्ति, इति, यः, वक्ति, न, तस्य, मोह, विनिर्गतः, निद्रितवत्प्रजल्पः॥ २३२॥

सत्य स्वरूप ब्रह्म से उत्पन्न जो यह सकल जगत है वह भी सत्य ही है क्योंकि ब्रह्म से भिन्न अन्य दूसरा कुछ भी नहीं है। यदि कोई कहे कि, ब्रह्म से भी भिन्न कोई अन्य वस्तु है तो यही समझना चाहिए कि इसका मोह दूर नहीं हुआ है। उसका यह कथन सोये हुए मनुष्य की भांति मिथ्या कल्पना है।॥ २३२॥

ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी श्रौती बूतेऽथर्व निष्ठा वरिष्ठा,
तस्मादेतद्ब्रह्ममात्रं हि विश्वं नाधिष्ठानादिन्नतारोपितस्य॥ २३३॥

ब्रह्म, एवं, इदं, विश्व, इति, एव, वाणी, श्रौती, ब्रूते, अथर्वनिष्ठा, वरिष्ठा,
तस्मात्, एतत्, ब्रह्ममात्रं, हि, विश्वं, न, अधिष्ठानात्, भिन्नता, आरोपितस्य॥
२३३॥

सबसे श्रेष्ठ जो अथर्व वेद वाणी है, वह कहती है कि सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममय है इसलिये यह विश्व ब्रह्म से भिन्न नहीं है जैसे रस्सी में जो सर्प का आरोप होता है वह आरोपित सर्प रस्सी से भिन्न नहीं है, वैसे ही ब्रह्म मे जो अज्ञान से संसार का आरोप हुआ है यह आरोपित संसार भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है।॥ २३३॥

सत्यं यदि स्याज्जगदेतदात्मनानतत्त्वहानिर्नि गमाप्रमाणता,
असत्यवादित्वमपीशितुः स्या नैतत्रयं साधुहितं महात्मनाम्॥ २३४॥

सत्यं, यदि, स्यात्, जगत्, एतत्, आत्मना, तत्त्वहानिः, निर्गमाप्रमाणता॥

असत्यवादित्वं, अपि, ईशितुः, स्यात्, न, एतत्, त्रयं, साधुहितं, महात्मनाम्॥ २३४॥

यह दृश्य जगत् यदि अपने स्वरूप से सत्य हो तो आत्मतत्त्व की कुछ भी हानि नहीं होगी किन्तु जगत को अनित्य कहने वाले वेद अप्रमाणिक सिद्ध होंगे और जगत को अनित्य कहने वाले ईश्वर भी मिथ्यावादी होंगे। जगत का सत्य होना, वेद का अप्रमाण्य होना, ईश्वर का मिथ्यावादी होना, यह तीनों बात किसी महात्मा को भी अभीष्ट नहीं है इसलिये जगत को अनित्य मानना ही युक्त है।॥ २३४॥

ईश्वरो वस्तुतत्वज्ञो न चाहं तेष्ववस्थितः,
न च मत्स्थानि भूतानीत्येवमेव व्यचीकल्पत्॥ २३५॥

ईश्वरः, वस्तुतत्त्वज्ञः, न, च, अहं, तेषु, अवस्थितः॥
न, च, मत्स्थानि, भूतानि, इति, एवं, एवं, व्यचीकल्पत्॥ २३५॥

यथार्थ वस्तु का ज्ञाता ईश्वर ही है, ईश्वर ने ही यह निश्चय किया है कि 'मुझ में समस्त भूत स्थित नहीं हैं अपितु मैं हीं समस्त भूतो में अवस्थित हूँ॥ २३५॥

यदि सत्यं भवेदिश्वं सुषुप्तावुपलभ्यताम्,
यन्नोपलभ्यते किञ्चिदतोऽसत्स्वप्नवन्मृषा॥ २३६॥

यदि, सत्यं, भवेत्, विश्व, सुषुप्तौ, उपलभ्यताम्,

यत्, न, उपलभ्यते, किञ्चित्, अतः, असत्, स्वप्नवत्, मृषा॥ २३६॥

यदि यह विश्व सत्य है तो सुषुप्तिकाल में भी इसकी प्रतीति होनी चाहिये जबकि सुषुप्ति में जगत की प्रतीति नहीं होती है, अत: यही समझना चाहिये कि, जगत् अनित्य है और स्वप्नवत् मिथ्या है।॥ २३६॥

अतः पृथङ्नास्ति जगत्परात्मनः पृथक्प्रतीतिस्तु मृषा गुणादिवत्॥
आरोपितस्यास्ति किमर्थवत्ता धिष्ठानमाभाति तथा भ्रमेण॥ २३७॥

अंतः, पृर्थक्, नँ, अस्ति, जगत्, परीत्मनः, पृथक्, प्रेतीतिः, हुँ, मृषा, गुणादिवत्॥
आरोपितस्य, अस्ति, किं, अर्थवत्ता, अधिष्ठीनं, आभाति, तथा, भ्रमेण॥ २३७॥

यह जगत् परमात्मा से पृथक् नहीं है, उसकी पृथक प्रतीति तो केवल भ्रम मात्र है क्योंकि गुणी से गुण की पृथक प्रतीति तो हो ही नहीं सकती। आरोपित वस्तु की कोई कोई वास्तविकता नहीं है क्योंकि केवल उसका अधिष्ठान ही भ्रम से अलग दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म में जगत की प्रतीति भी ब्रह्मस्वरूप ही है॥ ३३७॥

भ्रान्तस्य यद्यद्भ्रमतः प्रतीतं ब्रह्मैव तत्तद्रजतं हि शुक्तिः,
इदन्तया ब्रह्म सदेव रूप्यते त्वारोपितं ब्रह्मणि नाममात्रम्॥ २३८॥

भ्रान्तस्य, यत्, यद्, भ्रमतः, प्रतीतं, ब्रह्म, एव, तत्, तत्, रजतं, हि, शुक्ति॥

इदन्तया, ब्रही, सदा, एवं, रूप्यते आरोपितं, ब्रह्मणि, नाममात्रम्॥ २३८॥

अज्ञानी पुरुष के भ्रम से जो भी वस्तु प्रतीत होती है वह सभी ब्रह्मरूप ही है जैसे सीपी में भ्रम से चांदी प्रतीत होती है परन्तु वस्तुत: वह सीपी ही है इसी प्रकार से इस जगत में सदा ब्रह्म ही निरूपित होते हैं और ब्रह्म में जो अनेक प्रकार का जगत आरोपित है वह तो केवल नाममात्र ही है॥ २३८॥

अतः परं ब्रह्म सददितीयं विशुद्धविज्ञानवनं निरञ्जनम्,
प्रशान्तमाघन्तविहीनमक्रियं निरन्तरानन्दरसस्वरूपम्॥ २३९॥

अतः, परं, ब्रह्म, सत्, अद्वितीयं, विशुद्धैविज्ञानघनं, निरञ्जनम्॥
प्रशान्तं, आघन्तविहीनं, अक्रियं, निरन्तरानन्दरसस्वरूपम्॥ २३९॥

निरस्तमायाकृतसर्वभेदं नित्यं सुखं निष्कलमप्रमेयम्,
अरूपमव्यक्तमनाख्यमव्ययं ज्योतिः स्वयं किञ्चिदिदं चकास्ति॥ २४०॥

निरस्तमायाकृतसर्वभेदं, नित्यं, सुखं, निष्कलं, अप्रमेयम्॥
अरूपं, अव्यक्तं, अनाख्यं, अव्ययं, 'ज्योतिः, स्वयं, किञ्चित्, इदं, चकास्ति॥ २४०॥

इसलिये परब्रह्म सत्य, अद्वितीय, विशुद्ध, विज्ञानघन, निर्मल, प्रशान्त, आदि अन्त से हीन, क्रिया रहित, सदा आनन्द रसस्वरूप, मायाकृत

सब भेदों से अतिरिक्त, नित्य, सुखरूप, निष्कल, अप्रमेय, रूप रहित, अव्यक्त, नाश रहित, स्वयं प्रकाश ज्योतिः स्वरूप है॥ २३९-२४०॥

ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्तं निर्विकल्पकम्,
केवलाखण्डचिन्मानं परं तत्त्वं विदुर्बुधाः॥ २४१॥

ज्ञाज्ञेयज्ञानशून्यं, अनन्तं, निर्विकल्पकम्॥
केवलाखण्ड चिन्मात्रं, परं, तत्त्वं, विदुः, बुधाः॥ २४१॥

ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान अर्थात कर्ता, कर्म और क्रिया इन तीनों से शून्य अनन्त, निर्विकल्प, केवल, अखण्ड, चैतन्यस्वरूप, परमात्मतत्त्व को विद्वान् लोग जानते हैं। जब आत्मा से अतिरिक्त जब कोई पदार्थ है ही नहीं तो आत्मा किस वस्तु का ज्ञाता होगा और किस वस्तु का ज्ञान आत्मा में रहेगा, इसलिए आत्मा ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान शून्य है॥ २४१॥

अहेयमनुपादेयं मनोवाचामगोचरम्,
अप्रमेयमनाद्यन्तं ब्रह्म पूर्णमहं महः॥ २४१॥

अहेयम्, अनुपादेयं, मनोवाचां, अगोचरम्॥
अप्रमेयं, अनाद्यन्तं, ब्रह्म, पूर्ण, अहं, महः॥ २४२॥

वह तेज पुंज ब्रह्म त्याग अथवा ग्राह्य से रहित, मन और वचन का अविषय, अप्रमेय, आदि-अन्त हीन और परिपूर्ण है ऐसा स्वयं ज्ञानी पुरुष को समझना चाहिये।॥ २४२॥

महावाक्य का विचार

तत्त्वंपदाभ्यामभिधीयमानयोर्ब्रह्मात्मनोः शोधितयोर्यदीत्थम्,
श्रुत्या तयोस्तत्त्वमसीति सम्यगेकत्वमेव प्रतिपाद्यते मुहुः॥ २४३॥

तत्त्वंपदाभ्यां, अभिधीयमानयोः, ब्रह्मात्मनोः, शोधितयोः, यदि, इत्थम्॥
श्रुत्या, तयोः, तत् त्वं असि, इति, सम्यक्, एकत्वं, एव, प्रतिपाद्यते, मुहुः॥
२४३॥

तत्वमसि, यह वेद का महावाक्य जीवात्मा परमात्मा के अभेद विषय का ही प्रतिपादन करता है जैसे सर्वज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य तत्पद का अर्थ है तथा अल्पज्ञत्व विशिष्ट चैतन्य त्वंपद का अर्थ है इन दोनो अर्थो के शोधन करने से अर्थात अच्छी रीति से विचारा जाय तो तत्त्वमसि, यह श्रुति बार बार दोनो के एकत्व ही का वर्णन कहती है। इन दोनो विरुद्ध अंश को त्यागकर देनेते जीवात्मा परमात्मा की एकता सिद्ध होती है इसी का नाम भागत्याग लक्षणा कही जाती है॥ २४३॥

ऐक्यं तयोर्लक्षितयो वाच्ययोर्निगद्यतेऽन्योन्य विरुद्धधर्मिणोः,
खद्योतभान्वोखि राजभृत्ययोः कूपाम्बुराश्योः परमाणुमेर्वोः॥ २४४॥

ऐक्यं, तयोः, लक्षितयोः, न, वाच्ययोः, निगद्यते, अन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः॥
खद्योतभान्वोः, इव, राजभृत्ययोः, कूपम्बुराश्योः, परमाणुमेर्वोः॥ २४४॥

सर्वज्ञत्व विशिष्ट ईश्वर व अल्पज्ञत्व विशिष्ट ईश्वर इन दोनों में एकता नहीं होती है क्योंकि यह दोनों खद्योत और सूर्य के सदृश राजा एवं राजसेवक, कुआं एवं समुद्र, परमाणु एवं सुमेरु के समान परस्पर विरुद्धधर्म युक्त है।॥ २४४॥

तयोर्विरोधोऽयमुपाधिकल्पितो न वास्तवः कश्चिदुपाधिरेषः,
ईशस्य माया महदादिकारणं जीवस्य कार्य शृणु पञ्चकोशम्॥ २४५॥

तयोः, विरोधः, अयं, उपाधिकल्पितः, न, वास्तवः, कश्चित, उपाधिः, एषः॥
ईशस्य, माया, महदादिकारणं, जीवस्य, कार्य, शृणु, पञ्चकोशम्॥ २४५॥

जीवात्मा और परमात्मा का जो अल्पज्ञत्व सर्वज्ञत्व आदि उपाधि है वह सब कल्पित है वास्तविक यह कोई उपाधि नहीं है माया और महत्तत्त्व आदि ईश्वर का कारण है और अन्नमय आदि पञ्चकोश जीव का कारण हैं॥ २४५॥

एतावुपाधी परजीवयोस्तयोः सम्यनिरासे न परो न जीवः,
राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटकस्तयोरपोहे न भटो न राजा॥ २४६॥

एतौ, उपाधी, परजीवयोः, तयोः, सम्यक्, निरासे, न, परः, न, जीवः॥
राज्यं, नरेन्द्रस्य, भटस्य, खेटकः, 'तयोः, अपाहे, न, भटः, न, राजा॥ २४६॥

माया और महत्तत्त्व आदि जो परमात्मा की उपाधि है और अन्नमय आदि पञ्चकोश जो जीव की उपाधि है इन दोनों उपाधि का सम्यक

निवारण होने से न परमात्मा रहेगा न जीवात्मा रहेगा। जैसे राज्य करने से राजा कहा जाता है और वही राजा युद्ध में जाने से वीर कहा जाता है इन दोनों उपाधि के छोड देने से न राजा कहा जायगा न तो वीर कहा जायगा। एक ही मनुष्य की आकृति दिखाई देगी वैसे उपाधि के नष्ट होने से एक ही शुद्ध चैतन्य शेष रहेगा॥ २४६॥

अथात आदेश इति श्रुतिः स्वयं निषेधति ब्रह्मणि कल्पितं दयम्,
श्रुतिप्रमाणानुगृहीतबोधात्तयोनिरासः करणीय एवम्॥ २४७॥

अथ, अतः, आदेशः, इति, श्रुतिः, स्वयं, निषेधति, ब्रह्मणि, कल्पितं, द्वयम्॥
श्रुतिप्रमाणानुगृहीतबोधात्, तयोः, निरासः, करणीयः, एवम्॥ २४७॥

परब्रह्म में जो द्वैतभावना हो रही है उस द्वैतभावना को अर्थात् 'आदेशे नेति नेति' इत्यादि श्रुति साक्षात् निषेध करती है इसलिये श्रुतियों को प्रमाण से बोध सम्पादन करके उत्तरीति से द्वैत का निवारण ही करना चाहिये॥ २४७॥

नेदं नेदं कल्पितत्वान्न सत्यं रज्जौ दृष्टव्यालयत्स्वप्नवच्च,
इत्थं दृश्यं साधु युक्त्या व्यपोह्य ज्ञेयः पश्चादेकभावस्तयोर्यः॥ २४८॥

न, इदं, न, इदं, कल्पितत्वात्, न, सत्यं, रज्जो, दृष्टव्यालवत्, स्वभवत्, च॥
इत्थं, दृश्यं, साधु, युक्त्या, व्यपोह्य, ज्ञेयः, पश्चात्, एकभावः, तयोः, यः॥ २४८॥

जैसे रस्सी में का देखा सर्प और स्वप्नावस्था के देखे अनेकों पदार्थ सत्य नहीं है वैसे ही अज्ञान कल्पित यह जगत् सत्य नहीं है ऐसी यथार्थ युक्तियों से दृश्य जगत का निषेध करने के पश्चात् जीवात्मा परमात्मा का जो एकत्वभाव है वही शुद्ध चैतन्य परब्रह्म है॥ २४८॥

ततस्तु तो लक्षणया सुलक्ष्यौ तयोरखण्डैकर सत्वसिद्धये,
नालं जहत्या न तथाऽजहत्या किन्तूभयात्मिकयैव भाव्यम्॥ २४९॥

ततः, तु, तौ, लक्षणया, सुलक्ष्यौ, तयोः, अखण्डैकरसत्वसिद्धये॥
न, अलं, जहत्या, न, तथा, अजहत्या, किन्तु, उभयार्थात्मिकया, एवं, भाव्यम्॥ २४९॥

जीवात्मा और परमात्मा का अखण्ड एकरसत्व सिद्धि के लिये महावाक्य मे त्याग लक्षणा करना इसी लक्षणा से परमात्मा लक्षित होता है इसी का नाम जहती लक्षणा भी है। यहां केवल जहत् लक्षणा अथवा अजहत लक्षणा नहीं होती क्योंकि जहत् लक्षणा वहां होती है जैसे कोई कहता है कि गङ्गा में गाँव है यह वाक्य सुनकर श्रोता ने विचार किया कि गंगापद का प्रवाह अर्थ है तो प्रवाह ने गाँव होना असम्भव है इसलिये गंगापद का जो मुख्य अर्थ है प्रवाह उसको त्यागकर तीर मे लक्षणा होती है। अजहत् लक्षणा भी वही होती है जैसे कोई कहता है कि श्वेत दौडता है यह वाक्य सुनकर श्वेत गुण का दौडना असम्भव है इस लिये श्वेत गुण संयुक्त वाक्य में लक्षणा होती है। तत्त्वमसि इस महावाक्य में तो चैतन्यरूप अर्थ तत्पदार्थ और त्वंपदार्थ दोनों में वर्तमान रहता है और सर्वज्ञत्व आत्मज्ञत्व रूप

विरुद्ध भाग का दोनो में त्याग होता है इसलिये जहती लक्षणा समझना चाहिए॥ २४९॥

स देवदत्तोऽयमितीह वैकता विरुद्धधर्माशमपास्य कथ्यते,
यथा तथा तत्त्वमसीति वाक्ये विरुद्धधर्मानुभयत्र हित्वा॥ २५०॥

सः, देवदत्तः, अयं, इति, इह, वा, एकता, विरुद्ध धर्माशं, अंपास्य, कथ्यते॥
यथा, तथा, तत्, त्वं, असि, इति, वाक्ये, विरुद्धधर्मान्, उभयत्र, हित्वा॥ २५०॥

जैसे वही यह देवदत्त है इस वाक्य में तत्कलीन और एतत्कालीन रूप विरुद्ध धर्म को त्याग कर एक ही देवदत्त का बोध होता है तैसे तत्त्वमसि इस वाक्य में उत्तरीति से परोक्षत्व अपरोक्षत्व रूप विरुद्ध धर्म का दोनों पदार्थों में त्याग करने से चैतन्यांश में एकता होती है॥ २५०॥

संलक्ष्य चिन्मात्रतया सदात्मनोरखण्डभावः परिचीयते बुधैः,
एवं महावाक्यशतेन कथ्यते ब्रह्मात्मनोरैक्यमखण्डभावः॥ २५१॥

संलक्ष्य, चिन्मात्रतया, सदात्मनोः, अखण्डभावः, परिचीयते, बुधैः॥
एव, महावाक्यशतेन, कैथ्यते, ब्रह्मात्मनोः, ऐक्यं, अखण्डभावः॥ २५१॥

जीवात्मा और परमात्मा इन दोनों में से विरुद्ध अंश को छोडकर दोनों चैतन्य अंश को विद्वान् लोग एकत्व निश्चय करते हैं इसी तरह

से सैंकडों महावाक्य जीवात्मा परमात्मा के एकत्वभाव को ही स्पष्ट कहते हैं॥ २५१॥

ब्रह्म विचार का वर्णन

अस्थूलमित्येतदसन्निरस्य सिद्धं स्वतो व्योमवदप्रतक्यर्म,
अतो मृषामात्रमिदं प्रतीतं जहीहि यत्स्वात्मतया गृहीतम्॥
ब्रह्माहमित्येव विशुद्धबुध्या विद्धि स्वमात्मानमखण्डबोधम्॥ २५२॥

अस्थूलं, इति, एतत्, असत्, निरस्य, सिद्धं, स्वतः, व्योमवत्, अप्रयार्क्म, अतः, मृषामात्रं, इंदं, प्रतीतं, जहीहि, यत्, स्वात्मतया, गृहीतम्॥ ,
ब्रह्म, अहं, इति, एव, विशुद्धबुध्या, विद्धि, स्वं, आत्मानं, अखण्ड बोधम्॥ २५२॥

इस श्रुति से अनित्यस्थूल पदार्थो के निवारण करने से आकाश सदृश व्यापक तर्क रहित चैतन्य सिद्ध होता है इसलिये आत्मरूप से गृहीत जो मिथ्या प्रतीति मात्र देहादि वस्तु में आत्मबुद्धि हो रही है उस बुद्धि को त्याग करो और मैं ब्रह्म हूँ ऐसे विशुद्ध बुद्धि से अपने को अखण्ड बोधरूप चैतन्य आत्मा समझना चाहिए॥ २५२॥

मूत्कार्य सकलं घटादि सततं मृन्मात्रमेवाहित
तदत्सज्जनितं सदात्मकमिदं सन्मात्रमेवाखिलम्,
यस्मान्नास्ति सतः परं किमपि तत्सत्यं स आत्मा स्वयं

तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्मादयं यत्परम्॥ २५३॥

मृत्कार्यं, सकलं, घटोदि, सततं, मृन्मात्रं, एवं, आहितं,
तद्वत्, सज्जनितं, सदात्मकं, इदं, सन्मात्रं, एव, अखिलम्॥
यस्मात्, न, अस्ति, सतः, परं, किमपि, तत्, सत्यं, सः, आत्मा, स्वयं, तस्मात्,
तत्, त्वं, असि, प्रशान्तं, अमलं, ब्रह्म, अद्वयं, यत्, परम्॥ २५३॥

जैसे सम्पूर्ण घटादि मिटटी से ही बना हुआ है और घट के नाश होने से सर्वथा मिटटी ही शेष रहती है इसी तरह सत से उत्पन्न यह समस्त जगत् सदात्मक है। जिस सत से अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है वह सत्स्वरूप साक्षात् आत्मा है इसलिये वही प्रशांत निर्मल अद्वितीय परब्रह्म तुम हो॥ २५३॥

निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञात्रादि सर्वं यथा,
मिथ्या तददिहापि जाग्रति जगत्स्वाज्ञानकार्यत्वतः,
यस्मादेवमिदं शरीरकरणप्राणाहमाद्यप्यसत्
तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्मादयं यत्परम्॥ २५४॥

निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञात्रादि, सर्वं, यथा,
मिथ्या, तद्वत्, इह, अपि, जाग्रति, जगत्, स्वाज्ञानकार्यत्वतः॥
यस्मात्, एवं, इदं, शरीरकरणप्राणाहादि, अपि, असत्,
तस्मात्, तत्, त्वं, अँसि, प्रशान्तं, अमलं, ब्रह्म, अद्वयं, यत्, परम्॥ २५४॥

जैसे स्वप्न में निद्रा कल्पित देश काल सम्पूर्ण विषय ज्ञान ज्ञाता आदि सब मिथ्या है वैसे ही जाग्रत् अवस्थामें अपनी अज्ञानता से कल्पित यह जगत मिथ्या है इसी तरह से यह शरीर और इन्द्रियगण प्राण और अहंकार आदि सब मिथ्या है जब यह सब मिथ्या हैं तो वही शान्तस्वरूप निर्मल अद्वितीय परब्रह्म तुम हो॥ २५४॥

जातिनीतिकुलगोत्रदूरगं नामरूपगुणदोषवर्जितम्,
देशकालविषयातिवर्ति यत् ब्रम्ह तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २५५॥

जोतिनीतिकुलगोत्रदूरगं, नामरूपगुणदोषवर्जितम्॥
देश कालविषयातिवति, यत्, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २५५॥

जो जाति, नीति, कुल और गोत्र इन सबसे रहित तथा नाम, रूप, गुण, दोष इन सबसे पृथक देश-काल विषय आदि से अलग जो परब्रह्म है वही ब्रह्म तुम हो, ऐसी अपने अंत:करण में भावना करो॥ २५५॥

यत्परं सकलरागगोचरं गोचरं विमलबोधचक्षुषः,
शुद्धचिद्घनमनादि वस्तु यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २५६॥

यत्, परं, सकलरागगगोचरं, गोचरं, विमलबोधचक्षुषः॥
शुचिद्धनं, अनादि, वस्तु, यत्, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २५६॥

सकल रागगोचर अर्थात् प्रेमास्पद तथा विमल जो बोधरूप नेत्र उसके गोचर शुद्ध चैतन्य घन अनादि वस्तु जो परब्रह्म है वही ब्रह्म तुम हो ऐसी अपने अंत:करण में भावना करो॥ २५६॥

षड्भिरूर्मिभिरयोगि योगिहृन्द्भावितं न करणैविभावितम्,
बुध्यवेद्यमनवद्यमस्ति यद्ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २५७॥

षड्भि:, ऊर्मिभिः, अयोगि, योगिहृन्द्भावितं, न, करणैः, विभावितम्॥
बुद्धयर्वेद्यं, अनवद्यं, अस्ति, यद, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥
२५७॥

राग द्वेष आदि छ: उर्मियो से रहित और योगियों के हृदय से विचारित और नेत्र आदि इन्द्रियों के अगोचर और बुद्धि से अगम्य और स्तुत ऐश्वर्यशाली परब्रह्म तुम्ही हो – ऐसी अपने चित्त में भावना करो॥ २५७॥

भ्रान्तिकल्पितजगत्कलाश्रयं स्वाश्रयं च सदसदिलक्षणम्,
निष्कलं निरुपमानवद्धि यद् ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २५८॥

भ्रान्तिकल्पितजंगत्कलाश्रयं, स्वाश्रयं, च, सदसद्विलक्ष णम्॥
निष्कलं, निरुपानवत्,हि, यदँ, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २५८॥

भ्रान्ति से कल्पित जो जगत् उसका आधार और आत्मभिन्न आधार से रहित स्थूल, सूक्ष्म, जग से विलक्षण निष्कलंक उपमान से रहित जो परब्रह्म हो वह तुम्ही हो -ऐसा अपने चित्त में चिंतन करो॥ २५८॥

जन्मवृद्धिपरिणत्यपक्षयव्याधिनाशनविहीनमव्ययम्,
विश्वसृष्टयवविघातकारणं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २५९॥

जन्म वृद्धि परिणत्य पक्षय व्याधि नाशन विहीनं, अव्ययम्॥
विश्वसृष्टंबवविघातकारणं, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २५९॥

जो जन्म, वृद्धि, परिणति अर्थात स्थूल, क्षीण, व्याधि, नाश इन समस्त विकारों से रहित, सदा एक रस, संसार की सृष्टि और विनाश इनका कारण जो परब्रह्म है – ऐसी अपने चित्त में भावना करो॥ २५९॥

अस्तभेदमनपास्तलक्षणं निस्तरङ्गजलराशिनिश्चलम्,
नित्यमुक्तमविभक्तमूर्ति यद्ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २६०॥

अस्तभेदं, अनपास्तलक्षणं, निस्तरङ्गजलराशिनिश्चलम्॥
नित्यमुक्तं, अविभक्तपंति, यद्, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २६०॥

अस्त आदि दोष से भिन्न, तरंगरहित, निश्चल जलराशि के समान गंभीर, नित्यमुक्त और विभाग से रहित सदा एक मूर्ति जो परब्रह्म है, वह तुम्ही हो – ऐसी अपने चित्त में भावना करो॥ २६॥

एकमेव सदनेककारणं कारणान्तरनिरास्य कारणम्,
कार्यकारणविलक्षणं स्वयं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २६१॥

एकं, एवं, सत्, अनेककारणं, कारणान्तरनिरास्यकारणम्॥
कार्यकारणविलक्षणं, स्वयं, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २६१॥

स्वयं एक ही होकर अनन्तानन्त जगत का कारण और दूसरे कारण का नाश करने में कारण और कार्य कारण से विलक्षण जो स्वयं ब्रह्म है वह तुम्ही हो॥ २६१॥

निर्विकल्पकमनल्पमक्षरं यत्क्षराक्षरविल क्षणं परम्,
नित्यमव्ययसुखं निरञ्जनं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २६२॥

निर्विकल्पकं, अनल्पं, अक्षरं, यत्, क्षराक्षरविलक्षणं, परम्॥
नित्यं, अव्ययसुखं, निरञ्जनं, ब्रह्म, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २६२॥

विकल्प से रहित सर्वव्यापक नाश रहित क्षर अक्षर से विलक्षण नित्य अव्यय सुखस्वरूप निर्मल जो परब्रह्म है वह तुम्ही हो॥ २६२॥

यद्विभाति सदनेकधा भ्रमानामरूपगुणवि क्रियात्मना,
हेमवत्स्वयमविक्रियं सदा ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २६३॥

यद्, विभाति, सत, अनेकधा, भ्रमात्, नामरूपगुण विक्रियात्मना॥

हेमवत्, स्वयं, अविक्रियं, सदी, ब्रह्म, तत् त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २६३॥

जैसे सवर्ण अपने विकार रहित तो है परन्तु भ्रम से कंगन कुण्डल आदि अनेकों प्रकार के रूप नाम को प्राप्त होता है वैसे ही जो परब्रह्म स्वयं विकार रहित एक है परन्तु भ्रम से अनेक तरह के नाम, रूप गुण क्रिया रूप से अनन्तानन्त प्रतीत होता है वह ब्रह्म तुम्हीं हो॥ २६३॥

यच्चकास्त्यनपरं परात्परं प्रत्यगेकरसमात्मलक्षणम्,
सत्यचित्सुखमनन्तमव्ययं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि॥ २६४॥

यत, चकास्ति, अनपरं, परात्, परं, प्रत्यगेकरसं, आत्मलक्षणम्॥
सत्यचित्सुखं, अनन्तं, अव्ययं, ब्रह्मे, तत्, त्वं, असि, भावय, आत्मनि॥ २६४॥

प्रकृति आदि से परे, प्रत्यक्ष एकरस, आत्म स्वरूप, सत्यचित रूप, सुखात्मक, अनन्त अव्यय जो परब्रह्म है वह तुम्ही हो॥ २६४॥

उक्तमर्थमिममात्मनि स्वयं भावयेत्प्रथित युक्तिभिर्धिया,
संशयादिरहितं कराम्बुवत्तेन तत्त्वनिगमो भविष्यति॥ २६५॥

उक्तं, अर्थ, इमं, आत्मनि, स्वयं, भावयेत्, प्रति युक्तिभिः, धिया॥
संशयादिरहितं, कराम्बुवत्, तेन, तत्त्वनिगमः, भविष्यति॥ २६५॥

पूर्वोक्त अर्थ को अच्छी युक्तिपूर्वक बुद्धि से अपने चित्त में विचारने से हस्तगत जल आदि के सदृश संशय रहित होने से आत्मवस्तु का साक्षात् बोध होता है॥ २६५॥

सम्बोधमात्रं परिशुद्धतत्त्वं विज्ञाय संघे नृपवच्च सैन्ये,
तदाश्रयः स्वात्मनि सर्वदा स्थितो विलापय ब्रह्मणि विश्वजातम्॥ २६६॥

सम्बोधमात्रं, परिशुद्धतत्त्वं, विज्ञार्य, संघे, नृपवेत्, च, सैन्ये॥
तदाश्रयः, स्वात्मनि, सर्वदा, स्थितः, विलापय, ब्रह्मणि, विश्वजीतम्॥ २६६॥

जैसे सैन्य के मध्य में सर्वोपरि विराजमान एक आत्मा होता है वैसे ही संसार समूह में परिशुद्ध सम्यक् बोधमात्र आत्मतत्व को जानकर और उसी आत्मतत्त्व का आश्रय लेकर आत्मा मे सदा एकस्थित होकर सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्म में ही लीन करो॥ २६६॥

बुद्धौ गुहायां सदसदिलक्षणं ब्रह्मास्ति सत्यं परमदितीयम्,
तदात्मना योऽत्र वसद्गुहायां पुनर्न तस्याङ्ग गुहाप्रवेशः॥ २६७॥

बुद्धौ, गुहायां, सदसद्विलक्षणं, ब्रह्म, अस्ति, सत्यं, परं, अद्वितीयम्॥
तदात्मना, यः, अत्र, वसेत्, गुहायां, पुनः, न, तस्य, अङ्ग, गुहाप्रवेशः॥ २६७॥

बुद्धि रुपी गुफा में सत् असत् से विलक्षण सत्य, अद्वितीय, जो परब्रह्म है, उन्ही परब्रह्म का रूप होकर जो मनुष्य बुद्धिरुपी गुफा में वास

करेगा उस मनुष्यका फिर उस गुफा में प्रवेश अर्थात पुनर्जन्म नहीं होगा॥ २६७॥

देहाभि मान का त्याग करने की आवश्यकता

ज्ञाते वस्तुन्यपि बलवती वासनानादिरेषा कर्ता भोक्ताप्यहमिति दृढा यास्य संसारहेतुः,
प्रत्यग्दृष्टयात्मनि निवसता सापनेया प्रयत्नान्मुक्ति प्राहुस्तदिह मुनयो वासनातानवं यत्॥ २६८॥

ज्ञाते, वस्तुनि, अपि, बलवती, वासना, अनादिः, एषा, कर्ता, भोक्ता, अपि, अहं, इति, दृढा, या, अस्य, संसारहेतुः॥
प्रत्यग्दृष्टया, आत्मनि, निवसता, सा, अपनेया, प्रयत्नात्, मुक्तिं, प्राहु, तद, इह, मुनयः, वासनातानवं, यत्॥ २६८॥

आत्मवस्तु का ज्ञान हो जाने पर भी "मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ" ऐसी प्रबल अनादि, दृढ वासना का, जब तक त्याग नहीं होता तब तक पुन: संसार में जन्म लेना पडता है क्योंकि पुन: संसार प्राप्त होने मे वासना ही प्रबल कारण है इसलिये प्रत्यक दृष्टि से आत्मा में निवास करने वाले मनुष्यों को उचित है कि प्रयत्नपूर्वक वासना को त्याग दे क्योंकि वासना का क्षीण होना यही मोक्ष है ऐसा आचार्यों का मत है॥ ६८॥

अहं ममेति यो भावो देहाक्षादावनात्मनि,
अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्मनिष्ठया॥ २६९॥

अहं, मम, इति, यः, भावः, देहाक्षादौ, अनात्मनि॥
अध्यासः, अयं, निरस्तव्यः, विदुषा, स्वात्मनिष्ठया॥ २६९॥

देह और नेत्र आदि इन्द्रियों के जितने अनात्म वस्तु हैं उनमें जो 'अहं' 'मम' ऐसी भावना है, उस भावना को आत्मनिष्ठा से विद्वान को अवश्य दूर करना चाहिये॥ २६९॥

ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितवृत्तिसाक्षिणम्,
सोहमित्येव सद्वृत्त्याऽनात्मन्यात्ममति जहि॥ २७०॥

ज्ञात्वा, स्वं, प्रत्यगात्मानं, बृद्धितदवृत्तिसाक्षिणम्॥
सः, अहं, इति, एव, सवृत्त्या, अनात्मनि, आत्ममति, जहि॥ २७०॥

बुद्धि और बुद्धि की के वृत्ति का साक्षी प्रत्यक्ष आत्मा अपने को जानकर वह ब्रह्म मैं हूं ऐसी यथार्थ वृत्ति से देह आदि अनात्म वस्तुओ में जो आत्मबुद्धि व्याप्त है उसका त्याग करना चाहिए॥ २७०॥

लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम्,
शास्त्रानुवतेनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु॥ २७१॥

लोकानुवर्तनं, त्यक्त्वा, त्यक्त्वा, देहानुवर्तनम्॥
शास्त्रानुवर्तनम्, त्यक्त्वा, स्वाध्यासापनयं, कुरु॥ २७२॥

लोकवासना, देहवासना और शास्त्रवासना को छोडकर आत्मा में जो संसार का अध्वास है उसका त्याग करना चाहिए॥ २७१॥

लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च,
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते॥ २७२॥

लोकवासनया, जन्तोः, शास्त्रावासनया, अपि, च॥
देहवासनया, ज्ञानं, यथावत्, न, एवं, जायते॥ २७२॥

लोकवासना, और शास्त्रवासना, देहवासना इन तीनों वासना के रहने से मनुष्यों को यथावत ज्ञान नहीं होता है॥ २७२॥

संसारकारागृहमोक्षमिच्छोरयोमयं पादनिबन्धश्रंकङ्खलम्,
वदन्ति तज्ज्ञाः पटु वासनात्रयं योऽस्मादिमुक्तः समुपैति मुक्तिम्॥ २७३॥

संसारकारागृहमोक्षं, इच्छोः, अयोमयं, पादनिबन्धश्रंकङ्खलम्,
वदन्ति, तज्ज्ञाः, पटु, वासनात्रयं, यः, अस्मात्, विमुक्तः, समुपैति, मुक्तिम्॥ २७३॥

संसार रुपी कारागार से मोक्ष होने की इच्छा करते हुए मनुष्यों का पैर बांधने के लिए यह तीनों वासनाएँ लोहे की प्रबल श्रंखलाएं है। इन तीनों वासना रुपी शृंखला से जो मनुष्य मुक्त हो जाता है वही मोक्ष का भागी होता है॥ २७३॥

जलादिसंसर्गवशात्प्रभूतदुर्गन्धधूतागरुदि व्यवासना,
संघर्षणेनैव विभाति सम्यम् विधूयमाने सति बाह्यगन्धे॥ २७४॥

जलादिसंसर्गवशात्, प्रभूतदुर्गन्धधूता, अगरुदिव्यवासना॥
संघर्षणेन, एवं, विभाति, सम्यक्, विधूयमाने, सति, बाह्यगन्धे॥ २७४॥

जैसे चन्दन आदि दिव्य गन्ध युक्त किसी काष्ठ को जल आदि अन्य वस्तुओ का अधिक संसर्ग होने से उस अन्य वस्तु का दुर्गध चन्दन काष्ठ मे मिल जाता है परन्तु उस बाह्य दुर्गध को अच्छी तरह धोने से उस चन्दन को घिसने पर पुन: सुन्दर गन्ध निकलता है॥ २७४॥

अन्तःश्रितानन्तदुरन्तवासनाधूलीविलिप्ता परमात्मवासना,
प्रज्ञातिसंघर्षणतो विशुद्धा प्रतीयते चन्दनगन्धवत्स्फुटम्॥ २७५॥

अन्तःश्रितानन्तदुरन्तवासनाधूलीविलिप्ता, परमात्मवासना॥
प्रजातिसंघर्षणतः, विशुद्धा, प्रतीयते, चन्दनेगन्धवत्, स्फुटम्॥ २७५॥

उसी प्रकार अन्तः करण में प्राप्त जो अनन्त दुर्वासना रूप धूल जमी है इस दुर्वासना रूप धूल से आवृत जो परमात्मा की वासना है वह जब बुद्धि के अत्यन्त संघर्ष होने से विशेष शुद्ध होती है तो चन्दन के गन्ध तुल्य स्पष्ट प्रतीत होतीहै॥ २७५॥

अनात्मवासनाजालैस्तिरोभूतात्मवासना,

नित्यात्मनिष्ठया तेषां नाशे भाति स्वयं स्फुटम्॥ २७६॥

अनात्मवासनाजालैः, तिरोभूता, आत्मवासना॥
नित्यात्म निष्ठया, तेषां, नाशे, भाति, स्वयं, स्फुटम्॥ २७६॥

देह आदि अनात्मवस्तु के वासनासमूह से आत्मवासना जब अन्तरहित हो जाती है तो नित्य आत्मा की निष्ठा से देह आदि तीनों वासना के नाश होने से फिर आत्मवासना स्पष्ट प्रतीत होती है॥ २७६॥

यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनस्तथा तथा मुञ्चति बाह्यवासनाम्,
निःशेषमोक्षे सति वासनानामात्मानुभूतिः प्रतिबन्धशून्या॥ २७७॥

यथा, यथा, प्रत्यगवस्थितं, मनः, तथा, तथा, मुंञ्चति, बाह्यावासनाम्॥
निःशेषमोक्षे, सति, वासनानां, आत्मानुभूतिः, प्रतिबन्धशून्या॥ २७७॥

प्रत्यक्ष परब्रह्म में मन जैसे जैसे स्थिर होता है वैसे वैसे बाह्य वासनाओं का त्याग करता है जब मन से समस्त वासनाएँ दूर हो जाती है तो प्रतिबन्धक से रहित निरन्तर आत्मा का अनुभव होता है॥ २७७॥

स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगिनः,
वासनानां क्षयश्चातः स्वाध्यासापनयं कुरु॥ २७८॥

स्वात्मनि, एव, सदा, स्थित्वा,मनः, नश्यति, योगिनः,

वासनानां, क्षयः, च, अतः, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २७८॥

चित्तवृत्ति को रोक कर केवल आत्म वस्तु में स्थिर हो नेसे मन का नाश होता है, मन के नाश होने पर बाह्मवासना क्षीण होती है, जब बाह्य वासना दूर होती है तो आत्मा में जो शुद्ध सत्व का उदय होता है, अत: उसी शुद्ध सत्व का आश्रय ले कर अभ्यास करना चाहिए॥ २७८॥

जगत रुपी भ्रम के त्याग की आवश्यकता

तमो दाभ्यां रजः सत्त्वात्सत्त्वं शुद्धेन नश्यति,
तस्मात्सत्त्वमवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं कुरु॥ २७९॥

तमः, द्वाभ्यां, रंजः, सत्त्वात्, सत्त्वं, शुद्धेन, नश्यति॥
तस्मात्, सत्त्वं, अवष्टंभ्य, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २७९॥

रजोगुण और सत्त्वगुण इन दोनों से तमोगुण का नाश होता है और सत्त्वगुण से रजोगुण का नाश होता है और शुद्ध चैतन्य से सत्त्व का नाश होता है इसलिये सत्त्वगुण को अवलम्बन करके आत्मा में जो जगत का भ्रम हो रहा है उसका त्याग करना चाहिए॥ २७९॥

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः,
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु॥ २८०॥

प्रारब्धं, पुष्यति, वपुः, इति, निश्चित्या निश्चयः॥
धैर्य, आलम्ब्य, यत्नेन, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २८१॥

प्रारब्ध ही शरीर का पोषण करता है ऐसा निश्चय कर चंचलता को छोडकर यत्न से धैर्य का सहारा ले कर आत्मा में जो जगत का मिथ्या ज्ञान है उसको दूर करना चाहिए॥ २८०॥

नाहं जीवः परं ब्रह्मेत्यतव्यावृत्तिपूर्वकम्,
वासनावगतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु॥ २८१॥

न, अहं, जीवः, परं, ब्रह्म, इति, अतद्व्यावृत्तिपूर्वकम्,
वासनावेगतः, प्राप्तस्वाध्यासापनयं, कुरु॥ २८१॥

मैं जीव नहीं हूँ, मैं साक्षात् परब्रह्म हूँ ऐसा पर ब्रह्म में जीवभाव का निषेध कर वासनावेग से प्राप्त जो आत्मा में जीव का मिथ्या ज्ञान है उसको दूर करो॥ २८१॥

श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सात्म्यिमात्मनः,
कचिदाभासतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु॥ २८२॥

श्रुत्या, युक्त्या, स्वानुभूत्या, ज्ञात्वा, सौर्वात्म्यं, आत्मनः,
कचित्, आभासतः, प्राप्तस्वाध्यासापनयं, कुरु॥ २८२॥

श्रुतियों, युक्ति तथा अपने अनुभव से अपने को सर्वस्वरूप समझ कर मिथ्या ज्ञान से प्राप्त जो आत्मा मे जगत का आभास होता है उसक त्याग करना चाहिए॥ २८२॥

अनादानविसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुनेः,
तदेकनिष्ठया नित्यं स्वाध्यासापनयं कुरु॥२८३॥

अनादानविसर्गाभ्यां, ईषत्, न, अस्ति, क्रिया, मुनेः॥
तदेकनिष्ठया, नित्यं, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २८३॥

किसी भी वस्तु को ग्रहण करने और त्याग करने में मुनिजनों का कोई कर्तव्य नहीं है, इसलिए निरंतर आत्मनिष्ठा द्वारा आत्मा में मिथ्या ज्ञान करना चाहिए॥ २८३॥

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थब्रह्मात्मैकत्वबोधतः,
ब्रह्मण्यात्मत्वदाढर्याय स्वाध्यासापनयं कुरु॥२८४॥

तत्त्वंमस्यादिवाक्योत्थब्रह्मात्मैकत्वबोधतः,
ब्रह्मणि, आत्मत्वदाढर्याय, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २८४॥

तत्त्वमसि आदि महावाक्य से उत्पन्न जो ब्रह्म और आत्मा का एकत्व बोध है उस बोध से ब्रह्म मे आत्मबुद्धि दृढ करने के लिये आत्मा जगत् के आभास का त्याग करना चाहिए॥ २८४॥

अहंभावस्य देहेऽस्मिन्निःशेषविलयावधि,
सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्यासापनयं कुरु॥ २८५॥

अहंभावस्यं, देहे, अस्मिन्, निःशेषलियावधि॥
सावधानेन, युक्तात्मा, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २८५॥

इस देह में जो अहंबुद्धि होती है उस अहंभाव का जब तक पूर्णत: लय नहीं हो जाए तब तक सावधान होकर युक्तचित्त से अपने मिथ्या ज्ञान को दूर करना चाहिए॥ २८५॥

प्रतितिर्जीवजगतोः स्वप्नवद्भाति यावता,
तावन्नीरन्तरं विद्वन् स्वाध्यासापनयं कुरु॥ २८६॥

प्रतीतिः, जीवजगतोः, स्वप्नवत्, भांति, यावता॥
तावत्, निरन्तरं, विद्धन्, स्वाध्यासोपनयं, कुरु॥ २८६॥

हे विद्वन् जब तक स्वप्न के समान जीव और जगत की प्रतीति हो रही है, तब तक निरंतर आत्म विषयक मिथ्या ज्ञान को दूर रखना चाहिए॥ २८६॥

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः,
क्वचिन्नावसरं दत्वा चिन्तयात्मानमात्मनि॥ २८७॥

निद्रायाः, लोकवार्तायाः, शब्दादेः, अपि, विस्मृतेः॥

क्वचित्, न, अवसरं, दत्वा, चिन्तय, आत्मानं, आत्मनि॥ २८८॥

निद्रा, लौकिक बातचीत तथा शब्द स्पर्श आदि इन समस्त विषयों का विस्मरण होने पर कहीं भी, इन्हें अवसर न देकर अर्थात् समस्त विषयों को भूल कर अपने अंत:करण में निरंतर आत्मा का चिंतन करना चाहिए॥ २८७॥

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः,
त्यक्त्वा चाण्डालबद्दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव॥ २८८॥

मातापित्रोः, मलोद्भूतं, मलमांसमयं, वपुः॥
त्यक्त्वा, चाण्डालवत्, दूरं, ब्रह्मीभूय, कृती, भव॥ २८८॥

माता पिता के मल से उत्पन्न और मलमांस से भरे इस शरीर को चाण्डाल के समान दूर से ही त्यागकर ब्रह्ममय होकर कृतकृत्य हो जाओ॥ २८८॥

घटाकाशं महाकाशे इवात्मानं परात्मनि,
विलाप्याखण्डभावेन तूष्णीं भव सदामुने॥२८९॥

घटाकाशं, महाकाशे, इव, आत्मानं, परात्मनि॥
विलाप्य, अखण्डभावेन, तूंष्णी, भव, सदा, मुने॥ २८९॥

हे मुने ! जैसे घट के नाश होने पर घट का आकाश, महाआकाश में लीन हो जाता है वैसे ही जीवात्मा को परमात्मा मे लीन करके, अखण्डस्वरूप होकर, सदा मौन धारण करना चाहिए॥ २८९॥

स्वप्रकाशमधिष्ठानं स्वयंभूय सदात्मना,
ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं त्यज्यतां मलभाण्डवत्॥ २९०॥

स्वप्रकाशं, अधिष्ठानं, स्वयंभूय, सदात्मना,
ब्रह्माण्डं, अपि, पिण्डाण्डं, त्यज्यतां, मलभाण्डवत्॥ २९०॥

स्वयं प्रकाश स्वरुप जो जगत का अधिष्ठान पर ब्रह्म है तद्रूप स्वयं होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको मल-- से भरा माण्ड की नाई त्याग करो॥ २९०॥

चिदात्मनि सदानन्दे देहारूढामहंधियम्,
निवेश्य लिङ्गमुत्सृज्य केवलो भव सर्वदा॥ २९१॥

चिदात्मनि, सदानन्दे, देहारूढां, अहंधियम्॥
निवेश्य, लिङ्गं, उत्सृज्य, केवलः, भवं, सर्वदा॥ २९१॥

देह में जो अहं बुद्धि व्याप्त हो रही है उसे सदा आनंद स्वरुप चिदात्मा में स्थित करके, शरीर के अभिमान को छोड़ कर केवल चैतन्यरूप से सदा स्थिर रहो॥ २९१॥

यत्रैष जगदाभासो दर्पणान्तः पुरं यथा,
तब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो भविष्यसि॥ २९२॥

यत्र, एषः, जगदाभासः, दर्पणान्तः, पुरं, यथा॥
तद्, ब्रह्म, अहं, इति, ज्ञात्वा, कृतकत्यः, भविष्यसि॥ २९२॥

जैसे दर्पण के भीतर पुरग्राम का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वैसे ही जिस ब्रह्म में जगत का आभास हो रहा है वह ब्रह्म मैं हूँ ऐसा अपने को जान लेने पर तुम कृतकृत्य हो जाओगे होंगे॥ २९२॥

यत्सत्यभूतं निजरूपमाद्यं चिददयानन्दमरूपम क्रियम्,
तदेत्य मिथ्यावपुरुत्सृजेत शैलूषवद्वेषमुपात्तमात्मनः॥ २९३॥

यत्, सत्यंभूतं, निजरूपं, आद्यं, चिदद्वयानंद, अरूपं, अक्रियम्॥
तद, एत्य, मिथ्यावपुः, उत्सृजेत, शैलपवत्, वषं, उपात्तं, आत्मनः॥ २९३॥

जो चैतन्य, अद्वितीय, आनदघन, रूप क्रिया से रहित, सत्य स्वरुप आद्य आत्मरूप है उस रूप को प्राप्त होकर कृत्रिम नट के रूप के समान मिथ्या भूत इस शरीर को त्याग दो॥ २९३॥

सर्वात्मना दृश्यामिदं मृषैव नैवाहमर्थः क्षणिकत्वदर्शनात्,
जानाम्यहं सर्वमिति प्रतीतिः कुतोऽहमादेःक्षणिकस्य सिध्येत्॥ २९४॥

सर्वात्मना, दृश्यं, इंदं, मेषा, एव, ने, एव, अहं, अर्थः, क्षणिकत्वदर्शनात,

जानामि, अहं, सर्व,इति, प्रतीतिः, कुतः, अहमादेः, क्षणिकस्य, सिध्येत्॥ २९४॥

यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् मिथ्या है और अहं पद का अर्थ देह आदि स्थूल जगत् नहीं है क्योकि यह सब क्षणिक दिखाई देता है। यदि यह कहा जाए कि क्षणिक दृश्यमान जगत् ही अहं पदका अर्थ है तो मैं सब जानता हूँ ऐसी प्रतीति की सिद्धि क्षणिक अहमादि को कैसे हो सकती है॥ २९४॥

अहंपदार्थस्त्वहमादिसाक्षी नित्यं सुषुप्तावपि भावदर्शनात्,
ब्रूते ह्यजो नित्य इति श्रुतिः स्वयं तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्षणः॥ २९५॥

अहंपदार्थः, अहमादिसाक्षी, नित्यं, सुषप्तौ, अपि, भावदर्शनात्॥
ब्रूते, हि, अजः, नित्यः, इति, श्रुतिः, स्वयं, तत्, प्रत्यगात्मा, सदसद्विलक्षणः॥ २९५॥

अहंकार आदि का साक्षी व नित्य जो सुषुप्ति काल में भी वर्तमान रहता है वही सत् असत् से विलक्षण सर्वव्यापी आत्मा अहं पद का अर्थ है क्योंकि 'अजो नित्य' 'शाश्वत' इत्यादि साक्षात् श्रुति भी यही स्पष्ट करती हैं॥ २९५॥

विकारिणां सर्वविकारवेत्ता नित्याविकारो भवितुं समर्हति,
मनोरथस्वमसुषुप्तिषु स्फुटं पुनः पुनर्दृष्टमसत्त्वमेतयोः॥ २९६॥

विकारिणां, सर्वविकारवेत्ता, नित्याविकारः, भैवितुं, समर्हति॥
मनोरथस्वमसुषुप्तिषु, स्फुटं, पुनः, पुनः, दृष्टं, असत्वं, एतयोः॥ २९६॥

अहंकार आदि जितने विकारी हैं उनके विकार के ज्ञाता ईश्वर सदा विकार से रहित हैं। मनोरथ और स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों शरीरियों अभाव बरम्बार देखा गया है॥ २९६॥

शरीर और अहंकार का त्याग करने की आवश्यकता

अतोभिमानं त्यज मांसपिण्डे पिण्डाभिमानिन्यपिबुद्धिकल्पिते,
कालत्रयाबाध्यमखण्डबोधं ज्ञात्वा स्वमात्मानमुपैहि शान्तिम्॥ २९७॥

अतः, अभिमानं, त्यज, मांसपिण्डे, पिण्डाभिमानिनि, अपि, बुद्धिकल्पिते॥
कालत्रयाबाध्यं, अखण्डबोधं, ज्ञात्वा, स्वं, आत्मानं, उपैहि, शान्तिम्॥ २९७॥

इसलिये बुद्धि कल्पित पिण्डाभिमानी मांसपिण्ड शरीर के अभिमान का त्याग करके और भूत भविष्य वर्तमान इन तीनों काल में सदा वर्तमान भेदरहित चैतन्य आत्मा अपने को जानकर शान्ति को प्राप्त हो जाओ॥ २९७॥

त्यजाभिमानं कुलगोत्रनामरूपाश्रमेष्वादशवा श्रितेषु,
लिङ्गस्य धर्मानपि कर्तृतादीस्त्य वा भवाखण्डसुखस्वरूपः॥ २९८॥

त्यज, अभिमानं, कुलगोत्रनामरूपाश्रमेषु, आदर्श वाश्रितेषु॥
लिङ्गस्य, धर्मान्, अपि, कर्तृतादीन्, त्यक्त्वा, भव, अखण्डसुखस्वरूपः॥ २९८॥

इस लिबलिबे शरीर का आश्रित जो कुलनाम गोत्र रूप आश्रम है इन सबके अभिमान को त्याग कर और लिंग शरीर के कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि धर्म को त्याग कर अखण्ड सुख स्वरूपता को प्राप्त हो जाओ॥ २९८॥

सन्त्यन्येप्रतिबन्धाः पुंसः संसारहेतवो दृष्टाः,
तेषामेवं मूलं प्रथमविकारो भवत्यहङ्कारः॥ २९९॥

सन्ति, अन्ये, प्रतिबन्धाः, पुंसः, संसारहेतवः, दृष्टा,
तेषां, एवं, मूलं, प्रथमविकारः, भवति, अहंकारः॥ २९९॥

आत्मा को संसार प्राप्त होने के अन्य बहुत से विकार रूप कारण हैं परन्तु उन सबका मूल प्रथम विकार अहंकार है क्योंकि अहंकार से ही अन्य समस्त अनात्म भावों का प्रादुर्भाव होता है॥ २९९॥

यावत्स्यात्स्वस्य सम्बन्धोऽहंकारेण दुरात्मना,
तावन्न लेशमात्रापि मुक्तिवार्ता विलक्षणा॥ ३००॥

यावत्, स्यात्, स्वस्य, सम्बन्धः, अहंकारेण, दुरात्मना॥

तावत्, न, लेशमात्रा, अपि, मुक्तिवार्ता, विलक्षणा॥ ३००॥

दुरात्मा अहंकार के साथ जब तक आत्मा का सम्बन्ध रहता है तब तक मुक्ति जैसी बात का लेशमात्र भी विलक्षण है॥ ३००॥

अहंकारग्रहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते
चन्द्रवद्विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयंप्रभः॥३०१॥

अहंकारग्रहात्, मुक्तः, स्वरूपं, उपपद्यते॥
चन्द्रवत्, विमलः, पूर्णः, सदानन्दः, स्वयंप्रभः॥ ३०१॥

जैसे राहुग्रह से मुक्त होने पर चंद्रमा प्रकाशमान और परिपूर्ण रूप से अपने स्वरुप को प्राप्त होता है वैसे ही आत्मा अहंकार रूप ग्रह से मुक्त होने पर निर्मल परिपूर्ण सदा आनन्द स्वरूप स्वयंप्रकाशक अपने स्वरूप को प्राप्त होता है॥ ३०१॥

यो वा पुरे सोऽहमिति प्रतीतो बुद्ध्या प्रकल्प्तस्तम सातिमूढया,
तस्यैव निःशेषतया विनाशे ब्रह्मात्मभावः प्रतिबन्धशून्यः॥ ३०२॥

यः, वा, पुरे, सः, अहं, 'इति, प्रतीतः, बुद्धया, प्रकल्प्तः, तमसा, अतिमूढया॥
तस्य, एव, निःशेषतया, विनाशे, ब्रह्मात्मभावः, प्रतिबन्धशून्यः॥ ३०२॥

तमोगुण से अतिमोह को प्राप्त हुई बुद्धि से इस शरीर में 'अहं' ऐसा जो प्रतीत हुआ है उस प्रतीत का विनाश होने से प्रतिबन्धक से शून्य ब्रह्म में आत्मभाव होता है॥ ३०२॥

ब्रह्मानन्दनिधिमहबिलवताऽहङ्कारघोराहिना,
संवेष्ट्यात्मनि रक्ष्यते गुणमयैश्चण्डौस्त्रभिमस्तकः,
विज्ञानाख्यमहासिना श्रुतिमता विच्छिद्य शीर्षत्रयं
निर्मूल्याहिमिमं निधिं सुखकरं धीरोऽनुभोक्तुं क्षमः॥ ३०३॥

ब्रह्मानन्दनिधिः, महाबलवता, अहंकारेघोराहिना,
संवेष्टय, आत्मनि, रक्ष्यते, गुणमयैः, चण्डैः, त्रिभिः, मस्तकैः॥
विज्ञानाख्यमहासिना, श्रुतिमता, विच्छिद्य, शीर्षत्रयं,
निर्मूल्य, अहिं, इमं, निधिं, सुखकरं, धीरः, अनु, भोक्तं, क्षमः॥ ३०३॥

ब्रह्मानन्दरूप एक उत्तम द्रव्य को महाबलवान् अहंकार रूप भयंकर सर्प ने सत्त्व, रज, तम रूपी कोष युक्त तीन मस्तकों से सावधानी पूर्वक लपेट कर रक्षा करता है जो धीर पुरुष श्रुतियुक्त ज्ञानरूपी महाखड्ग से अहंकार रूपी सर्प का त्रिगुणात्मक-तीनों मस्तकों को काट कर निर्मूल सर्प का नाश करेगा वही धीर पुरुष ब्रह्मानन्द महोदधि का परमसुख भोगने में समर्थ होगा॥ ३०३॥

यावदा यत्किञ्चिदिषदोषस्फूर्तिरस्ति चेद्देहे,
कथमारोग्याय भवेत्तद्वदहन्तापि योगिनो मुक्त्यै॥ ३०४॥

यावत्, वा, यत्किञ्चित्, विषदोषस्फूर्तिः, अस्ति, चेत, देहे॥
कथं, आरोग्याय, भवेत्, तद्वत्, अहन्ता, अपि, योगिनः, मुक्त्यै॥ ३०४॥

जब तक थोड़ा भी विष का दोष शरीर में विद्यमान रहता है तब तक वह शरीर आरोग्य नहीं होता वैसे ही जब तक योगी का अहंकार समाप्त नहीं होगा तब तक मोक्ष प्राप्त होना कठिन है॥ ३०४॥

अहमोऽत्यन्तनिवृत्त्या तत्कृतनानाविकल्पसंहृत्या,
प्रत्यक्तत्त्वविवेकादिदमहमस्मीति विन्दते तत्त्वम्॥ ३०५॥

अहमः, अत्यन्तनिवृत्या, तत्तनानाविकल्पसंहृत्या॥
प्रत्यक्तत्त्वविवेकात्, इदं, अहं, अस्मि, ईति, विन्दते, तत्त्वम्॥ ३०५॥

अहंकार की अत्यन्त निवृत्ति होने से और अहंकार द्वारा उत्पन्न अनेकों तरह के विकल्प का नाश होने पर तथा आत्मतत्त्व के विवेक होने से 'यह मैं हूँ' ऐसा तत्त्व लाभ होता है॥ ३०५॥

अहङ्कारे कर्तर्यहमिति मतिं मुञ्च सहसा विकारात्मन्यात्मप्रतिफलजुषि स्वस्थितिमुषि,
यध्यासात्प्राप्ता जनिमृतिजरादुःखबहुला
प्रतीचश्चिन्मूर्तेस्तव सुखतनोः संसृतिरियम्॥ ३०६॥

अहङ्कारे, कर्तारी, अहं, इति, मति, मुञ्च, सहसा, विकारात्मनि, आत्मप्रतिफलजुषि, स्थितिमुधि, यदध्यासात्, प्राप्ता,

जनिमृतिजरादुःखबहुला, प्रतीचः, चिन्मुर्तेः, तव, सुखंतनोः, संसृतिः, इयम्॥ ३०६॥

हे शिष्य विकारात्मक और आत्मप्रतिबिम्ब संयुक्त और आत्मसत्ता को छिपाने वाला जो जगत का कारण अहंकार है उससे अहं बुद्धि को हठपूर्वक त्याग दो क्योंकि उसी अहंकार का त्याग आत्मा में पडने से व्यापक और चैतन्य मूर्ति तुम्हें जन्ममरण जरा आदि अनेक दुःखयुक्त यह संसार भोगना पडता है॥ ३०६॥

सदैकरूपस्य चिदात्मनो विभोरानन्दमूर्तेरनवद्यकीर्तेः,
नैवान्यथा क्वाप्यविकारिणस्ते विनाहमध्यासममुष्य संसृतिः॥३०७॥

सदा, एकरूपस्य, चिदात्मनः, विभोः, आनन्दमूर्तेः, अनवद्यकीर्तेः॥
न, एव, अन्यथा, ह, अपि, अविकारिणः, ते, विना, अहंमध्यासं, अमुष्य, संसृतिः॥ ३०७॥

जब तक अहंकार का मिथ्या ज्ञान आत्मा में नहीं होता तब तक सदा एक रूप चैतन्यात्मक, सर्वथा एक रूप, आनन्दमूर्ति और पवित्र कीर्ति विकार से रहित तुमको संसार संभावना नहीं होती अर्थात अहंकार के मिथ्या ज्ञान के कारण ही तुमको संसार प्राप्त होता है॥ ३०७॥

तस्मादहङ्कारमिमं स्वशत्रु भोक्तुर्गले कण्टकवप्रतीवम्,
विच्छिद्य विज्ञानमहासिना स्फुटभुश्वात्मसाम्राज्यसुखं यथेष्टम्॥ ३०८॥

तस्मात्, अहङ्कारं, ईमं, स्वशत्रु, भोक्तुः, गैले, कणटकवत्, प्रेतीतम्॥
विच्छिंद्य, विज्ञानमहासिना, स्फुटं, भुक्ष्व, आत्मसाम्राज्यं, यथेष्टम्॥ ३०८॥

हे विद्वन् ! इस कारण भोजन करने वाले पुरुष के गले में कांटे के समान दुःखप्रद विद्यमान इस अहंकार रूप अपने शत्रु को विज्ञानरूप महाखड्ग से भली भांति छेदन कर आत्म साम्राज्य सुख का यथेष्ट भोग करो॥ ३०८॥

ततोऽहमादेविनिवर्त्य वृत्तिं संत्यक्तरागः पर मार्थलाभात्,
तूष्णीं समारस्वात्मसुखानुभूत्या पूर्णात्मना ब्रह्मणि निर्विकल्पः॥ ३०९॥

ततः, अहमादेः, विनिर्वर्त्य, वृत्ति, संयुक्तरागः, परमार्थलाभात्॥
तूष्णी, समारस्व, आत्मसुखानुभूत्या, पूंर्णात्मना, ब्रह्मणि, निर्विकल्पः॥ ३०९॥

अहंकार का नाश होने के बाद ही अहंकार की जो कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि वृत्ति है उसको त्याग कर, परमार्थ वस्तु का लाभ होने से सम्यक् राग आदि को भी त्याग कर और आत्मवस्तु का अनुभव होने से विकल्प रहित पूर्ण आत्मरूप से मौन होकर सुख का आस्वादन करो॥ ३०९॥

समूलकृत्तोऽपि महानहं पुनर्युल्लेखितः स्याद्यदि चेतसा क्षणम्,
संजीव्य विक्षेपशतं करोति : नभस्वता प्रावृषि वारिदो यथा॥ ३१०॥

समूलकृत्त, अपि, महान्, अहं, पुनः, व्युल्लेखितः, स्यात्, यदि, चैतसा, क्षणम्॥
संजीव्य, विक्षेपशतं, करोति, नभस्वता, प्रावृषि, वारिदः, यथा॥ ३१०॥

यह ऐसा प्रबल अहंकार है कि समूल नाश होने पर भी यदि एक क्षण मात्र को चित्त संपर्क प्राप्त कर ले तो पुन: प्रकट होकर सैंकडों विक्षेपों को बढाता है जैसे वर्षाकाल में वायु से संयुक्त हुआ मेघ आकाश में अनेकों प्रकार की आकृतियां दिखाता है वैसे ही चित्त के संपर्क में आने से अहंकार भी अनेक प्रकार की सृष्टि का विस्तार करता है॥ ३१०॥

निगृह्य शत्रोरहमोऽवकाशः क्वचिन्न देयो विषयानुचिन्तया,
स एव संजीवनहेतुरस्य प्रक्षीणजम्बीरतरोरिवाम्बु॥ ३११॥

निगृह्य, शत्रोः, अहमः, अवकाशः, क्वचित्, न, देयः, विषयानुचिन्तया॥
सेः, एवं, संजीवनहेतुः, अस्य, प्रक्षीणजेम्बीरतरोः, ईव, अम्बु॥ ३११॥

जैसे जम्बीर का वृक्ष कटने पर भी वर्षा काल मे जल संसर्ग होने से अंकुरित होकर फिर बढ़ जाता है वैसे ही अहंकार रूप शत्रु का विनाश करने पर भी विषय के चिन्तन से समय पाकर फिर वह अहंकार पुन: संजीवित हो जाता है क्योंकि अहंकार के उत्पन्न होने में विषय चिन्ता ही कारण है॥ ३११॥

वासना के उन्मूलन की आवश्यकता

देहात्मना संस्थित एव कामी विलक्षणः कामयिता कथं स्यात्,
अतोऽर्थसन्धानपरत्वमेव भेदप्रसक्त्या भवबन्धहेतुः॥ ३१२॥

देहात्मना, संस्थितः, एव, कामी, विलक्षणः, कामयिता, कथं, स्यात्॥
अतः, अर्थसन्धानपरत्वं, एव, भेदप्रसक्त्या, भवबन्धहेतुः॥ ३१२॥

देह में आत्मबुद्धि से स्थित कामी पुरुष, विलक्षण आत्मा कैसे कैसे हो सकता है। इसलिये भेद बुद्धि से विषय चिंतन में तत्पर होना ही भवबन्ध का कारण है॥ ३१२॥

कार्यप्रवर्धनाद्बीजप्रवृद्धिः परिदृश्यते,
कार्यना शाद्बीजनाशस्तस्मात्कार्य निरोधयेत्॥ ३१३॥

कार्यप्रवर्धनात्, बीजप्रवृद्धिः, परिदृश्यते॥
कार्योंशात्, बीजनांशः, तस्मात्, कार्य, निरोधयेत्॥ ३१३॥

कार्य बढने से उसके बीज की भी वृद्धि होती है और कार्य नाश होने से बीज का भी नाश होता है इसलिये कार्य का ही नाश करना चाहिये॥ ३१३॥

वासनावृद्धितः कार्य कार्यवृद्धया च वासना,
वर्धते सर्वथा पुंसः संसारो न निवर्तते॥ ३१४॥

वासनावृद्धितः, कार्य, कार्यवृद्धया, च, वासना॥
वर्धते, सर्वथा, पुंसः, संसारः, ने, विनिवर्तते॥ ३१४॥

वासना के बढ़ने से कार्य बढता है और कार्य बढने से वासना बढती है इसलिये मनुष्य को संसार बंधन से मुक्ति प्राप्त नहीं होती॥ ३१४॥

संसारबन्धविच्छित्त्यै तद् दयं प्रदहेद्यतिः,
वासनावृद्धिरेताभ्यां चिन्तया क्रियया बहिः॥ ३१५॥

संसारबन्धविच्छित्त्यै, तद्, द्वयं, प्रदेहेत्, यतिः॥
वासनावृद्धिः, एताभ्यां, चिन्तया, क्रिर्यया, बहिः॥ ३१५॥

संसार बन्धन से मुक्त होने के लिये कार्य और वासना इन दोनों का नाश योगी को करना चाहिए। वासना की वृद्धि – विषयों की चिन्ता तथा बाह्यक्रिया करने से होतीहै क्योकि विषयचिन्ता छूटने से वासना नष्ट होती है और वासना का नाश होने पर पुनः संसार प्राप्त नहीं होता॥ ३१५॥

ताभ्यां प्रवर्धमाना सा सूते संसृतिमात्मनः,
त्रयाणां च क्षयोपायः सर्वावस्थासु सर्वदा॥३१६॥

ताभ्यां, प्रवर्धमाना, सा, सुते, संसृतिं, आत्मनः॥
त्रयाणां, चै, क्षयोपायः, सर्वावस्थासु, सर्वदा॥ ३१६॥

विषय की चिन्ता और बाह्यक्रिया इन दोनो से बढी हुई वासना आत्मा को संसार में बद्ध करती है इसलिये विषय चिन्ता, बाह्यक्रिया तथा वासना इन तीनों के नाश का उपाय सभी कालों में और सभी अवस्थाओं में करना चाहिये॥ ३१६॥

सर्वत्र सर्वतः सर्वब्रह्ममात्रावलोकनैः,
सद्भाववासनाढर्यातत्त्रयं लयमश्नुते॥ ३१७॥

सर्वत्र, सर्वतः, सर्वब्रह्ममात्रावलोकनैः॥
सद्भाववासनाढर्यात्, तत्, त्रयं, लयं, अश्नुते॥ ३१७॥

सभी कालों में तथा सभी वस्तुओं मे सबको ब्रह्ममय देखने से और उस ब्रह्ममय वासना के दृढ होने से विषयचिन्ता, बाह्य कार्य और वासना यह तीनों लय को प्राप्त होते हैं॥ ३१७॥

क्रियानाशे भवेचिन्तानाशोऽस्मादासनाक्षयः,
वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्तिरिष्यते॥ ३१८॥

क्रियानाशे, भवेत्, चिन्तानाशः, अस्मात्, वासनाक्षयः॥
वासनाप्रक्षयः, मोक्षः, सा, जीवन्मुक्तिः, इष्यते॥ ३१८॥

क्रिया के नाश होने से चिन्ता का नाश होता है, चिन्ता के नाश होने से वासना का क्षय होता है, वासना का क्षय होना यही मोक्ष है और यही जीवन मुक्ति है॥ ३१८॥

सदासनास्फूर्तिविजृम्भणे सत्यसौ विलीनाप्यहमादिवासना,
अतिप्रकृष्टाप्यरुणप्रभायां विलीयते साधु यथा तमिस्रा॥ ३१९॥

सद्वासनास्फूर्तिविजृम्भणे, सति, असौ, विलीना, अपि, अहमादिवासना॥
अतिप्रकृष्टा, अपि, अरुणप्रभायां, विलीयते, साधु, यथा, तमिस्रा॥ ३१९॥

जैसे घोर, अँधेरी रात सूर्य की प्रभा के उदय होते ही नष्ट होती है वैसे ही सत् ब्रह्म वासना की स्फूर्ति बढने पर अहंकार की वासना नष्ट हो जाती है॥ ३१९॥

तमस्तमः कार्यमनर्थजालं न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे,
तथादयानन्दरसानुभूतौ ना नैवास्ति बन्धो न च दुःखगन्धः॥ ३२०॥

तमः, तमःकार्य, अनर्थजालं, न, दृश्यते, सति, उदिते, दिनेशे॥
तथा, अद्वयानन्दरसानुभूतौ, न, एव, अस्ति, बन्धः, न, च, दुःखगन्धः॥ ३२०॥

जैसे सूर्य के उदय होनेसे तप और अनर्थ के समूह तम के कार्य कहीं दिखाई नहीं देते वैसे ही अद्वितीय आनन्द मय रस के अनुभव होने से न संसाररूप बन्धन रहता है न ही दुःख का गन्ध रहता है॥ ३२०॥

दृश्यं प्रतीतं प्रविलापयन् सन् सन्मात्रमानन्दघनं विभावयन्,
समाहितः सन् बहिरन्तरं वा कालं नयेथाः सति कर्मबन्धे॥ ३२१॥

दृश्यं, प्रतीतं, प्रविलापयन्, सन्, सन्मात्र, आनन्दघनं, विभावयन्॥
समाहितः, सन्, बहिः, अन्तरं, वा, कालं, नयेथाः, सति, कर्मबंधे॥ ३२१॥

हे शिष्य ! यदि तुम कर्मबन्ध में फँसे हो तो दृश्य प्रतीयमान इस जगत को मिथ्या समझ कर तथा सन्मात्र आनन्द धन आत्मा पर विचार करते हुए बाह्य भीतर से समाहित होकर समय व्यतीत करो॥ ३२१॥

ब्रह्म विचार में प्रमाद करने से हानि

प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन,
प्रमादो मृत्युरित्याह भगवान् ब्रह्मणः सुतः॥ ३२२॥

प्रमादः, ब्रह्मनिष्ठायां, न, कर्तव्यः, कदाचन,
प्रमादः, मृत्युः, इति, आह, भगवान्, ब्रह्मणः, सुतः॥ ३२२॥

हे विद्वन् ! ब्रह्म विचार में प्रमाद कभी न करना क्योंकि ब्रह्मपुत्र नारदादि ऋषीश्वरों ने प्रमाद को ही मृत्यु कहा है॥ ३२२॥

न प्रमादादनर्थोऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपतः,
ततो मोहस्ततोऽहंधीस्ततो बन्धस्ततो व्यथा॥ ३२३॥

न, प्रमादात्, अनर्थः, अन्यः, ज्ञानिनः, स्वस्वरूपतः,
ततः, मोहः, ततः, अहंधीः, ततः, बन्धः, ततः, व्यथा॥ ३२३॥

अपने स्वरूप से प्रमाद करना अर्थात् अपना रूप भूल जाना इससे अतिरिक्त ज्ञानी के लिये दूसरा अनर्थ नहीं है क्योंकि अपने रूप को भूलने से मोह होता है मोह से अहंबुद्धि होती है अहंबुद्धि होने से संसार का बन्धन प्राप्त होता है और बन्धन होने से क्लेश की प्राप्ति होती है॥ ३२३॥

विषयाभिमुखं दृष्ट्वा विद्वांसमपि विस्मृतिः,
विक्षेप यति धीदोषैर्योषा जारमिव प्रियम्॥ ३२४॥

विषयाभिमुखं, दृष्ट्वा, विद्वांसं, अपि, विस्मृतिः॥
विक्षेपयति, धीदोषैः, योषा, जारं, इव, प्रियम्॥ ३२४॥

जैसे अपनी तरफ कामना पूर्ण दृष्टि से देखते हुए जार पुरुष को कुलटा स्त्री अपने कटाक्ष विक्षेप आदि गुणों से मोहित कर देती है वैसे ही विषयों में प्रवृत्त विद्वान को भी आत्म विस्मृति बुद्धि में दोष सम्पादित कर अनेक प्रकार के विक्षेप उत्पन्न करती है॥ ३२४॥

यथाऽप्रकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति,
आवृणोति तथा माया प्राज्ञं वापि पराङ्मुखम्॥ ३२५॥

यथा, अपकृष्टं, शैवालं, क्षणमात्रं, न, तिष्ठति॥

आवृणोति, तथा, माया, प्राज्ञं, वाँ, अपि, परीङ्मुखम्॥ ३२६॥

जैसे जल के शैवाल को हटा देने पर भी, वह शैवाल क्षणमात्र भी अलग नहीं रहता, शीघ्र ही जल पर पुन: फ़ैल जाता है, वैसे ही आत्मविचार से हीन विद्वान को भी माया शीघ्र ही अपनी आवरण शक्ति से ढक लेती है॥ ३२५॥

लक्ष्यच्युतं चेद्यदि चित्तमीषबहिर्मुखं सन्निपतेततस्ततः,
प्रमादतः प्रच्युतकेलिकन्दुकः सोपानपंक्तौ पतितो यथा तथा॥ ३२६॥

लक्ष्यच्युतं, चेदं, यदि, चित्त, ईषत्, बहिर्मुखं, सन्निपतेत्, ततः, ततः॥
प्रमादतः, प्रच्युतकलिकन्दुकः, सोपानपंक्तौ, पतितः, यथा, तथा॥ ३२६॥

जैसे खेल में हाथ ले छूटी हुई गेंद एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर अपने आप गिरती हुई नीचे चली जाती है वैसे ही ब्रह्म तत्व में लगा हुआ चित्त थोड़े समय के लिए भी उस लक्ष्य से बहिर्मुख होने पर नीचे ही गिरता चला जाता है॥ ३२६॥

विषयेष्वाविशचेतः संकल्पयति तद्गुणान्,
सम्यक्संकल्पनात्कामः कामात्पुंसः प्रवर्तनम्॥ ३२७॥

विषयेषु, अविशत्, चेतः, संकल्पयति, तद्गुणान्॥
सम्यक्संकल्पनात्, कामः, कामात्, पुंसः, प्रवर्तनम्॥ ३२७॥

जब चित्त, विषयों में प्रवेश करता है तो विषय के गुणों का संकल्प अर्थात् विचार करता है। सदा संकल्प होने से उन विषयों की कामना होती है, कामना होने से विषयों में पुरुष की प्रवृत्ति होती है॥ ३२७॥

अतः प्रमादान्न परोऽस्ति मृत्युर्विवकिनो ब्रह्मविद : समाधौ,
समाहितः सिद्धिमुपैति सम्यक् समाहितात्मा भव सावधानः॥ ३२८॥

अतः, प्रमादात्, न, परः, अस्ति, मृत्युः, विवेकिनः, ब्रह्मविदः, समाधौ॥
समाहितः, सिद्धि, उपैति, सम्यक्, समाहितात्मा, भव, सावधानः॥ ३२८॥

अत: हे शिष्य! इसलिये विवेकी ब्रह्मज्ञानी पुरुष को समाधिकाल में प्रमाद होने से अधिक कोई अन्य मृत्यु नहीं है क्योंकि जो पुरुष समाधि सदा स्थिर रहता है वह आत्म लाभ रूप सिद्धि को प्राप्त होता है। इसलिए तुम भी सावधान होकर अपना चित्त स्थिर करो॥ ३२८॥

ततः स्वरूपविभ्रंशो विभ्रष्टस्तु पतत्यधः,
पतितस्य विना नाशं पुनर्नारोह ईक्ष्यते॥ ३२९॥

ततः, स्वरूपविभ्रंशः, विभ्रष्टः, पतति, अंधः॥
पतितस्य, विना, नाशं, पुनः, न, आरोहः, ईश्यते॥ ३२९॥

समाधिकाल में प्रमाद होने पर आत्मस्वरूप से अलग होना पड़ता है जो आत्म स्वरूप से विभ्रष्ट हो जाता है उसका अधःपतन होता है। अध:पतित मनुष्य को नाश के सिवा पुन: उत्थान तो कभी नहीं होता

इसलिए इसलिये सम्पूर्ण अनर्थों के कारण संकल्प का सर्वथा त्याग करना ही योग्य है॥ ३२९॥

संकल्पं वर्जयेत्तस्मात्सर्वानर्थस्य कारणम्,
जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहे च स केवलः॥ ३३०॥

संकल्पं, वर्जयेत्, तस्मात्, सर्वानर्थस्य, कारणम्॥
जीवतः, यस्य, कैवल्यं, विदेहे, सः, केवलः॥ ३३०॥

यत्किञ्चित्पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुःश्रुतिः॥
यत्किञ्चित्, पश्यतः,भेदं, भयं, ब्रूते, यजु :श्रुतिः॥

जिसने संकल्प का त्याग किया वह जीते हुए ही कैवल्य सुख प्राप्त करता है, उसकी देह्पात होने पर भी कैवल्य मुक्ति होती है, जो मनुष्य थोड़ी सी भी भेदबुद्धि रखता है वह भय को प्राप्त होता है ऐसा यजुर्वेद की श्रुतियाँ कहती हैं॥ ३३०॥

यदा कदा वापि विपश्चिदेष ब्रह्मण्यनन्तेप्यणु मात्रभेदम्,
पश्यत्यथामुष्य भयं तदैव यद्वीक्षितं भिन्नतया प्रमादात्॥ ३३१॥

यदा, कदा, वा, अपि, विपश्चित्, एषः, ब्रह्मणि, अनन्ते, अपि, अणुमात्रभेदम्,
पश्यति, अथ, अमुष्य, भयं, तद्, व, यद्, वीक्षितं, भिन्नतया, प्रमादात्॥ ३३१॥

जो विद्वान् अनन्त परब्रह्म में अणु मात्र भी भेद को देखता है उसी भेदबुद्धि से उस मनुष्य को भय प्राप्त होता है क्योंकि प्रमाद से ही आत्मा में भेद दिखाई देता है इसलिये प्रमाद से सदा सावधान होना चाहिये॥ ३३१॥

श्रुतिस्मृतिन्यायशतैनिषिद्धे दृश्येत्र यः स्वात्म मतिं करोति,
उपैति दुःखोपरि दुःखजातं निषिद्धकर्ता स मलिम्लुचो यथा॥ ३३२॥

श्रुतिस्मृतिन्यायशतैः, निषिद्धे, दृश्ये, अत्र, यः, स्वाममतिं, करोति॥
उपैति, दुःखोपरि, दुःखेजातं, निषिद्धकर्ता, सः, मलिम्लुचः, यथा॥ ३३२॥

श्रुति, स्मृति और सैकडों युक्तियों से निषिद्ध इस दृश्य संसार में जो आत्म बुद्धि करता है, वह निषिद्ध कर्म कर्ता म्लेच्छों के समान परम दुःख को प्राप्त होता है॥ ३३२॥

सत्याभिसन्धानरतो विमुक्तो महत्वमात्मीयमुपैति नित्यम्,
मिथ्याभिसन्धानरतस्तु नश्येद् दृष्टं तदेतद्यदचौरचौरयोः॥ ३३३॥

सत्याभिसन्धानरतः, विमुक्तः, महत्वं, आत्मीयं, उपैति, नित्यम्॥
मियाभिसन्धानरतः,तु, नश्येत्, दृष्टं, तत्, एतत्, यद्, अचौरचौरयोः॥ ३३३॥

अद्वितीय ब्रह्मरूप सत्यवस्तु के विचारने में जो मनुष्य अनुरक्त रहता है वह जीवनमुक्त होकर महत्त्व आत्मीय पद को सदा प्राप्त होता है। जो मिथ्या वस्तु शरीर आदि का संग्रह करने में ही अनुरक्त है, उस

मनुष्य का नाश यही दृष्ट संसार वस्तु कर देती है जैसे अच्छे कर्म करने वाला साधुजन उत्तम पद को प्राप्त करता है और नीचकर्म करनेवाला चोर दण्ड पाकर परम दुःख पाता है॥ ३३३॥

वैराग्य व् बोध की आवश्यकता

यतिरसदनुसन्धि बन्धहेतुं विहाय स्वयम यमहमस्मीत्यात्मदृष्टयैव तिष्ठेत्,
सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या हरति परमविद्या कार्यदुःखं प्रतीतम्॥ ३३४॥

यतिः, असदनुसन्धि, बन्धहेतुं, विहाय, स्वयं, अयं, अहं, अस्मि, इति, आत्मदृष्टया, एवं, तिष्ठेत्॥
सुख यति, ननु, निष्ठा, ब्रह्मणि, स्वानुभूत्या, हरति, परं, अविद्याकार्यदुःखं, प्रतीतम्॥ ३३४॥

विरक्त यति को अनित्य वस्तुओं के अनुसंधान को त्यागकर साक्षात् ब्रह्म स्वरूप यह 'मैं ही हूं' ऐसा अपने में आत्मदृष्टि को स्थिर रखना चाहिए। अपने अनुभव से ब्रह्म में जो निष्ठा उत्पन्न होती है वही ब्रह्म निष्ठा प्रतीयमान संसारी दुःख का नाशकर परम सुख प्रदान करती है॥ ३३४॥

बाह्यानुसन्धिः परिवर्धयेत्फलं दुर्वासनामेव तत स्ततोऽधिकाम्,
ज्ञात्वा विवेकः परिहत्य बाह्य स्वात्मानुसन्धिं विदधीत नित्यम्॥ ३३५॥

बाह्यानुसन्धिः, परिवर्धयेत्, फलं, दुर्वासनां, एव, ततः, ततः, अधिकाम्॥
ज्ञात्वा, विवेकैः, परिहृत्य, बाह्यं, स्वात्मानुसन्धि, विदधीत, नित्यम्॥ ३३५॥

बाह्य विषयों का चिंतन है वही अपने दुर्वासना रूप फल को बढाती है । यदि विवेकपूर्वक आत्मस्वरुप को जान कर बाह्य वस्तु की चिन्ता का त्याग किया जाय तो वही विवेक आत्मवस्तु के अनुभव का सदा अनुसन्धान करता रहता है इसलिये बाह्य वस्तु की चिन्ता छोडकर आत्मचिन्ता करना उचित है॥ ३३५॥

बाह्ये निरुद्धे मनसः प्रसन्नता मनःप्रसादे परमात्मदर्शनम्,
तस्मिन् सुदृष्टे भवबन्धनाशो बहिर्निरोधः पदवी विमुक्तेः॥ ३३६॥

बाह्ये, निरुद्धे, मनसः, प्रसन्नता, मनःप्रसादे, परमात्मदर्शनम्॥
तस्मिन्, सुदृष्टे, भवेबन्धनाशो, बहिर्निरोधः, पदवी, विमुक्तेः॥ ३३६॥

बाह्य वस्तुओं का निषेध होने से मन की प्रसन्नता होती है मन प्रसन्न होने से परमात्मा का साक्षात्कार होता है परमात्मा का दर्शन होने से संसार रूप बन्धन का नाश होता है इसलिये बाह्यवस्तुओं का जो निषेध है वही मुक्ति का स्थान है॥ ३३६॥

कः पण्डितः सन् सदसद्विवेकी श्रुतिप्रमाणः परमार्थदर्शी,
जानन हि कुर्यादसतोऽवलम्ब स्वपातहेतोः शिशुवन्मुमुक्षुः॥ ३३७॥

कः, पण्डितः, सन्, सदसद्विवेकी, श्रुतिप्रमाणः, परमार्थदर्शी॥
जानन्, हि, कुर्यात्, असतः, अवलम्बं, स्वपातहेतोः, शिशुवत्, मुमुक्षुः॥ ३३७॥

परमात्म तत्व का द्रष्टा, श्रुतियों का प्रमाण जानने वाला और सत् असत् वस्तुओं का विवेकी कौन ऐसा विद्वान् होगा जो आत्मवस्तु को जानता हुआ भी, परमपद का पात्र होने पर भी, जानबूझ कर, बालक के समान, असत् वस्तुओं का ग्रहण करेगा॥ ३३७॥

देहादिसंसक्तिमतो न मुक्तिर्मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभावः,
सुप्तम्य नो जागरणं न जाग्रतः स्वप्नस्तयोभिन्नगुणाश्रयत्वात्॥ ३३८॥

देहादिसंसक्तिमतः, न, मुक्तिः, मुक्तस्य, देहायभिमत्य भावः॥
सुप्तस्य, नो, जागरणं, नै, जाग्रतः, स्वप्नः, तयोः, भिन्नगुणाश्रयत्वात्॥ ३३८॥

जैसे मनुष्यों में स्वप्नावस्था में स्थित होने पर जाग्रत अवस्था का अभाव होता है और जाग्रत् अवस्था में स्थित होने पर स्वप्न अवस्था का अभाव रहता है क्योंकि यह दोनों अवस्थाएँ भिन्न भिन्न गुणों का आश्रय लेती हैं। वैसे ही जो मनुष्य देह आदि अनित्य वस्तुओं में आसक्त रहते हैं वह मोक्ष के भागी नहीं होते और जो मुक्त हो गये हैं उनको देह आदि का फिर कभी अभिमान नहीं होता॥ ३३८॥

अन्तर्बहिः स्वं स्थिरजङ्गमेषु ज्ञात्वात्मनाधारतया विलोक्य,
त्यक्ताखिलोपाधिरखण्डरूपः पूर्णात्मना यः स्थित एष मुक्तः॥ ३३९॥

अन्तः, बहिः, स्व, स्थिरजङ्गमेषु, ज्ञात्वा, आत्मना, आधारतया, विलोक्य॥
त्यक्ताखिलोपाधिः, अखण्डरूपः, पूर्णात्मना, यः, स्थितः, एषः, मुक्तः॥ ३३९॥

वृक्ष आदि जितने स्थावर हैं और मनुष्य आदि जितने जंगम हैं उन सबमें बाहर और भीतर सबके आधार भूत आत्मरूप से अपने को देखकर, संपूर्ण उपाधि से छूटकर, अखण्डरूप परिपूर्ण होकर जो मनुष्य स्थित है वही मनुष्य मुक्त कहा जाताहै।॥ ३३९॥

सर्वात्मना बन्धविमुक्तिहेतुः सर्वात्मभावान्न परोऽस्ति कश्चित्,
दृश्याग्रहे सत्युपपद्यतेऽसौ सर्वात्मभावोऽस्य सदात्मनिष्ठया॥ ३४०॥

सर्वात्मना, बन्धविमुक्तिहेतुः, सर्वात्मभावात, न, परः, अस्ति, कश्चित्॥
दृश्याग्रहे, सति, उपपद्यते, असौ, सर्वात्मभावः, अस्य, सदा, आत्मनिष्ठया॥ ३४०॥

सब वस्तुओ का बन्धन से सदा विमुक्त होने के कारण सर्वात्मभाव को प्राप्त होने से अधिक दूसरा नहीं है अर्थात स्थावर जंगम जितने पदार्थ हैं उन सब पदार्थों में आत्मबुद्धि होने से सम्पूर्ण बंधनों से मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो देह आदि जगत् है उसमें मुमुक्षु पुरुष की त्यागबुद्धि होना यही सर्वात्म भाव होने का अर्थात् सब वस्तुओं में आत्मबुद्धि होने का कारण है॥ ३४०॥

दृश्यस्याग्रहणं कथं नु घटते देहात्मना तिष्ठतो
बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसस्तत्तत्क्रियाः कुर्वतः॥
संन्यस्ताखिलधर्मकर्मविषयनित्यात्मनिष्ठापरैस्तत्त्वज्ञैः करणीयमात्मनि
सदानन्देच्छुभिर्यत्वतः॥ ३४१॥

दृश्यस्य, अग्रहणं, कथं, नु, घटते, देहात्मना, तिष्ठतः,
बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसः, तत्तत्क्रियाः, कुर्वतः॥
सैन्यस्ताखिलधर्मकर्मविषयः, नित्यात्मनिष्ठापरैः, तत्त्वज्ञैः, करणीयं, आत्मनि,
सदानन्देच्छुभिः, यत्वतः॥ ३४१॥

जिन मनुष्यों ने देह में आत्मबुद्धि को स्थिर किया हुआ है और बाह्य विषय के स्मरण मे सदा मन को लगाकर बाह्य विषयों की क्रिया में फंसे रहते हैं उस पुरुष के देह आदि में त्यागबुद्धि कैसे होगी। इसलिये सम्पूर्ण धर्म कर्म विषय को त्याग कर और नित्य आत्मा में भक्ति कर सदा आनन्द की इच्छा करने वाला तत्त्वज्ञ पुरुषों को यत्न से देह आदि के आग्रह को त्याग करना उचित है॥ ३४१॥

सर्वात्मसिद्धये भिक्षोः कृतश्रवणकर्मणः,
समाधि विदधात्येषा शान्तो दान्त इति श्रुतिः॥ ३४२॥

सर्वात्मसिद्धये, भिक्षोः, कृतश्रवणकर्मणः॥
समाधि, विदधाति, एषा, शान्तः, दान्तः, इति, श्रुतिः॥ ३४२॥

श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि कर्म के करने वाले संन्यासी को सर्वात्म सिद्धि के लिये 'शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षु' यह श्रुति समाधि का विधान करती है। अर्थात् मुमुक्षु भिक्षु को अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए चित्त का निरोध करना चाहिये॥ ३४२॥

आरूढशक्तेरहमो विनाशः कर्तुं न शक्यः सह सापि पण्डितैः,
ये निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चला स्तानन्तरानन्तभवा हि वासनाः॥ ३४३॥

आरुढशक्तेः, अहमः, विनोशः, कर्तुं, न, शक्यः, सहसा, अपि, पण्डितैः॥
ये, निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चलाः, तान्, अन्तरा, अनन्तभवाः, हि, वासेनाः॥ ३४३॥

अहंकार की पूर्वोक्त शक्ति जब तक बढी रहती है तब तक अहंकार का हठ पूर्वक नाश करने में कोई पण्डित समर्थ नहीं हो सकता, जो विद्वान् निर्विकल्पक समाधि से चित्तको स्थिर करते हैं उन विद्वानों को किसी तरह की वासना आत्मलाभ होने में प्रतिबन्धक नहीं होती॥ ३४३॥

अहंबुद्ध्यैव मोहिन्या योजयित्वावृतेर्बलात्,
विक्षेपशक्तिः पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः॥ ३४४॥

अहंबुद्धया, एव, मोहिन्या, योजयित्वा, आवृतेः, बलात्॥
विक्षेपशक्तिः, पुरुषं, विक्षेपयति, तद्गुणैः॥ ३४४॥

मोह प्रदान करने वाली देनेवाली जो अहंबुद्धि है उसके साथ आवरण शक्ति के हठ पूर्वक संयोग से विक्षेपशक्ति पुरुष को विक्षिप्त कर देती है॥ ३४४॥

विक्षेपशक्तिविजयो विषमो विधातुं निःशेषमावरणशक्तिनिवृत्त्यभावे, दृग्दृश्ययोः स्फुटपयोजल वदिमागे नश्येत्तदावरणमात्मनि च स्वभावात् निःसंशयेन भवति प्रतिबन्धशून्यो विक्षेपणं नहि तदा यदिचेन्मृषार्थे॥ ३४५॥

विक्षेपशक्तिविजयः, विषमः, विधातुं, निःशेषं, आवरणशक्तिनिवृत्त्यभावे॥ दृग्दृश्ययोः, स्फुटपयोजलवत्, विभागे, नश्येत्, तद्, आवरणं, आत्मनि, च, स्वभावात्, निःसंशयेन, भवति, प्रतिबन्धशून्यः, विक्षेपणं, नहि, तदा, यदि, चेत्, मृषार्थे॥ ३४५॥

आवरण शक्ति की पूर्ण निर्वृति के बिना विक्षेप शक्ति का विजय प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। जैसे द्रष्टा और दृश्य इन दोनों का स्पष्ट दूध से जल की भांति विभाग किया जाय तो स्वभाव से ही आवरण शक्ति आत्मा में लीन हो जायगी। अभिप्राय यह है कि जैसे दूध में जल मिलाने पर दूध से जल अलग नहीं दिखाई देता वैसे ही द्रष्टा जो ईश्वर है और दृश्य जो जगत् है इन दोनों का विभाग अज्ञानता से पता नहीं चलता। यदि विचारने से द्रष्टा दृश्य का विभाग किया जाय तो आवरण शक्ति अपने आप ही आत्मा में नष्ट हो जाएगी॥ ३४५॥

देहात्मा बुद्धि का त्याग करने की आवश्यकता

सम्यग्विवेकः स्फुटबोधजन्यो विभज्य दृग्दृश्यपदार्थतत्त्वम्,
छिनत्ति मायाकृतमोहबन्धं यस्माद्विमुक्तस्य पुनर्न संसृतिः॥ ३४६॥

सम्यक्, विवेकः, स्फुटबोधजन्यः, विभज्य, दृग्दृश्यपदार्थतत्त्वम्॥
छिनत्ति, मांकृतमोहबन्धं, यस्मात्, विमुक्तस्य, पुनः, न, संसृतिः॥ ३४६॥

यदि मिथ्या वस्तुओं से विक्षेप शक्ति का नाश हो जाए तो स्पष्ट ज्ञान प्रदान करने वाला, बंधनों से रहित निश्चित यथार्थ विवेक उत्पन्न होगा। विवेकपूर्वक जो पुरुष द्रष्टा और दृश्य पदार्थो का विभागकर मायाकृत मोहजाल का नाश करता है और उस मोह जाल से मुक्त होने पर फिर संसार में पुनर्जन्म की संभावना नहीं होती॥ ३४६॥

परावरैकत्वविवेकवन्हिर्दहत्यविद्यागहनंह्यशेषम्,
किं स्यात्पुनः संसरणस्यबीजमद्वैतभावं समुपेयुषोऽस्य॥ ३४७॥

परावरैकत्वविवेकवन्हिः, दहति, अविद्यागहनं, हि, अशेषम्॥
किं, स्यात्, पुनः, संसरणस्य, बीजं, अद्वैत भावं, समुपेयुषः, अस्य॥ ३४७॥

तत्त्वमसि आदि महावाक्यों से जीव ब्रह्म का अग्नि रुपी एकत्व विचार उत्पन्न होता है जो अविद्या रुपी महावन को निर्मूल भस्म कर देता है जब निर्मूल अविद्या का नाश हो जाता है तो अद्वैत भाव में प्राप्त मनुष्य

का पुन: संसार में जन्म लेना का कुछ भी कारण नहीं रह जाता॥ ३४७॥

आवरणस्य निवृत्तिर्भवति च सम्यक्पदार्थदर्शनतः,
मिथ्याज्ञानविनाशस्तद्विक्षेपजनितदुःखनिर्वृत्तिः॥ ३४८॥

आवरणस्य, निवृत्तिः, भवति, च, सम्यक्पदार्थदर्शनतः॥
मियाज्ञानविनाशः, तद्विक्षेपजनितदुःखनिवृत्तिः॥ ३४८॥

आत्मवस्तु का दर्शन अर्थात् विचार हो जाने से आवरण का नाश हो जाता है। आवरण शक्ति की निवृत्ति होने से मिथ्या ज्ञान का नाश होता है, मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने पर विक्षेप शक्ति से युक्त सम्पूर्ण दुखों का नाश हो जाता है॥ ३४८॥

एतत्त्रितयं दृष्टं सम्यग्रज्जुस्वरूपविज्ञानात्,
तस्माद्वस्तुसतत्त्वं ज्ञातव्यं बन्धमुक्तये विदुषा॥ ३४९॥

एतत्, त्रितयं, दृष्टं, सम्यग्रज्जुस्वरूपविज्ञानात्॥
तस्मात्, वस्तु, सतत्त्वं, ज्ञातव्यं, बन्धमुक्तये, विदुषा॥ ३४९॥

जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम होने पर अनेक प्रकार का भय और दुःख प्राप्त होता है परन्तु दीपक से भली प्रकार देखने विचारने के कारण रस्सी का यथार्थ ज्ञान होने से भय और दुःख नष्ट हो जाता है। वैसे ही आत्म ज्ञान जो जाने पर, आवरण शक्ति के कारण उत्पन्न ईश्वर में

जगत का मिथ्याज्ञान तथा उस मिथ्याज्ञान से प्राप्त दुःख नष्ट हो जाता है, इसलिये संसार बन्धन से मोक्ष प्राप्त करने के लिए आत्मवस्तु का ज्ञान प्राप्त करने का उपाय करना चाहिए॥ ३४९॥

अयोग्नियोगादिव सत्समन्वयान्मात्रादिरूपेण विजृम्भतेधीः,
तत्कार्यमेतद् दितयं यतो मृषा दृष्टं भ्रमस्वममनोरथेषु॥ ३५०॥

अयः, अग्नियोगात्, इव, सत्समन्वयात्, मात्रादिरूपेण, विजृम्भते, धीः॥
तत्कायें, एतद्, द्वितयं, यतः, मृषौ, दृष्टं, भ्रमस्वममनोरथेषु॥ ३५०॥

जैसे अग्नि का संयोग होने से चैतन्य लोहे का विलक्षणरूप दिखाई देता है, वैसे ही बुद्धि ब्रह्म से युक्त होने पर मात्रारूप बढती है। चैतन्य का ज्ञान हुए बिना, केवल बुद्धि में प्रकाशकता नहीं रहती क्योंकि भ्रम दशा में, स्वप्नावस्था में और मनोरथ में बुद्धि का समस्त कार्य मिथ्या ही देखा गया है॥ ३५०॥

ततो विकाराः प्रकृतेरहंमुखा देहावसाना विषयाश्च सर्वे,
क्षणेऽन्यथाभावितया ह्यमीषा मसत्त्वमात्मा तु कदापि नान्यथा॥ ३५१॥

ततः, विकाराः, प्रकृतेः, अहंमुखाः, देहावसानाः, विषयाः, च, सर्वे॥
क्षणे, अन्यथाभावितया, हि, अमीषां, असत्त्वं, आत्मा, तुं, कदा, अपि, न, अन्यथा॥ ३५१॥

अहंकार आदि देह पर्यंत जितना प्रकृति का विकार है तथा जितना विषय है वह सब प्रतिक्षण बदलने के कारण मिथ्या है। आत्मा कभी नहीं बदलता, वह सदा ही एकरस रहता है ।३५१॥

नित्यादयाखण्डचिदेकरूपो बुद्ध्यादिसाक्षी सदसद्विलक्षणः,
अहंपदप्रत्ययलक्षितार्थः प्रत्यक्सदानन्दघनः परात्मा॥ ३५२॥

नित्याद्वयाखण्डचिदेकरूपः, बुद्ध्यादिसाक्षी, सदसद्विलक्षणः॥
अहंपदैप्रत्ययलक्षितार्थः, प्रत्यक्, सदानन्दघनः, परात्मा॥ ३५२॥

नित्य, अद्वितीय भेद से रहित, चैतन्य, एकरूप, बुद्धि आदि का साक्षी और सत् असत् से विलक्षण 'अहं' पद की जो प्रतीति है उसका लक्षित अर्थ व्यापक, सत्स्वरूप, आनन्दघन रुपी परमात्मा है॥ ३५२॥

इत्थं विपश्चित्सदसदिभज्य निश्चित्य तत्त्वं निज बोधदृष्ट्या,
ज्ञात्वा स्वमात्मानमरखण्डबोधं तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति॥ ३५३॥

इत्थं, विपश्चित्, सदसद्, विभज्य, निश्चित्य, तत्त्वं, निजबोधंदृष्टया॥
ज्ञात्वा, स्वं, आत्मानं, अखण्डबोधं, तेभ्यः, विमुक्तः, स्वयं, एवं, शाम्यति॥ ३५३॥

इस प्रकार विद्वान् मनुष्य सत् असत् के विभाग कर, अपनी बोधदृष्टि से आत्मतत्त्व को निश्चय करके, अखण्ड बोधरूप आत्मा को जानकर,

असत् वस्तुओं से विमुक्त होकर स्वयं ही शान्ति को प्राप्त करता है॥ ३५३॥

अज्ञानहृदयग्रन्थेनिःशेषविलयस्तदा,
समाधिनाऽविकल्पेन यदाऽद्वैतात्मदर्शनम्॥ ३५४॥

अज्ञानहृदयग्रन्थे, निःशेषविलयः, तदा॥
समाधिनौ, अविकल्पेन, यदा, अद्वैतात्मदर्शनम्॥ ३५४॥

अज्ञानरूप हृदय की ग्रंथि का नाश तभी होताहै जब निर्विकल्पक समाधियुक्त होकर अद्वैत आत्मस्वरूप का दर्शन कर लिया जाता है अन्यथा अज्ञान का नाश होना कठिन है॥ ३५४॥

आत्म विचार तथा ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति

त्वमहमिदमितीयं कल्पना बुद्धिदोषात्प्रभवति परमात्मन्यदये निर्विशेषे,
प्रविलसति समाधावस्य सर्वो विकल्पो विलयन मुपगच्छेद्दस्तुतत्त्वावधृत्या॥ ३५५॥

त्वं, अहं, इदं, इति, इयं, कल्पना, बुद्धिदोषात्, प्रभवति, परमात्मनि, अद्वये, निर्विशेषे॥
प्रविलसति, समाधौ, अस्य, सर्वः, विकल्पः, विलयन, उपगच्छेत्, वस्तुतत्त्वावधृत्या॥ ३५५॥

निर्विशेष, अद्वितीय परमात्मा में अपनी बुद्धि के दोष से 'यह तुम हो' 'यह मैं हूँ, 'यह मेरा है' ऐसी कल्पना होती है। जब निर्विकल्पक समाधि में आत्मवस्तु की धारणा होती है तो उसी आत्म धारणा से पुरुष का सम्पूर्ण विकल्प नष्ट होकर केवल आत्मस्वरूप ही दिखाई देता है। इसलिये चित्त को वश में करके आत्मविचार करना चाहिये॥ ३५५॥

शान्तो दान्तः परमुपरतः क्षान्तियुक्तः समाधि
कुर्वन्नित्यं कलयति यतिः स्वस्य सर्वात्मभावम्,
तेनाविद्यातिमिरजनितान्साधु दग्ध्वा विकल्पान्
ब्रह्माकृत्या निवसति सुखं निष्क्रियो निर्विकल्पः॥ ३५६॥

शान्तः, दान्तः, परं, उपरतः, शान्तियुक्तः, समाधि, कुर्वन्, नित्यं, कलयति, यतिः, स्वस्य, सर्वात्मभावम्॥
तेन, अविद्यातिमिरजनितान्, साँधु, दग्ध्वा, विकल्पान्, ब्रह्माकृत्या, निवसति, सुखं, निष्क्रियः, निर्विकल्पः॥ ३५६॥

जो योगी पुरुष बाह्य इन्द्रियों के विषय को छोड़ कर, परम शान्ति को प्राप्त होकर, क्षमा युक्त चित्तवृत्ति को वश में करता हुआ अपने को सर्वात्मस्वरूप मानता है वही पुरुष आत्मज्ञान से अविद्यारूप अन्धकार से उत्पन्न विकल्प वस्तुओं का नाश कर भेदबुद्धि और क्रिया से रहित साक्षात् ब्रह्मस्वरूप से सुखपूर्वक निवास करता है॥ ३५६॥

समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्य श्रोत्रादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि,
त एव मुक्ता भवपाशबन्धैनान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिनः॥ ३५७॥

समाहिताः, ये, प्रविलीप्य, बाह्य, श्रोत्रादि, चेतः, स्वं, अहं, चिदात्मनि॥
ते, एवं, मुक्ताः, भवपाशबन्धैः, न, अन्ये, तु, पारोक्ष्य कथाभिधायिनः॥ ३५७॥

जो मनुष्य चित्तवृत्ति को वश में कर, बाह्य वस्तुओं को और श्रोत्र आदि इन्द्रियों तथा चित्त को चैतन्य आत्मा मे लयकर देते हैं वही मनुष्य संसाररूप पाश से मुक्त होते हैं। दूसरे केवल परोक्ष ब्रह्म की कथा बांचने में ही संलग्न रहते हैं वह कभी मुक्त नहीं होते॥ ३५७॥

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवलः,
तस्मादुपाधेर्विलयाय विद्वान वसेत्सदाऽकल्पसमाधिनिष्ठया॥ ३५८॥

उपाधिभेदात्, स्वयं, एवं, भिद्यते, चे, उपाध्यपोहे, स्वयं, एवं, केवलः॥
तस्मात्, उपाधेः, विलयाय, विद्वान्, वसेत्, सदा, अकल्पसमाधिनिष्ठया॥ ३५८॥

उपाधि का भेद होने से साक्षात् आत्मा भिन्न प्रतीत होती है, यदि उपाधि का नाश कर दिया जाए तो केवल एक आत्मा ही दिखाई देता है। इसलिये विद्वान् मनुष्य को चाहिए कि उपाधि को लय करने के लिए प्रलय पर्यन्त समाधि में स्थित होकर रहना चाहिए॥ ३५८॥

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया,
कीटको भ्रमरं ध्यायन भ्रमरत्वाय कल्पते॥ ३५९॥

सति, सक्तः, नरः, याति, सद्भाव, हि, एकनिष्ठया,
कीटकः, भ्रमरं, ध्यायन, भ्रमरत्वाय, कल्पते॥ ३५९॥

एकाग्र चित्त से निरंतर सच्चिदानन्द ब्रह्म में स्थित रहने से अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म में चित्त लगाने से मनुष्य ब्रह्मस्वरुप हो जाता है। जैसे भ्रमर का भय पूर्वक ध्यान करते करते कीड़ा भी भ्रमर स्वरुप ही हो जाता है वैसे ही निरन्तर ईश्वर का ध्यान करने से मनुष्य भी ईश्वर स्वरुप को प्राप्त करता है॥ ३५९॥

भ्रमर के विषय में प्रसिद्ध है कि भ्रमर दीवारों में एक मिट्टी का घर बनाकर किसी भी कीडे को उसमें बन्द कर देता है और फिर सूक्ष्म छिद्र से अपने भनभनाने का शब्द सुना कर, अपने डंकों से उस कीडे को पीडा देता है और फिर उड कर स्वयं कहीं अलग चला जाता है। कुछ समय बाद वह कीडा भी भय के कारण भ्रमर के रूप और शब्द का अनुक्षण ध्यान करता हुआ वह स्वयं भी भ्रमर बन जाता है

क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको ध्यायनलित्वं ह्यलिभावमृच्छति,
तथैव योगी परमात्मतत्त्वं ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया॥ ३६०॥

क्रियान्तरासक्तिं, अपास्य, कीटकः, ध्यायन्, अलित्वं, हि, अलिभावं, ऋच्छति॥
तथा, एवं, योगी", परमात्मतत्त्वं, ध्यात्वा, समायाति, तद, एकनिष्ठया॥ ३६०॥

जैसे दूसरी सभी क्रिया शक्तियों को छोडकर केवल भ्रमर का ध्यान करने से कीडा भ्रमर के स्वरुप को प्राप्त हो जाता है वैसे ही योगी एकनिष्ठ, एकचित होकर केवल परमात्मा का चिंतन करता हुआ ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होता है॥ ३६०॥

अतीव सूक्ष्मं परमात्मतत्त्वं न स्थूलदृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति,
समाधिनात्यन्तसुसूक्ष्मवृत्त्या ज्ञातव्यमारतिशुद्धबुद्धिभिः॥ ३६१॥

अतीव, सूक्ष्मं, परमात्मतत्त्वं, न, स्थूलदृष्टया, प्रतिपत्तुं, अर्हति॥
समाधिना, अत्यन्त सुसूक्ष्मवृत्या, ज्ञातव्यं, आर्यै, अतिशुदबुद्धिभिः॥ ३६१॥

परमात्मतत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है, स्थूल दृष्टिले से कोई भी निश्चय नहीं कर सकता। इसलिए चित्त वृत्तियों को वश में करके, अत्यन्त सूक्ष्म वृत्ति और अति शुद्ध बुद्धि से उस परमात्मा को जानना चाहिये॥ ३६१॥

यथा सुवर्णं पटुपाकशोधितं त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति,
तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं ध्यानेन सन्त्यज्य समति तत्त्वम्॥ ३६२॥

यथा, सुवर्ण, पटुपाकशोधितं, त्यक्त्वा, मलं, स्वात्मगुंणं, समृच्छति,
तथा, मनः, सत्वरजस्तमोमलं, ध्यानेन, सन्त्यज्य, समेति, तत्त्वम्॥ ३६२॥

जैसे स्वर्ण में किसी अन्य धातु के मिल जाने से स्वर्ण के यथार्थ गुण नष्ट हो जाते हैं परन्तु यदि उसी स्वर्ण को अग्नि में अच्छे तरह से शोधा जाय तो समस्त मल को त्याग कर स्वर्ण पुन: अपना स्वाभाविक गुण प्राप्त कर लेता है वैसे ही पुरुष के मन में जो सत्त्व-रज-तम का मल है उसको ईश्वर के ध्यान द्वारा त्यागकार, शान्त होकर, अपने यथार्थ स्वरूप को पुरुष प्राप्त होता है॥३६२॥

निरन्तराभ्यासवशात्तदित्थं पक्कं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा,
तदा समाधिः सविकल्पवर्जितः स्वतोऽद्वयानन्दरसानुभावकः॥ ३६३॥

निरन्तराभ्यासवशात्, तद्, इत्थं, पक्व, मनः, ब्रह्मणि, लीयते, यदा॥
तदा, समाधिः, सविकल्पवर्जितः, स्वतः, अद्वयानन्दरसानुभावकः॥ ३६३॥

पूर्वोक्त प्रकार से जो रातदिन का अभ्यास है उससे मन परिपक्व होकर जब परब्रह्म में लीन हो जाता है तब अद्वितीय ब्रह्मानन्द रस का अनुभव करने वाला निर्विकल्प समाधि स्वतः सिद्ध होता है॥ ३६३॥

समाधिनाऽनेन समस्तवासनाग्रन्थेविनाशोऽखिल कर्मनाशः,
अन्तर्बहिः सर्वत एव सर्वदा स्वरूपविस्फूतिरयत्नतः स्यात्॥ ३६४॥

समाधिना, अनेन, समस्तवासनाग्रन्थेः, विनाशः, अखिले कर्मनाशः॥

अन्तः, बहिः, सर्वतः, एव, सर्वदा, स्वरूप विस्फूर्तिः, अयत्नतः, स्यात्॥ ३६४॥

इस निर्विकल्पक समाधि के सिद्ध होने से, सम्पूर्ण वासना की ग्रन्थि नष्ट हो जाती है, वासना का नाश होने से सब कर्मों का नाश होता है, कर्मों का नाश होने पर, विना परिश्रम के, बाहर और भीतर, सर्वत्र सभी कालों में ब्रह्मस्वरूप प्रकाशित होने लगता है॥ ३६४॥

श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि,
निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम्॥ ३६५॥

श्रुतेः, शतगुणं, विद्यात्, मननं, मननात्, अपि॥
निदिध्यासं, लक्षुगुणं, अनन्तं, निर्विकल्पकम्॥ ३६५॥

सब कर्मों को त्याग कर गुरुमुख से आत्मवस्तु का श्रवण करना उत्तम है। श्रवण से भी सौ गुणा अधिक अधिक मनन अर्थात् गुरुमुख से सुनकर अपने मन में विचार करना उत्तम है। मनन से भी लाख गुणा अधिक निदिध्यासन अर्थात् आत्मवस्तु को विचार कर, सदा चित्त में स्थित करना है। उत्तम निदिध्यासन से भी अनन्तगुण निर्विकल्पक अर्थात् चित्त में आत्म वस्तु के स्थिर होने पर पुन: चित्त को दूसरे तरफ न ले जाना केवल परब्रह्म स्वरूप ही सदा देखना यह सबसे उत्तम है॥ ३६५॥

निर्विकल्पकसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम्,

नान्यथा चलतया मनोगतेः प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत्॥ ३६६॥

निर्विकल्पकसमाधिना, स्फुटं, ब्रह्मतत्त्वं, अवंगम्यते, ध्रुवम्॥
न, अन्यथा, चलतया, मनोगतेः, प्रत्ययान्तर विमिश्रितं, भवेत्॥ ३६६॥

निर्विकल्प समाधि सिद्ध होने से निश्चित स्पष्ट ब्रह्मतत्त्व का बोध होताहै। जब तक मन की गति को चंचल होने से बाह्य वस्तुओं की प्रतीति से मिला हुआ आत्मतत्त्व रहेगा तबतक ब्रह्मज्ञान कभी उत्पन्न नहीं हो सकता॥ ३३६॥

अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सन् निरन्तरं शान्त मनाः प्रतीचि,
विध्वंसय ध्वांतमनाद्यविद्यया कृतं सदेकत्वविलोकनेन॥ ३६७॥

अतः, समाधत्स्व, यतेन्द्रियः, सन्, निरन्तरं, शान्त मनाः, प्रतीचि॥
विध्वंसय, धवांतं, अनाद्यविद्यया, कृतं, सदेकत्वापिलोकनेन॥ ३६७॥

हे शिष्य ! इसलिये तुम इन्द्रियों को अपने वश में करके, सदा शान्त मन होकर, सर्वव्यापक परब्रह्म में चित्त को स्थिर रक्खो और सच्चिदानन्द स्वरूप एक परब्रह्म को देखने से अनादि अज्ञान से उत्पन्न हुए महाअन्धकार का नाश करो॥ ३६७॥

मौन तथा वैराग्य धारण करने की आवश्यकता तथा फल

योगस्य प्रथमं दारं वाङ्निरोधोऽपरिग्रहः,
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता॥ ३६८॥

योगस्य, प्रथमं, द्वारं, वाङ्निरोधः, अपरिग्रहः॥
निराशा, च, निरीहा, च, नित्यं, एकान्तशीलता॥ ३६८॥

वाणी को रोकना अर्थात् मौन धारण करना, द्रव्य का त्याग करना, लौकिक पदार्थों की आशा का त्याग करना और चेष्टा को त्याग कर केवल एक ब्रह्म में सदा चित्त को स्थिर रखना यह सभी योग का प्रथम द्वार है॥ ३६८॥

एकान्तस्थितिरिन्द्रियोपरमणे हेतुर्दमश्चेतसः
संरोधे करणं शमेन विलयं यायादहंवासना,
तेनानन्द रसानुभूतिरचला ब्राह्मी सदा योगिनस्तस्माच्चित्त
निरोध एव सततं कार्यः प्रयत्नान्मुनेः॥ ३६९॥

एकान्तस्थितिः, इन्द्रियोपरमणे, हेतुः, दमः, चेतसः, संरोधे, करणं, शमेन, विलयं, यायात्, अहंवासेना॥
तेन, आनन्दरसानुभूतिः, अचला, ब्राह्मी, सदा, योगिनः, तस्मात्, चित्तनिरोधः, एव, सततं, कार्यः, प्रयत्नात्, मुनः॥ ३६९॥

इन्द्रियों का दमन करने एक जगह सदा स्थिर होना कारण है और इन्द्रियों को दमन कर लेना यह चित्त के स्थिर होने में कारण है, चित्त का स्थिर होने से अहंकारकी वासना नष्ट होती है। अहंकार के नाश होने से योगियों का ब्रह्मानन्दरस का निश्चल अनुभव होता है इसलिये सदा चित्त का दमन करना यही योगियों का परम साधन है॥ ३६९॥

वाचं नियच्छात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि,
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे विलाप्य शान्ति परमां भजस्व॥ ३७०॥

वांचं, नियच्छ, आत्मनि, तं, नियच्छ, बुद्धौ, धियं, यच्छ, च, बुद्धिसाक्षिणि॥
तं, च, अपि, पूर्णात्मनि, निर्विकल्प, विलाप्य, शान्ति, परमां, भजस्व॥ ३७०॥

वाणी को मन में लें करो. स्थूल आत्मा को बुद्धि में लय करो, बुद्धि को भी बुद्धि के साक्षी जीवात्मा में लय करो, जीवात्मा को भी निर्विकल्पक परिपूर्ण आत्मा में लय करके परम शान्ति को सेवन करो॥ ३७०॥

देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिरुपाधिभिः,
यैयैर्वृत्तेः समायोगस्तत्तद्भावोऽस्य योगिनः॥३७१॥

देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिः, उपाधिभिः॥
यैः, यैः, वृत्तेः, समायोगः, तत्तद्भावः, अस्य, योगिनः॥ ३७१॥

देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि जितनी उपाधि हैं इन उपाधियों में जिस जिस उपाधि के साथ योगियों की चित्तवृत्ति संयुक्त होती है वही भावना योगियों को प्राप्त होती है॥ ३७१॥

तन्निवृत्त्या मुनेः सम्यक् सर्वोपरमणं सुखम्,
संदृश्यते सदानन्दरसानुभवाविप्लवः॥ ३७२॥

तन्निवृत्त्या, मुनेः, सम्यक्, सर्वोपरमणं, सुखम्॥
संदृश्यते, सदा, आनन्दरसानुभवविप्लवः॥ ३७२॥

देह, प्राण आदि उपाधि से चित्तवृत्ति की निवृत्ति होने से सब विषयों से सुख पूर्वक वैराग्य होता है और वैराग्य होने पर सचिदानन्द रस का अनुभव होता है॥ ३७२॥

अन्तस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते,
त्यजत्यन्तर्बहिः सङ्गं विरक्तस्तु मुमुक्षया॥ ३७३॥

अन्तस्त्यागः, बहिस्त्यागः, विरक्तस्य, एव, युज्यते॥
त्यजति, अन्तः, बहिः, सङ्गं, विरक्तः, तुं, मुर्मुक्षया॥ ३७३॥

विरक्त पुरुष का ही आंतरिक और बाह्यत्याग युक्त होता है अत: विरक्त पुरुष मोक्ष की इच्छा से अन्तरीय संग और बाह्य संग दोनों को सुख से त्याग करते हैं।॥ ३७३॥

बहिस्तु विषयैः सङ्गं तथान्तरहमादिभिः,
विरक्त एव शक्नोति त्यक्तुं ब्रह्मणि निष्ठितः॥ ३७४॥

बहिः, तु, विषयैः, सङ्गं, तथा, अन्तः, अहमादिभिः,
विरक्तः, एवं, शक्नोति, त्यक्तुं, ब्रह्मणि, निष्ठितः॥ ३७४॥

विषयों के साथ जो इन्द्रियों का बाह्यसंग है और अहंकार आदि के साथ जो आन्तरीय संग है इन दोनों संगों को ब्रह्मनिष्ठ जो विरक्त है वही त्याग करनेमें समर्थ हो सक्ता है॥ ३७४॥

वैराग्यबोधौ प्ररुषस्य पक्षिवत् पक्षौ विजानीहि विचक्षण त्वम्,
विमुक्तिसौधारलताधिरोहणं ताभ्यां विना नान्यतरेण सिध्यति॥ ३७५॥

वैराग्यबोधौ, पुरुषस्य, पक्षित्, पक्षौ, विजानीहि, विचक्षण, त्वम्॥
विमुक्तिसौधागलंताधिरोहणं, ताभ्यां, विना, न, अन्यतरेण, सिध्यति॥ ३७५॥

हे शिष्य ! वैराग्य और बोध, इन दोनों को पक्षी के दोनों पंखों के समान मोक्षकामी पुरुष के पंख समझो। जिस पुरुष के वैराग्य एवं बोध, यह दोनों पक्ष विद्यमान हैं वहीं पुरुष मोक्षरूप अटारी पर नहीं चढ़ सकता॥ ३७५॥

अत्यन्तवैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढप्रबोधः,
प्रबुद्धतत्त्वस्य हि बन्धमुक्ति र्मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः॥ ३७६॥

अत्यन्तवैराग्यवतः, समाधिः, समाहितस्य, एवँ, दृढप्रबोधः॥
प्रबुद्धतत्त्वस्य, हि, बन्धमुक्तिः, मुक्तात्मनः, नित्यसुखानुभूतिः॥ ६७६॥

अत्यन्त वैराग्य युक्त पुरुष को ही निर्विकल्पक समाधि लाभ होता है। जिस मनुष्य का समाधि लाभ होता है उसी पुरुष को दृढतर बोध होता है। जिस मनुष्य को चित्त में परम बोध उत्पन्न होता है, वही पुरुष

संसार बन्धन से मुक्त होता है और जो मुक्त होता है वही सदा सुख का अनुभव करता है॥ ३७६॥

वैराग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मन स्तच्चेच्छुद्धतरात्मबोधसहितं स्वाराज्यसाम्राज्यधुक्, एतद्धारमजनमुक्तियुक्तर्यस्मात्त्वमस्मात्परं सर्वत्रास्पृहया सदात्मनि सदा प्रज्ञां कुरु श्रेयसे॥ ३७७॥

वैरोग्यात्, न, परं, सुखस्य, जनकं, पश्यामि, वश्यात्मनः,
तत्, चेत्, शुद्धतरात्मबोधसहितं, स्वाराज्यसाम्राज्यधुक्॥
एतद्, दारं, अर्जेस्रमुक्तियुवतेः, यस्मात्, त्वं, अस्मात्, परं, सर्वत्र, अस्पृहया,
सैंदात्मनि, सदा, प्रज्ञां, कुरु, श्रेयेसे॥ ३७७॥

जिस मनुष्य ने चित्तको अपने वश कर लिया उस मनुष्य के सुख का जनक वैराग्य से अधिक अन्य कुछ नहीं है । यदि वह वैराग्य शुद्ध आत्मबोध संयुक्त होता है तो स्वर्गीय राज्य का साम्राज्य सुख प्रदान करता है क्योंकि बोधयुक्त वैराग्य नितान्त मुक्तिरूप कामिनी का खुला हुआ द्वार है। इसलिये समस्त विषयों की इच्छा को त्याग कर, अपने कल्याण के लिए तुम वैराग्ययुक्त होकर सच्चिदानन्द परब्रह्म में बुद्धि को स्थिर करो॥ ३७७॥

आशां छिन्द्धि विषोपमेषु विषयेष्वेषैव मृत्योः कृतिस्त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमति मुञ्चातिदूरात्क्रियाः,

दहादावसति त्यजात्माधिषणा प्रज्ञा कुरुवात्मनि त्वं द्रष्टास्यमनोऽसि निर्द्वयपरं ब्रह्मासि यदस्तुतः॥ ३७८॥

आशां, छिन्द्धि, विषोपमेषु, विषयेषु, एषा, एव, मृत्योः, कृतिः, त्यक्त्वा, जातिकुलाश्रमेषु, अभिमति, मुञ्च, अतिदूरात्, क्रियाः॥
देहादौ, असति, त्यज, आत्माधिषणां, प्रज्ञां, कुरुष्व, आत्मनि, त्वं, द्रष्टों, असि, अमनः, असि, निर्दयपरं, ब्रह्म, असि, यद्, वस्तुतः॥ ३७८॥

विष समान विषयों की आशा का त्याग करो क्योंकि यही विषयों की आशा मृत्यु होने का उपाय है। और जाति कुल ब्रह्मचर्य आदि आश्रम इनका सबका जो अभिमान का त्याग कर यज्ञ आदि काम्यक्रिया को भी त्याग दो, अनित्य देहादि में जो आत्मबुद्धि हुई है उसका भी त्याग करो और अद्वैत परमात्मा में बुद्धि स्थिर रखो क्योंकि इन सब अनित्य वस्तुओं के तुम द्रष्टा हो। वस्तुतः अद्वितीय पर ब्रह्म तुम्ही ही हो॥ ३७८॥

चित्त के साथ परब्रह्म के लय का विषय

लक्ष्ये ब्रह्माणि मानसं दृढतरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियं स्वस्था ने विनिवेश्य निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम्,
ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्याऽनिशं ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैभृशम्॥ ३७९॥

लक्ष्ये, ब्रह्मणि, मानसं, दृढतरं, संस्थाप्य, बाह्येन्द्रियं, स्वस्थाने, विनिवेश्य, निश्चलतनुः, च, उपेक्ष्य, देहस्थितिम॥
ब्रह्मात्मैक्यं, उपेत्य, तन्मयतया, अखण्डवृत्त्या, अनिशं, ब्रह्मानन्दरसं, पिब, आत्मनि, मुदा, शून्यैः, किं, अन्यैः, भृशमे॥ ३७९॥

चित्त को अपने लक्षित परब्रह्म में अर्थात् जिसका साक्षाकार चाहते हो, उस परब्रह्म में मन को दृढ़ता पूर्वक स्थापित करो और श्रोत्र आदि बाह्य इन्द्रियों को अपने स्थान में स्थिर करके, निश्चल शरीर होकर देह धारण की उपेक्षा करो तथा जीव और ब्रह्म की एकता जानकर ब्रह्ममय अखण्ड वृत्ति से निरन्तर आत्मतत्त्व में स्थित होकर ब्रह्मानन्द रस का प्रीति पूर्वक आस्वादन किया करो और जितने शून्य पदार्थ हैं उनकी इच्छा त्याग करो॥ ३७९॥

अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कश्मलं दुःखकारणम्,
चिन्तयात्मानमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम्॥ ३८०॥

अनात्मचिन्तनं, त्यक्त्वा, कश्मलं, दुःखकारणम्॥
चिन्तये, आत्मानं, आनन्दरूपं, यद, मुक्तिकारणम्॥ ३८०॥

आत्मा से भिन्न बाह्यविषयों का चिन्तन पाप जनक है और दुःख का कारण है इसलिये विषयचिन्ता का त्याग कर तथा मोक्ष के कारण आनन्द स्वरूप आत्मा का सदा चिन्तन करो॥ ३८०॥

एष स्वयंज्योतिरशेषसाक्षी विज्ञानकोशे विलसत्यजस्रम्,

लक्ष्यं विधायैनमसद्विलक्षणमखण्डवृत्त्यात्मतयानुभावय॥ ३८१॥

एषः, स्वयंज्योतिः, अशेषसाक्षी, विज्ञानकोशे, विलसति, अजस्रम्,
लक्ष्यं, विधाय, एनं, असद्विलक्षणं, अखण्डवृत्त्या, आत्मतया, अनुभावय॥
३८१॥

यह जो स्वयं प्रकाश स्वरूप सकल पदार्थ का साक्षी विज्ञान मयकोश में निरन्तर विद्यमान और अनित्य वस्तुओं से विलक्षण व्यापक ईश्वर है इन्हीं को अखण्ड अन्तःकरण की वृत्ति से आत्मा जानकर चिन्तन करना चाहिए॥ ३८१॥

एतमच्छिन्नया वृत्त्या प्रत्ययान्तरशून्यया,
उल्लेखयन विजानीयात् स्वस्वरूपतया स्फुटम्॥ ३८२॥

एतं, अच्छिन्नया, वृत्त्या, प्रत्ययान्तरशून्यया॥
उल्लेखंयन्, विजानीयात्, स्वस्वरूपतया, स्फुटम्॥ ३८२॥

बाह्य वस्तुओं की प्रतीति से शून्य अखण्ड अन्त: करण की वृत्ति से निश्चय करता हुआ मुमुक्षु पुरुष का आत्मस्वरूप से प्रकाश रूप परब्रह्म को ध्यान करना योग्य है॥ ३८२॥

अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु संत्यजन्,
उदासीनतया तेषु तिष्ठेत् स्फुटघटादिवत्॥ ३८३॥

अत्र, आत्मत्वं, दृढीकुर्वन्, अहमादिषु, संत्यजन्॥
उदासीनतया, तेषु, तिष्ठेत्, स्फुटघटादिवत्॥ ३८३॥

इस आत्मा में आत्मत्व को दृढ़ करता हुआ और अहंकार आदि अनित्य वस्तुओं में आत्मबुद्धि को त्याग करता हुआ योगी पुरुष को देह आदि अनित्य वस्तुओं में घट पट आदि वस्तुओं के समान उदासीन होकर सदा स्थिर रहना॥ ३८३॥

विशुद्धमन्तःकरणं स्वरूपे निवेश्य साक्षिण्यव बोधमात्रे,
शनैः शनैर्निश्चलतामुपानयन् पूर्ण स्वमेवानुविलोकयेत्ततः॥ ३८४॥

विशुद्धं, अन्तःकरणं, स्वरूपे, निवेश्य, साक्षिणि, अवबोधात्रे॥
शनैः, शनैः, निश्चलतां, उपानयन्, पूर्ण, स्वं, एव, अन्, विलोकयेत्, ततः॥ ३८४॥

सर्वसाक्षी और ज्ञानस्वरूप आत्मा में विशुद्ध अन्तःकरण को लगा कर क्रम से निश्चलता को प्राप्त होने के बाद मोक्षार्थी पुरुष पूर्ण ब्रह्म से अपने को ही परिपूर्ण समझे॥ ३८४॥

देहेन्द्रियप्राणमनोहमादिभिः स्वाज्ञानक्लृप्तैरखिलैरुपाधिभिः,
विमुक्तमात्मानमखण्डरूपं पूर्ण महाकाशमिवावलोकयेत्॥ ३८५॥

देहेन्द्रियप्राणमनोहमादिभिः, स्वाज्ञानक्लृप्तैः, अखिलैः, उपाधिभिः॥
विमुक्तं, आत्मानं, अखण्डरूपं, पूर्ण, महाकाशं, इव, अवलोकयेत्॥ ३८५॥

जैसे घट रूप उपाधि रहने से घट के भीतर भी एक आकाश प्रतीत होता है और घट फूटने पर एक ही महा आकाश रह जाता है वैसे ही अपने अज्ञान से कल्पित जो देह इन्द्रिय, प्राण, मन, अहंकार आदि सम्पूर्ण उपाधि हैं, इन उपाधियों से मुक्त अखण्ड रूप परिपूर्ण आत्मा को भी जानना चाहिए॥ ३८५॥

घटकलशकुसूलसूचिमुख्यैर्गगनमुपाधिशतै विमुक्तमेकम्,
भवति न विविधं तथैव शुद्धं परमहमादिविमुक्तमेकमेव॥ ३८६॥

घटकलशकुसलसूचिमुख्यैः, गगनं, उपाधिशतैः, विमुंक्तं, एकम्,
भवति, न, विविधं, तथा, एव, शुद्धं, परं, अहमादिविमुक्तं, एक, एव॥ ३८६॥

जैसे घट, कलश और कुशूल अर्थात् विशाल अनाज भरने का मिट्टी का पात्र आदि सैंकड़ों उपाधियों के भेद होने से अकाश भी भिन्न दिखाई देता है। इन सब उपाधियों के नाश होने से जैसा एक ही महाआकाश रह जाता है वैसे अहंकार आदि अनेकों प्रकार की उपाधि होने से आत्मा भी अनेक प्रतीत होते हैं परन्तु उपाधि के नाश होने पर एक ही शुद्ध परब्रह्म विद्यमान रहता है॥ ३८६॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता मृषामात्रा उपाधयः,
ततः पूर्ण स्वमात्मानं पश्येदेकात्मना स्थितम॥ ३८७॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः, मृषामात्राः, उपाधयः॥

ततः, पूर्ण, स्वं, आत्मानं, पंश्येत्, एकात्मना, स्थितम्॥ ३८७॥

जीव ब्रह्म से लेकर तृण आदि जितनी उपाधियाँ हैं वह सब मिथ्या मात्र हैं इसलिये एकरूप से सदा स्थित परिपूर्ण रूप आत्मा को पाने में देखना चाहिए॥ ३८७॥

यत्र भ्रान्त्या कल्पितं तद्विवेके तत्तन्मात्रं नैव तस्मादिभिन्नम्,
भ्रान्तेर्नाशे भाति दृष्टाहितत्वं रज्जुस्तददिश्वमात्मस्वरूपम्॥ ३८८॥

यत्र, भ्रान्त्या, कल्पितं, तद्विविवेके, तत्, तन्मात्रं, न, एवं, तस्मात्, विभिन्नम्॥
भ्रान्तेः, नाशे, भाति, दृष्टा हितत्वं, रज्जुः, तद्वत्, विश्व, आत्मस्वरूपम्॥ ३८८॥

जिस वास्तु की जिस आधार में भ्रम से कल्पना की जाती है उस आधार का ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर वह वस्तु उसके स्वरुप के अनुसार ही दिखाई देती है जैसे दीप द्वारा रस्सी में सर्प का भ्रम नष्ट होने से यथार्थ रस्सी का स्वरूप ही दिखाई देता है वैसे ही आत्मा में भ्रान्ति से संसार की कल्पना होती है वह संसार भी आत्मस्वरूप ही है क्योंकि विवेक करने से भ्रम नष्ट होने पर विश्व भी आत्मस्वरूप ही दिखाई देता है॥३८८॥

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः,
स्वयं विश्वमिदं सर्व स्वस्मादन्यन्न किञ्चन॥ ३८९॥

स्वयं, ब्रह्मा, स्वयं, विष्णुः, स्वयं, इन्द्रः, स्वयं, शिवः॥

स्वयं, विश्व, इदं, सर्व, स्वस्मात्, अन्यत्, न, किञ्चन॥ ३८९॥

ब्रह्म ज्ञान होने पर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव, और समस्त विश्व में अपना ही स्वरुप दिखाई देता है। आत्मा से भिन्न दूसरा कुछ नहीं है॥ ३८९॥

अन्तः स्वयं चापि बहिः स्वयं च स्वयं पुरस्तात स्वयमेव पश्चात्,
स्वयं ह्यवाच्या स्वयमप्युदीच्या तथोपरिष्टात्स्वयमप्यधस्तात्॥ ३९०॥

अन्तः, स्वयं, च, अपि, बहिः, स्वयं, च, स्वयं, पुरस्तात्, स्वयं, एवं, पश्चात्॥
स्वयं, हि, अवाच्यां, स्वयं, अपि, उदीच्यां, तथा, उपरिष्टात्, स्वयं, अपि, अधस्तात्॥ ३९०॥

अन्तःकरण में भी आत्मा है, बाह्य में भी आत्मा है, आगे और पीछे भी आत्मा है तथा दाहिने-बाएं, ऊपर नीचे भी आत्मा है, इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी को सर्वत्र सदा काल में आत्मा ही दिखाई देता है आत्मा से भिन्न दूसरी कुछ अन्य वस्तु नहीं है॥ ३९०॥

तरङ्गःफेनभ्रमबुद्धदादि सर्व स्वरूपण जलं यथा तथा,
चिदेवदेहाद्यहमन्तमेतत् सर्व चिदेवैकरसं विशुद्धम्॥ ३९१॥

तरङ्गःफेनभ्रमबुद्धदादि, सर्वं, स्वरूपेण, जलं, यथा, तथा॥
चित्, एवं, देहाधहमन्तम्, एतत्, सर्व, चित, एवं, एकरसं, विशुद्धम्॥ ३९१॥

जैसे जल में तरङ्ग, फेन, भंवर और बुलबुल, यह सभी अनेक रूप से दिखाई देते हैं परन्तु जल से भिन्न नहीं हैं, जल रूप ही हैं। वैसे देह आदि अहंकार पर्यंत जितनी वस्तु दिखाई देती है वह सभी अखण्ड विशुद्ध चैतन्य स्वरूप ही हैं चैतन्य से भिन्न कुछ भी पदार्थ नहीं है॥ ३९१॥

सदेवेदं सर्व जगदवगतं वाङ्मनसयोः सतोऽन्यन्नास्त्येव प्रकृतिपरसीम्नि स्थितवतः,
पृथक् कि मृत्स्नायाः कलशघटकुम्भाधवगतं नदत्येष भ्रान्तस्त्वमहमिति मायामदिरया॥ ३९२॥

सत्, एव, इदं, सर्वं, जगत्, अवगतं, वाङ्मनसयोः, सतः, अन्यत्, न, अस्ति, एव, प्रकृतिपरसीम्नि, स्थित वतः॥
पृथक्, किं, मत्स्नायाः, कलशघटकुम्भादि, अवगतं, वदति, एषः, भ्रान्तः, त्वं, अहं, इति, मायामदिरया॥ ३९२॥

यह सम्पूर्ण जगत् सत् ब्रह्म स्वरूप ही है, ऐसा ही वचन मन से निश्चय करके सत् के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है वैसे भ्रान्त पुरुष मृत्तिका से अलग घट, कलश, कुम्भ को जानता है परन्तु वास्तव में घट, कलश, कुम्भ यह सब मृतिका स्वरुप ही है वैसे ही मायारूपी मदिरा से भ्रम को प्राप्त पुरुष की 'यह तुम हो' 'यह मैं हूँ' ऐसी भेदबुद्धि होती है। वास्तव में आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है, समस्त जगत आत्मस्वरूप ही है॥ ३९२॥

क्रियासमाभिहारेण यत्र नान्यदिति श्रुतिः,
ब्रवीति द्वैतराहित्यं मिथ्याध्यासनिवृत्तये॥ ३९३॥

क्रियासमभिहारेण, यत्र, न, अन्येत्, इति, श्रुतिः,
ब्रबीति, द्वैतराहित्यं, मिथ्याध्यासनिवृत्तये॥ ३९३॥

मिथ्या ज्ञान को दूर करने के लिये बहुत सी अद्वैतपरक श्रुतियां बार बार कहती हैं कि ब्रह्म से भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है केवल नाम मात्र ही भिन्न है॥ ३९३॥

आकाशवनिर्मलनिर्विकल्पं निःसीम निष्पन्दन निर्विकारम्,
अन्तर्बहिः शून्यमनन्यमदयं स्वयं परं ब्रह्म किमस्ति बोध्यम्॥ ३९४॥

आकाशवत्, निर्मलनिर्विकल्पं, निःसीम, निष्पन्दननिर्विकारम्॥
अन्तर्बहिःशून्यं, अनन्यं, अद्वयं, स्वयं, परं, ब्रह्म, किं, अस्ति, बोध्यम्॥ ३९४॥

आकाश के समान निर्मल, विकल्प रहित, सीमा, चेष्टा और विकार से रहित, भीतर बाहर सब और से शून्य ऐसा अद्वितीय परब्रह्म स्वयं तुम हो दूसरा बोध्य कुछ भी नहीं है॥ ३९४॥

वक्तव्यं किमु विद्यतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं ब्रह्मैतज्जगदाततं नु सकलं ब्रह्मादितीयं श्रुतिः,
ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्धमतयः संत्यक्तबाह्याः स्फुटं
ब्रह्मीभूय वसन्ति सन्ततचिदानन्दात्मनैतद्धृवम्॥ ३९५॥

वक्तव्यं, किमु, विद्यते, अत्र, बहुधा, ब्रह्म, एवं, जीवः, स्वयं, ब्रह्म, एतत्, जगत्, आततं, नु, सकलं, ब्रह्म, अद्वितीयं, श्रुतिः॥
ब्रह्म, एव, अहं, इति, प्रबुदमतयः, संत्यक्तबाह्याः, स्फुटं, ब्रह्मीभूय, वसन्ति, सन्ततचिदात्मना, एतद्, ध्रुवम्॥ ३९५॥

इस विषय में अधिक कहने से क्या प्रयोजन है? सिद्धान्त यही है कि जीव स्वयं ब्रह्म है और सम्पूर्ण जो जगत् विस्तृत हुआ है वह सब ब्रह्म ही है क्योंकि श्रुति भी कहती है कि ब्रह्म अद्वितीय है।और जिनके अंतःकरणमे परम बोध हुआ है, वह मनुष्य बाह्य विषयों को त्याग कर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी बुद्धि से ब्रह्मस्वरूप होकर सदा सच्चिदानन्द आत्मरूप से निश्चल होकर वास करते हैं॥ ३९५॥

जहि मलमयकोशेऽहंधियोत्थापिताशां प्रसभमनिलकल्पे लिङ्देहेऽपिपश्चात्,
निगमगदितकीर्ति नित्यमानन्दमूर्ति स्वयमिति परिचीय ब्रह्मरूपेण तिष्ठ॥ ३९६॥

जहि, मलमयकोशे, अहंधिया, उत्थापितांशां, प्रसभं, अनिलकल्पे, लिङ्गदेहे, अपि, पश्चात्, निगमगदितकीर्ति, नित्यं, आनन्दमूर्ति, स्वयं, इति, परिचीय, ब्रह्मरूपेण, तिष्ठं॥ ३९६॥

हे शिष्य ! इस मलमय कोश में जो यह स्थूल शरीर है, इस शरीर में अहंबुद्धि होने से जो आशा जाग्रत है प्रथम उसका त्याग करो, तथा

उसके पश्च्यात वायुसदृश जो सूक्ष्म लिंग शरीर है उसकी आशा को भी, त्याग कर नित्य आनन्दमूर्ति जो परब्रह्म है जिनकी कीर्ति को वेद गान करता है वही ब्रह्मरूप होकर सदा स्थिर रहो॥ ३९६॥

शवाकारं यावद्भजति मनुजस्तावदशुचिः परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरणव्याधिनिलयः,
यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलं तदा तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि॥ ३९७॥

शवाकारं, यावद्, भजति, मनुजः, तावद्, अशुचिः, परेभ्यः, स्यात्, क्लेशः, जननमरणव्याधिनिलयः॥
यदा, आत्मानं, शुद्धं, कलयति, शिवाकारं, अचलं, तदा, तेभ्यः, मुक्तः, भवति, हि, तद, आह, श्रुतिः, अपि॥ ३९७॥

मृतक समान इस देह को जबतक मनुष्य सेवन करता है तब तक अपवित्र रहता है और जन्म मरण व्याधि नाश आदि परम क्लेश को प्राप्त करता है।जो मनुष्य अपने को शुद्ध चैतन्य अचल शिवस्वरूप देखता है तब जन्म मरण आदि क्लेश से मुक्त होता है ऐसा ही श्रुति भी कहती है॥ ३९७॥

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः,
स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्णमदयमक्रियम्॥ ३९८॥

स्वात्मनि, आरोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः,

स्वयं, एव, परं, ब्रह्म, पूर्ण, अद्वयं, अक्रियम्॥ ३९८॥

अपने आत्मा में आरोपित जो मिथ्याज्ञान कल्पित सम्पूर्ण वस्तुएं है इन आरोपित वस्तुओं का त्याग करने से अपने ही अद्वितीय परिपूर्ण क्रिया रहित पर ब्रह्म शेष रहते हैं॥ ३९८॥

पूर्ण ब्रह्म प्रप्ति का उपदेश

समाहितायां सति चित्तवृत्तौ परात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे,
न दृश्यते कश्चिदयं विकल्पः प्रजल्पमात्रः परिशिष्यते ततः॥ ३९९॥

समाहितायां, सति, चित्तवृत्तौ, परात्मनि, ब्रह्मणि, निर्विकल्पे॥
न, दृश्यते, कश्चित्, अयं, विकल्पः, प्रजल्पमात्रः, परिशिष्यते, ततः॥ ३९९॥

जब विकल्प से रहित परमात्मा सच्चिदानन्द परब्रह्म में चित्तवृत्ति निश्चल हो जाती है तब कोई बाह्यवस्तु का विकल्प नहीं दिखाई देता। उस समय केवल वाचारम्भण अर्थात वाणी द्वारा मिथ्या प्रलाप मात्र रह जाता है॥३९९॥

असत्कल्पो विकल्पोऽयं विश्वमित्येकवस्तुनि,
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥ ४००॥

असत्कल्पः, विकल्पः, अयं, विश्व, इति, एकवस्तुनि॥

निर्विकारे, निराकारे, निर्विशेर्षे, भिदा, कुतः॥ ४००॥

एक वस्तु जो परब्रह्म है उसमें जो विश्वका विकल्प हो रहा है वह सब मिथ्या ज्ञान से कल्पित है क्योंकि निर्विकार निराकार विशेष से शून्य परब्रह्म में भेद नहीं है॥ ४००॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैकवस्तुनि,
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥ ४०१॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशन्यैकवस्तुनि,
निर्विकारे, निराकारे, निर्विशेषे, भिदा, कुत॥ ४०१॥

द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इन तीनों भावों से शून्य अर्थात् ईश्वर से भिन्न अलग कोई वस्तु रहे तो उस वस्तु का द्रष्टा ईश्वर हो सकता है और वह वस्तु दृश्य होगा और तभी ईश्वर में दर्शन क्रिया का सम्भव होगा यदि ईश्वर से भिन्न कुछ भी नहीं है तो ईश्वर किसका द्रष्टा होगा इसलिये निर्विकार, निराकार, विशेष शून्य, ईश्वर में कुछ भेद नहीं है॥ ४०१॥

कल्पार्णव इवात्यन्तपरिपूर्णैकवस्तुनि,
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥४०२॥

कल्पार्णवे, इव, अत्यन्तपरिपूर्णैकवस्तुनि॥
निर्विकारे, निरोकारे, निर्विशेषे,भिदा, कुतः॥ ४०२॥

प्रलय काल के समुद्र के समान अत्यंत परिपूर्ण जो एक वस्तु निर्विकार, निराकार, विशेष शून्य, परब्रह्मा है उसमें कुछ भेद नहीं है।॥ ४०२॥

तेजसीव तमो यत्र प्रलीनं भ्रान्तिकारणम्,
अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुतः॥४०३॥

तेजसि, इव, तमः, यत्र, प्रलीनं, भ्रान्तिकारणम्॥
अद्वितीये, परे, तत्त्वे, निर्विशेषे, भिदा, कुतः॥ ४०३॥

जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही भ्रम का कारण सम्पूर्ण अज्ञान जिस परब्रह्म में लीन हो जाता है उस अद्वितीय विशेष शून्य परब्रह्म में भेद कहा है॥ ४०३॥

एकात्मके परे तत्त्वे भेदवार्ता कथं वसेत्,
सुषुप्तौ सुखमात्रायां भेदः केनावलोकितः॥४०४॥

एकात्मके, परे, तत्वे, भेदवार्ता, कथं, वसेत्॥
सुषुप्तौ, सुखत्रायां, भेदः, केन, अवलोकितः॥ ४०४॥

एकात्मक जो अद्वितीय परब्रह्म है उसमें भेद की क्या बात हो सकती है जैसे केवल सुख मात्र का साधक जो सुषुप्ति अवस्था है उसमे किसने भेद देखा है ? अर्थात् सुषुप्ति अवस्था में सुख के अनुभव से

अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु काआभास नहीं होता तब ब्रह्मज्ञान होने पर ब्रह्म से अलग कुछ भी दिखाई नहीं देता॥ ४०४॥

नह्यास्ति विश्वं परतत्त्वबोधात्सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे,
कालत्रये नाप्यहिरीक्षितो गुणे नाम्बुबिन्दुर्मृगतृष्णिकायाम्॥ ४०५॥

न, हि, अस्ति, विश्व, परंतत्त्वबोधात्, सदात्मनि, ब्रह्मणि, निर्विकल्पे॥
कालत्रये, न, अपि, अहिः, ईक्षितः, गुण, न, हि, अम्बुबिन्दुः, मृगतृष्णकायाम्॥
४०५॥

ब्रह्म ज्ञान होने के बाद निर्विकल्प सच्चिदानन्द परमात्मा में विश्व का कुछ भी आभास नहीं होता। तीनो कालों में रज्जु में सर्प किसी ने नहीं देखा और मृगतृष्णा में जल की एक बूँद भी किसी ने नहीं देखी परन्तु केवल भ्रम के कारण रस्सी में सर्प का भी आभास होता है और मृगतृष्णा में जल भी दिखाई देता है। उसी प्रकार आत्मा में जब तक अज्ञान है तब तक संसार की सम्भावना होती है और अज्ञान दूर होने जाने पर आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता॥ ४०५॥

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः,
इति ब्रूते श्रुतिः साक्षात् सुषुप्तावनुभूयते॥ ४०६॥

मायामात्रं, इदं, 'द्वैतं, अद्वैतं, परमार्थतः॥
इति, ब्रूते, श्रुतिः, साक्षात्, सुषुप्तौ, अनुभूयते॥ ४०६॥

ईश्वर में जो द्वैत बुद्धि है वह माया कल्पित है, केवल जो अद्वैत बुद्धि है वही यथार्थ है। इसलिए सुषुप्ति अवस्था में अद्वैत का ही का आभास होता है और बहुत सी श्रुतियां भी अद्वैत को ही स्पष्ट कहती हैं॥ ४०६॥

अनन्यत्वमधिष्ठानादारोप्यस्य निरीक्षितम्,
पण्डितै रज्जुस्पार्दौ विकल्पो भ्रान्तिजीवनः॥ ४०७॥

अनन्यत्वं, अधिष्ठानात्, आरोप्यस्य, निरीक्षितम्॥
पंण्डितैः, रज्जुस्पार्दौ, विकल्पः, भ्रान्तिजीवनः॥ ४०७॥

जिस प्रकार रज्जु में आरोप्य सर्प रज्जु से भिन्न नहीं है, किन्तु रन्जु रूप ही है वैसे ही जगत का अधिष्ठान जो, ब्रह्म है उसमें जो जगत का आरोप हुआ है वह जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है। जो विकल्प बुद्धि है वह सब भ्रान्ति कल्पित है॥ ४०७॥

चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ताभावे न कश्चन,
अतश्चित्तं समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि॥ ४०८॥

चित्तमूलः, विकल्पः, अयं, चित्ताभावे, न, कश्चन॥
अंतः, चित्त, समाधेहि, प्रत्यग्रूपे, परात्मनि॥ ४०८॥

चित्त की चंचलता से ईश्वर में विकल्प बुद्धि होती है। चित्त के स्थिर होनेसे सब विकल्प नष्ट हो जाता है। इस लिये सर्व व्यापक चैतन्य

परमात्मस्वरूप ब्रह्म में चित्त को स्थिर करो, जिससे विकल्प बुद्धि का अभाव होकर केवल ब्रह्मतत्त्व ही दिखाई देता है॥ ४०८॥

किमपि सततबोधं केवलानन्दरूपं
निरुपममतिवेलं नित्यमुक्तं निरीहम्,
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्मपूर्ण समाधौ॥ ४०९॥

कि, अपि, सततबोधं, केवलानन्दरूपं,
निरुपम, अतिवेलं, नित्यमुक्तं, निरीहम,
निरवधि, गगनाभं, निष्कलं, निर्विकल्पं,
हृदि, कलयति, विद्वान्, ब्रह्म, पूर्ण, समाधौ॥ ४०९॥

सदाबोध रूप, केवलानन्दस्व रूप, उपमारहित, नित्य मुक्त, चेष्टा से रहित, निःसीम अकाश के सदृश, व्यापक और निर्मल कला से शून्य और निर्विकल्प, ऐसे परिपूर्ण परब्रह्म का विद्वान् योगी लोग समाधि अवस्था में हृदय में साक्षात् अनुभव करते हैं॥ ४०९॥

प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीतभावं
समरसमसमानं मानसम्बन्धदूरम्,
निगमवचनसिद्धं नित्यमस्मतप्रसिद्धं
हृदि कलयति विद्वान ब्रह्म पूर्ण समाधौ॥ ४१०॥

प्रकृतिविकृतिशून्यं, भावनातीतभावं,

समरसं, असमानं, मानसम्बन्धदूरम् ॥
निगमवचनसिद्धं, नित्यं, अस्मत्प्रसिद्धं,
हृदि, कलयति, विद्वान्, ब्रह्म, पूर्ण, समौधौ॥ ४१०॥

प्रकृति विकृति भाव से शून्य और मनुष्यों के विचार से अगोचर, सदा एकरस, उपमा रहित, प्रमाणों की पहुँच से परे, संसारी बन्धन से मुक्त, वेदवचनों से सिद्ध, नित्य, अस्मत् (मैं) शब्द से प्रसिद्ध ऐसे परिपूर्ण ब्रह्म का विद्वान् जन सदा समाधि में ध्यान करते हैं॥ ४१०॥

अजरममरमस्ताभाववस्तुस्वरूपं
स्तिमितसलिलराशिप्रख्यमारव्याविहीनम्
समितगुणविकारं शाश्वतं शान्तमेकं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्ण समाधौ॥ ४११॥

अजरं, अमरं, अस्ताभाववस्तुस्वरूपं,
स्तिमितसलिलरा शिप्रख्यं, आरव्याविहीनम्॥
समितगुणविकारं, शाश्वतं, शान्तं, एकं,
हृदि, कलयति, विद्वान्, ब्रह्म, पूर्ण, समाधौ॥ ४११॥

अजर, अमर, आभास शून्य, वस्तु स्वरूप. निश्चल जल समूह के सदृश, नाम रूप से रहित, गुणों के विकार से शून्य, भूत भविष्य वर्तमान इन तीनोंकालों में सदा वर्तमान, शान्तस्वरूप, अद्वितीय, ऐसे परिपूर्ण परब्रह्म का विद्वान् लोग सदा समाधि अवस्था में हृदय में साक्षात् अनुभव करते हैं॥ ४११॥

समाहितान्तःकरणः स्वरूपे विलोकयात्मानमखण्डवैभवम्,
विच्छिन्द्धि बन्धं भवगन्धगन्धितं यत्नेन पुंस्त्वं सफलीकुरुष्व॥ ४१२॥

समाहितान्तःकरणः, स्वरूपे, विलोकय, आत्मानं, अखण्डवैभवम्॥
विच्छिन्द्धि, बन्धं, भवगन्धगन्धितं, यत्नेन, पुंस्त्वं, सफलीकुरुष्व॥ ४१२॥

अपने अन्तः करण को सावधानता से आत्मस्व रूप में स्थिर करके अखण्ड वैभव युक्त परमात्मा का साक्षात्कार करो तथा संसार के गन्ध से युक्त बंधनों को काट डालो और यत्नपूर्वक अपने मनुहस्य शरीर के जन्म को सफल करो॥४१२॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सच्चिदानन्दमद्वयम्,
भावयात्मानमात्मस्थं न भूयः कल्पसेऽध्वने॥ ४१३॥

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं, सचिदानन्दं, अद्वयम्॥
भावय, आत्मानं, आत्मस्थं, न, भूयः, कल्पसे, अध्वने॥ ४१३॥

हे विद्वन् ! सम्पूर्ण उपाधियों से मुक्त, अद्वितीय, सच्चिदानन्द स्वरुप अपने शरीर में स्थित आत्मा का विचार करते रहो; इससे तुम्हे पुनः जन्म मरण के संसार चक्र में नहीं पड़ोगे॥ ४१३॥

छायेव पुंसः परिदृश्यमानमाभासरूपेण फलानुभूत्या,
शरीरमाराच्छववनिरस्तं पुनर्न संधत्त इदं महात्मा॥ ४१४॥

छाया, इव, पुंसः, परिदृश्यमानं, आभासरूपेण, फलानुभूत्या॥
शरीरं, आरात्, शववत्, निरस्तं, पुनः, न, संधत्ते, इंदं, महात्मा॥ ४१४॥

मनुष्य के छाया सदृश, आभास रूप से दृश्यमान और फल के अनुभव करने से मृतक समान इस शरीरको समझ कर महात्मा लोग त्याग कर देते हैं और फिर इस शरीर को प्राप्त नहीं होते॥४१४॥

सततविमलबोधानन्दरूपं समेत्य त्यज जडमलरूपोपाधिमेतं सुदूरे,
अथ पुनरपि नैष स्मर्यतां वान्तवस्तु स्मरणविषयभूतं कल्पते कुत्सनाय॥ ४१५॥

सततविमलबोधानन्दरूपं, समेत्य,त्यज, जडमलरूपोपाधि, एतं, सुदूरे॥
अथ, पुनः, अपि, न, एषः, स्मर्यतां, वान्तवस्तु, स्मरणविषयभूतं, कल्पते, कुत्सनाय॥ ४१५॥

अपने निर्मल, बोधरूप तथा आनन्दमय स्वरुप को प्राप्त होकर जड और मलरूप उपाधि युक्त इस शरीर का दूर से ही त्याग करो और त्याग करने पर फिर इसका स्मरण मत करो क्योंकि ऐसे वस्तुओं का स्मरण होने से भी मनुष्य निन्दित कर्म को प्राप्त होता है॥ ४१५॥

समूलमेतत्परिदह्य वह्नौ सदात्मनि ब्रह्माण निर्विकल्पे,
ततः स्वयं नित्यविशुद्धबोधानन्दात्मना तिष्ठति विदरिष्ठः॥ ४१६॥ .

सर्मूलं, एतत्, परिदह्य, बह्नौ, सदात्मनि, ब्रह्माणि, निर्विकल्पे॥
ततः, स्वयं, नित्यविशुद्धबोधानन्दात्मना, तिष्ठति, विद्वरिष्ठः॥ ४१६॥

श्रेष्ठ विद्वान् महात्माजन, निर्विकल्प, सत्य आत्मस्वरूप, परब्रह्म रूप अग्नि में, स्थूल सूक्ष्म जड स्वरुप इस संसार का समूल रूप भस्म करके, स्वयं नित्य विशुद्ध बोध आनन्दस्वरूप होकर सदा स्थिर रहते हैं॥ ४१६॥

प्रारब्धसूत्रग्रथितं शरीरं प्रयातु वा तिष्ठतु गोरिवस्रक्,
न तत्पुनः पश्यति तत्त्ववेत्ता नन्दात्मनि ब्रह्मणि लीनवृत्तिः॥ ४१७॥

प्रारब्धसूत्रग्रथितं, शरीरं, प्रयातु, वा, तिष्ठतु, गोः, इव, स्रक्॥
न, तत्, पुनः, पश्यति, तत्त्ववेत्ता, आनन्दात्मनि, ब्रह्मणि, लीनवृत्तिः॥ ४१७॥

गौ अपने गले में पड़ी हुई माला के रहने अथवा गिर जाने की ओर जैसे कुछ भी ध्यान नहीं देती, उसी ओरकर प्रारब्ध की डोरी में पिरोया हुआ यह शरीर रहे अथवा न रहे, इस प्रकार जिनकी चित्तवृत्ति आनन्दात्मक परब्रह्म में लीन हो गयी है, वह निन्दित वस्तु समझ कर फिर इस नश्वर शरीर की ओर दृष्टि नहीं करते॥ ४१७॥

अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः,
किमिच्छन कस्य वाहेतोदेहं पुष्णाति तत्त्ववित्॥ ४१८॥

अखण्डानन्दं, आत्मानं, विज्ञाय, स्वस्वरूपतः,

किं, इच्छन्, कस्य, वा, हेतोः, देह, पुष्णाति, तत्त्ववित्॥ ४१८॥

अखण्ड आनन्दस्वरूप आत्मा को ही अपना स्वरुप जानकर, ब्रह्मज्ञानी पुरुष, किस वस्तु की इच्छा और किस कारण से इस देह का पालन करते हैं॥ ४१८॥

संसिद्धस्य फलं त्वेतज्जीवन्मुक्तस्य योगिनः,
बहिरन्तः सदानन्दरसास्वादनमात्मनि॥ ४१९॥

संसिद्धस्य, फलं, तुं, एतत्, जीवन्मुक्तस्य, योगिनः॥
बहिः, अन्तः, सदा, आनन्दरसास्वादनं, आत्मनि॥ ४१९॥

आत्म ज्ञान में सम्यक सिद्धि प्राप्त, जीवन मुक्त योगी होने का यही फल है कि अपने आत्मा के नित्यानंद रस का अपने में आस्वादन किया करे॥ ४१९॥

वैराग्य तथा ज्ञान, अज्ञान का फल

वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम्,
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषेवोपरतेः फलम्॥ ४२०॥

वैराग्यस्य, फलं, बोधः, बोधस्य, उपरतिः, फलम्,
स्वानन्दानुभवात्, शान्तिः, एषा, एंव, उपरतेः, फलम्॥ ४२०॥

वैराग्य होने का फल बोध होना है और बोध होने का फल उपरति होना अर्थात् विषय से इन्द्रियों का वैराग्य होना है, उपरति का फल यही है कि आत्मानन्द रस के अनुभव से चित्त शांत हो जाए॥ ४२०॥

यद्युत्तरोत्तराभावः पूर्वपूर्व तु निष्फलम्,
निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः॥ ४२१॥

यदि, उत्तरोत्तराभावः, पूर्वपूर्व, तुं, निष्फलम्,
निवृत्तिः, परमा, तृप्तिः, आनन्दः, अनुपमः स्वतः॥ ४२१॥

यदि वैराग्य का मुख्य फल बोध ही प्राप्त नहीं हुआ तो वैराग्य होना निष्फल है और बोध का फल उपरति न हुआ तो बोध भी होना निष्फल है। विषय से निवृत्ति होने पर परमतृप्ति होती है और तृप्ति प्राप्त होने पर साक्षात् अनुपम आनन्द प्राप्त होता है॥ ४२१॥

दृष्टदुःखेष्वनुद्वेगो विद्यायाः प्रस्तुतं फलम्॥
यत्कृतं भ्रान्तिवेलायां नाना कर्म जुगुप्सितम्,
पश्चान्नरो विवेकेन तत्कथं कर्तुमर्हति॥ ४२२॥

दृष्ट दुःखेषु, अनुद्वेगः, विद्यायाः, प्रस्तुतं, फलम्
यत्, कृतं, भ्रान्तिवेलायां, नाना, कर्म, जुगुप्सितम्॥
पश्चात्, नरः, विवेकेन, तत्, कथं, कर्तुं, अर्हति॥ ४२२॥

प्रारब्धवश प्राप्त हुए जो अनेकों प्रकार के दुःख हैं उन दुःखों से चित्त में उद्वेग न होना, यह आत्मज्ञान का स्वाभाविक फल है। अज्ञान दशा में अनेकों प्रकार का जो निन्दित कर्म किया है, उनका ज्ञान हो जाने पर वह कर्म कैसे करेगा॥ ४२२॥

विद्याफलं स्यादसतो निवृत्तिः प्रवृत्ति रज्ञानफलं तदीक्षितम्,
तज्ज्ञाज्ञयोन्मृगतृष्णिकादौ नो चेद्विदां दृष्टफलं किमस्मात्॥ ४२३॥

विद्याफलं, स्यात्, असतः, निवृत्तिः, प्रवृत्तिः, अज्ञानफलं, तत्, ईक्षितम्,
तज्ज्ञायोः, यत्, मृगतृष्णिकादौ, नो, चेत्, विदां, दृष्टफलं, किं, अस्मात्॥ ४२३॥

असत् वस्तुओं की निवृत्ति होना यही ज्ञान होने का फल है और असत् वस्तुओं में प्रवृत होना यही अज्ञान का प्रसिद्ध फल है। यह जो भ्रमात्मक ज्ञान तथा यथार्थज्ञान है इन दोनों ज्ञानो का दृष्ट फल मृग तृष्णा आदि में विद्वानों को प्रसिद्ध है। अर्थात् भ्रमात्मक ज्ञान होने से मृग तृष्णा में असत् जल दिखाई देता है और यथार्थ ज्ञान होनेपर वह असत् जल निवृत्त हो जाता है। इससे अधिक दृष्टफल क्या है॥ ४२३॥

अज्ञानहृदयग्रन्थेविनाशो यद्यशेषतः,
अनिच्छविषयः किंनु प्रवृत्तेः कारणं म्वतः॥ ४२४॥

अज्ञानहृदयग्रन्थेः, विनाशः, यदि, अशेषतः॥
अनिच्छोः, विषयः, किं,नु, प्रवृत्तेः, कारणं, स्वतः॥ ४२४॥

अज्ञानरूप हृदयग्रन्थि का यदि निर्मूल नाश हो जाए तो इच्छा रहित पुरुष की स्वतः संसार में प्रवृत्ति होने का क्या विषय कारण होगा अर्थात् अज्ञान का नाश होने पर कोई विषय पुनःप्रवृत्ति में कारण नहीं होगा॥ ४२४॥

वासनानुदयों भोग्य वराग्यस्य तदावधि:,
अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावाधिः॥ ४२५॥
लीनवृत्तेरनुत्पत्तिमर्यादोपरतेस्तु सा,

वासनानुदयः, भोग्ये, वैराग्यस्य तदा, अवधिः॥
अहं भावोदयाभावः, बोधस्य, परमविधिः॥ ४२५॥
लीनवृत्तेः, अनुत्पत्तिः, मर्यादा, उपरतेः, तु, सा॥

भोग्यवस्तुओं में वासना का उदय न होना यही वैराग्य की अवधि है और अहंकार का उदय न होना यह ज्ञान होने की परम अवधि है॥ ४२५॥

ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त जीवन्मुक्त के लक्षण

ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त

ब्रह्माकारतया सदा स्थिततया निर्मुक्तबाह्यार्थधी
रन्यावेदितभोग्यभोगकलनो निद्रालुबहालवत्,

स्वप्ना लोकितलोकवजगदिदं पश्यन् कच्चिल्लब्धधीरास्ते
कश्चिदनन्तपुण्यफलभुग्धन्यः स मान्यो भुवि॥ ४२६॥

ब्रह्माकारतया, सदा, स्थिततया, निर्मुक्तबाह्यार्थधीः,
अन्यावेदितभोग्यभोगकलनः, निद्रालुवत्, बालवत्॥
स्वप्ना लोकितलोकवत्, जगद, इदं, पश्यन्, क्वचित्,
लब्धधीः, आस्ते,
कश्चित्, अनन्त पुण्यफलभुक्, धन्यः, सः,मान्यः, भुवि॥ ४२६॥

ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होने के कारण और सदा निश्चल रहने से जिसने बाह्य विषयों की बुद्धि को त्याग दिया है और दूसरों के द्वारा निवेदित किए हुए भोग वस्तुओं का सेवन, निद्रित पुरुष के समान अथवा बालक के समान ग्रहण करता है तथा स्वन में देखे हुए मिथ्या संसार के समान इस दृश्य जगत को भी मिथ्या समझता हुआ स्थिर रहता है वह अनन्त पुण्य का फलभागी, कोई ज्ञानी महापुरुष ही इस पृथ्वी में धन्य है और सबका माननीय है।॥ ४२६॥

स्थित्तप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्नुते,
ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रियः॥ ४२७॥

स्थितप्रज्ञः, यतिः, अयं, यः, सदा, आनन्दं, अश्नुते॥
ब्रह्मणि, एवं, विलीनात्मा, निर्विकारः, विनिष्क्रियः॥ ४२७॥

जो यति पुरुष परब्रह्म में आत्मा को लीन करके विकार और क्रिया से रहित होकर सदा आनन्द को प्राप्त होता है वही पुरुष स्थितप्रज्ञ कहा जाता है॥ ४२७॥

ब्रह्मात्मनोः शोधितयोरेकभावावगाहिनी,
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते॥
सुस्थितासौ भवेद्यस्य स्थितप्रज्ञः स उच्यते॥ ४२८॥

ब्रह्मात्मनोः, शोधितयोः, एकभावावगाहिनी॥
निर्विकल्पा, च, चिन्मात्रा, वृत्तिः, प्रज्ञा, इति, कथ्यते॥
सुस्थिता, असौ, भवेत्, यस्य, स्थितप्रज्ञः, सः, उच्यते॥ ४२८॥

'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से शोभित जीवात्मा और परब्रह्म में विकल्प बुद्धिसे रहित एकत्व भाव को अवगाहन करनेवाली जो चैतन्य मात्रा वृत्ति है, उसी का नाम प्रज्ञा है॥ ४२८॥

यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तरः,
प्रपञ्चो विस्मृतप्रायः स जीवन्मुक्त इष्यते॥ ४२९॥

यस्य, स्थिता, भवेत्, प्रज्ञा, यस्य, आनन्दः, निरन्तरः॥
प्रपञ्चः, विस्मृतप्रायः, सः, जीवन्मुक्तः, इष्यते॥ ४२९॥

जीवब्रह्म का एकत्वभावको प्राप्त कराने वाली चैतन्य मात्रा प्रज्ञा जिसकी सुस्थिर है वह पुरुष स्थित प्रज्ञ कहलाता है। जिसकी प्रज्ञा

सुस्थिर है वही पुरुष निरन्तर आनन्द भोगता है और जिसका प्रपञ्च जगत् विस्मृत हो जाता है वही पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है॥ ४२९॥

लीनधीरपि जागर्ति योजाग्रद्धर्मवर्जितः,
बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते॥ ४३०॥

लीनधीः, अपि, जागर्ति, यः, जाग्रद्धर्मवर्जितः॥
बोधः, निर्वासनः, यस्य, सः, जीवन्मुक्तः, इष्यते॥ ४३०॥

अपनी बुद्धि को परब्रह्म में लीन करने पर भी जो मनुष्य जाग्रत् धर्म से वर्जित है अर्थात् संसारी क्रिया से रहित है वही पुरुष जागरण करता है। और जिस पुरुष का बोध बाह्य वासना से रहित है वही जीवन्मुक्त है॥ ४३०॥

शान्तसंसारकलनः, कलावानपि निष्कलः,
यस्य चित्तं विनिश्चिन्तं स जीवन्मुक्त इष्यते॥ ४३१॥

शान्तंसंसारकलनः, कलावान्, अपि, निष्कलः॥
यस्य, चित्तं, विनिश्चिन्त, सः, जीवन्मुक्तः, इष्यते॥ ४३१॥

जिसकी संसारवासना शान्त हो गई है, जो कलवान होकर भी कलाहीन है अर्थात व्यवहार दृष्टि में विकार वान प्रतीत होता हुआ भी निरंतर को निरंतर अपने निर्विकार स्वरुप से स्थित रहता है तथा

जिसका चित्त चिन्ता से रहित है वही पुरुष जीवन्मुक्त कहा जाता है।॥ ४३१॥

वर्तमानेऽपि देहेऽस्मिंश्छायावदनुवर्तिनि,
अहन्ताममताभावो जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ ४३२॥

वर्तमाने, अपि, देहे, अस्मिन्, छायावत्, अनुवर्तिनि,
अहन्ताममताभावः, जीवन्मुक्तस्य, लक्षणम्॥ ४३२॥

प्रारब्ध कर्म के अनुसार शरीर के विद्यमान रहते हुए भी जिसका अहंकार और ममता छाया के सदृश है। अर्थात् अपना वशीभूत होकर क्षीणभाव को प्राप्त है वही जीवन्मुक्त है॥ ४३२॥

अतीताननुसन्धानं भविष्यदविचारणम्,
औदासीन्यमपि प्राप्तं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ ४३३॥

अंतीताननुसंधानं, भविष्यदविचारणम्॥
औदासीन्यं, अपि, प्राप्तं, जीवन्मुक्तस्य, लक्षणम्॥ ४३३॥

अतीत का पुन: अनुभव नहीं करना अर्थात् पश्चात्ताप नहीं करना तथा भविष्य की चिंता नहीं करना और वर्तमान में प्राप्त वस्तुओं मे उदासीनता अर्थात् आसक्त नहीं रहना, यह जीवन्मक्त पुरुष का लक्षण है॥ ४३३॥

गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन् स्वभावेन विलक्षणे,
सर्वत्र समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ ४३४॥

गुणदोषविशिष्टे, अस्मिन्, स्वभावेन, विलक्षणे॥
सर्वत्र, समदर्शित्वं, जीवन्मुक्तस्य, लक्षणम्॥ ४३४॥

गुण और दोष से संयुक्त और स्वभाव से विलक्षण जो यह संसार है इसमें सम दृष्टि रखना यह जीवन्मुक्त पुरुष का लक्षण है॥ ४३४॥

इष्टानिष्टार्थसंप्राप्तौ समदर्शितयात्मनि,
उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ ४३५॥

इष्टानिष्टार्थसंप्राप्तौ, समदर्शितया, आत्मनि॥
उभयत्र, अविकारित्वं, जीवन्मुक्तस्य, लक्षणम्॥ ४६५॥

जिस पुरुष का इष्ट वस्तु के प्राप्त होने से चित्त में न हर्ष हो तथा अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने से दुःख भी न हो। अपितु दोनो अवस्थाओं में समदृष्टि होने से जिसकी आत्मा में किसी तरह का विकार उत्पन्न न हुआ हो वह पुरुष जीवन्मुक्त है॥ ४३५॥

ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया यतेः,
अन्तर्बहिरविज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ ४३६॥

ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया, यतेः॥

अन्तः, बहिः, अविज्ञानं, जीवन्मुक्तस्य, लक्षणम्॥ ४३६॥

ब्रह्मानन्द रस के आस्वादन में आसक्तचित्त होने से बाह्य और अन्तरीय वस्तु का ज्ञान न होना केवल एक ब्रह्मानन्दरस के ही आस्वादन में लीन रहना यह जीवन्मुक्त पुरुष का लक्षण है॥ ४३६॥

देहेन्द्रियादौ कर्तव्ये ममाहंभाववर्जितः,
औदासीन्येन यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४३७॥

देहेन्द्रियादौ, कर्तव्ये, ममाहंभाववर्जितः॥
औदासीन्येन, यः, तिष्ठेत्, सः, जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४३७॥

देह तथा इन्द्रियों में तथा कर्त्तव्य में जितनी वस्तु हैं इन सबमें ममता और अहंकार से रहित होकर उदासीनता से जो सदा स्थिर रहता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है॥ ४३७॥

विज्ञात आत्मनो यस्य ब्रह्मभावः श्रुतेर्बलात्,
भवबन्धविनिर्मुक्तः स जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४३८॥

विज्ञातः, आत्मनः, यस्य, ब्रह्मभावः, श्रुतेः, बलात्॥
भवबन्धविनिर्मुक्तः, सः, जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४३८॥

श्रुतियों को देखने और विचार करने से जीवात्मा में ब्रह्मभावका ज्ञान जिसको हुआ अर्थात जीव ब्रह्म की एकता हुई। वही पुरुष भवबन्ध से विमुक्त होकर जीवन्मुक्त कहा जाता है ।॥ ४३८॥

देहेन्द्रियेष्वहंभाव इदंभावस्तदन्यके,
यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त इष्यते॥ ४३९॥

देहेन्द्रियेषु, अहंभावः, इदंभावः, तदन्यके॥
यस्य, नो, भर्वतः, क्व, अपि, सः, जीवन्मुक्तः, इष्यते॥ ४३९॥

देह इन्द्रियों में अहंभाव और अन्य वस्तुओं में इदं भाव ये दोनों भावना जिस पुरुष को कभी किसी वस्तु में नहीं होती है वह जीवन्मुक्त कहलाता है॥ ४३९॥

न प्रत्यग्ब्रह्मणोंर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः,
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४४०॥

न, प्रत्यग्ब्रह्मणोः, भेदं, कदा, अपि,ब्रह्मसर्गयोः,
प्रज्ञया, यः, विजानाति, सः, जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४४०॥

प्रत्यक्ष सर्वव्यापक ब्रह्म से और ब्रह्मा की सृष्टि में कभी भेद नहीं है, जो ऐसा जानता है वह जीवन मुक्त है॥ ४४०॥

साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन् पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः,

समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्तलक्षणः॥४४१॥

साधुभिः, पूज्यमाने, अस्मिन्, पीडयमाने, अपि, दुर्जनैः,
समभावः, भवेत्, यस्य, सः, जीवन्मुक्तलक्षणः॥ ४४१॥

साधुओं द्वारा इस देह की पूजा होने से और दुर्जनों द्वारा पीडित होने पर भी जिस मनुष्य का अन्तःकरण दोनों अवस्थाओं में समभाव को प्राप्त रहता है अर्थात् सज्जनों से सत्कार पाकर भी न तो प्रसन्न होता है और न ही दुर्जनों द्वारा दुःख देने से दुखी होता है। वह मनुष्य जीवन मुक्त कहा जाता है॥ ४४१॥

यत्र प्रविष्टा विषयाः परेरिता नदीप्रवाहा इव वारिराशौ,
लीयन्ति सन्मात्रतया न विक्रियामुत्पादयन्त्येष यतिर्विमुक्तः॥ ४४२॥

यत्र, प्रविष्टाः, विषयाः, परेरिताः, नदीप्रवाहाः, इव, वारिराशौ॥
लीयन्ति, सन्मात्रतया, न, विक्रिया, उत्पादयन्ति, एषः, यतिः, विमुक्तः॥
४४२॥

जैसे नदियों के प्रवाह से जल समुद्र में जाकर समुद्र में ही लीन हो जाता है और समुद्र वृद्धि को प्राप्त नहीं करता वैसे ही दूसरों द्वारा दिए हुए विषय भोग्य वस्तु जिस मनुष्य के अन्तःकरण में किसी तरह का विकार उत्पन्न नहीं करते वही यतिश्रेष्ठ जीवन्मुक्त है॥ ४४२॥

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्व न संसृतिः,
अस्ति चेन्न स विज्ञातब्रह्मभावो बहिर्मुखः॥ ४४३॥

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य, यथापूर्व, न, संसृतिः॥
अस्ति, चेत्, न, सः, विज्ञतिब्रह्मभावः, बहिर्मुखः॥ ४४३॥

जिस मनुष्य ने ब्रह्मतत्त्व को जान लिया है उस पुरुष को पूर्वकाल सदृश फिर संसार की आस्था नहीं रहती और यदि फिर भी संसार की आस्था नहीं रहे तो यही समझना चाहिए की वह तो संसारी है ही उसे ब्रह्मतत्व का ज्ञान ही नहीं हुआ॥ ४४३॥

प्राचीनवासनावेगादसौ संसरतीति चेत्,
न सदेकत्वविज्ञानान्मन्दीभवति वासना॥ ४४४॥

प्राचीनवासनावेगात्, असौ, संसरति, इति, चेत्॥
न, सदेकत्वविज्ञानात्, मन्दीभवति, वासना॥ ४४४॥

यदि कहो कि पूर्ण वासना के वेग से ब्रह्म ज्ञानी पुरुष को भी संसार प्राप्त होता है तो ऐसी बात नहीं है क्योंकि सद् ब्रह्म का एकत्व ज्ञान होने से वासना क्षीण हो जाती है॥ ४४४॥

अत्यन्तकामुकस्यापि वृत्तिःकुण्ठति मातरि,

तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिणः॥ ४४५॥

अत्यन्तकामुकस्य, अपि, वृत्तिः, कुण्ठति, मातरि,
तथा, एंव, ब्रमणि, ज्ञाते, पूर्णानन्दे, मनीषिणः॥ ४४५॥

जिस प्रकार अत्यन्त कामुक पुरुष की कामचेष्ठा भी माता को देखकर कुण्ठित हो जाती है उसी प्रकार पूर्णानन्द ब्रह्म का ज्ञान होने पर विद्वानों की पूर्ववासना कुण्ठित हो जाती है॥ ४४५॥

निदिध्यासनशीलस्य बाह्यप्रत्यय ईक्ष्यते,
ब्रवीति श्रुतिरेतस्य प्रारब्धं फलदर्शनात्॥ ४४६॥

निदिध्यासनशीलस्य, बाह्येप्रत्ययः, ईक्ष्यते॥
ब्रवीति, श्रुतिः, एतस्य, प्रारब्धं, फलदर्शनात्॥ ४४६॥

प्रारब्धकर्म के फल देखने से ज्ञात होता है और श्रुति भी कहती है कि निदिध्यासनशील अर्थात् आत्मवस्तु के विषय में विचार करनेवाले यति पुरुष के अंत: करण में बाह्यपदार्थ की प्रतीति बनी रहती है॥ ४४६॥

सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते,
फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित्॥ ४४७॥

सुखाद्यनुभवः, यावत्, तावत्, प्रारब्धं, इष्यते॥

फलो दयः, क्रियापूर्वः, निष्क्रियः, न, हि, कुत्रचित्॥ ४४७॥

जब तक सुख-दुःख आदि का अनुभव रहता है तब तक प्रारब्ध कर्म बना रहता है। पूर्व में क्रिया करने से तो फल का उदय होता है बिना क्रिया के कभी फल की सिद्धि नहीं होती॥ ४४७॥

अहं ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम्,
सञ्चितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत्॥ ४४८॥

अहं, ब्रह्मै, इति, विज्ञानात्, कल्पकोटिशतार्जितम्॥
सञ्चितं, विलयं, याति, प्रबोधात्, स्वप्नकर्मवेत्॥ ४४८॥

'मैं ब्रह्म हीं ऐसा ज्ञान होते ही करोड़ों कल्पों के संचित कर्म उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार जागने पर स्वप्नावस्था के कर्म नष्ट हो जाते हैं॥ ४४८॥

यत्कृतं स्वप्नवेलायां पुण्यं वा पापमुल्बणम्,
सुप्तोत्थितस्य किं तत्स्यात्स्वगाय नरकाय वा॥ ४४९॥

यत्, कृतं स्वप्नवेलायां, पुण्यं, वा, पापं, उल्बणम्,
सुप्तोत्थितस्य, किं, तत्, स्यात्, स्वर्गाय, नरकाय, वा॥ ४४९॥

जैसे स्वप्न अवस्था में पुण्य अथवा घोर पाप किया उस पुण्य पाप से जागने पर न स्वर्ग होता है न नरक होने की सम्भावना होती है वैसे

ही पूर्व अवस्था में किए गए कर्म का फल ब्रह्मात्मैक्यज्ञान दशा में कुछ भी नहीं होता॥ ४४९॥

स्वमसङ्गमुदासीनं परिज्ञाय नभो यथा,
न श्लिष्यति च यत्किञ्चित्कदाचिद्भाविकर्मभिः॥ ४५०॥

स्वं, असङ्गं, उदासीनं, परिज्ञाय, नभः,तथा॥
न, श्लिष्यति, च, यत, किञ्चित, कदाचित, भाविकर्मभिः॥ ४५०॥

जैसे आकाश किसी वस्तु में आसक्त नहीं है परन्तु वस्तुओं में उदासीन रीति से व्याप्त है। वैसे ही जो मनुष्य अपने को संगरहित उदासीन जानकर स्थिर है वह मनुष्य कभी किसी भावी कर्म से लिप्त नहीं होता॥ ४५०॥

न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते,
तथात्मोपाधियोगेन तद्धर्मैनेर्व लिप्यते॥ ४५१॥

न, नभः, घटयोगेन, सुरांगन्धेन, लिप्यते॥
तथा, आत्मा, उपाधियोगेन, तद्धर्मैः, न, एवे, लिप्यते॥ ४५१॥

जैसे घडे के सम्बन्ध से घड़े में राखी हुई मदिरा की गंध से आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं होता वैसे ही अनेकों प्रकार की उपाधि के योग होने से आत्मा उपाधि का धर्म से लिप्त नहीं होता॥ ४५१॥

ज्ञानोदयात्पुरारब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति,
अदत्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत्॥ ४५२॥

ज्ञानोदयात्, पुरा, आरब्धं, कर्म, ज्ञानात्, ने, नश्यति॥
अदत्वा, स्वफलं, लक्ष्यं, उद्दिश्य, उत्सृष्टबाणवत्॥ ४५२॥

ज्ञान होने के पहले जो कर्म किया गया। वह कर्म विना अपना फल दिये समान ज्ञान से नष्ट नहीं होता जैसे किसी एक लक्ष्य पर बाण छोडा जाय तो वह बाण लक्ष्य को बेधे बिना मध्य में नहीं रुकता॥ ४५२॥

व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाणः पश्चात्तु गोमतौ,
न तिष्ठति छिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम्॥ ४५३॥

व्याघ्रबुद्ध्या, विनिर्मुक्तः, बाणः, पश्चात्, तु, गोमतौ॥
ने, तिष्ठति, छिनत्ति, एवं, लक्ष्यं, वेगेन, निर्भरम्॥ ४५३॥

जैसे व्याघ्र समझ कर गौ की ओर छोड़ा गया बाण, यह जान लेने पर भी कि उसका लक्ष्य व्याघ्र नहीं गौ है बीच में नहीं रुकता और लक्ष्य को घात करता ही है वैसे ही अज्ञान दशा में जो कर्म किया जाए उस कर्म का फल सम्यक ज्ञान होने पर भी भोगना ही पड़ता है पडेगा॥ ४५३॥

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलयः प्रासंचितागामिनाम्, ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थितास्तेषां तत् त्रितयं न हि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम्॥ ४५४॥

प्रारब्धं, बलवत्तरं, खलु, विदा, भोगेन, तस्य, क्षयः, सम्यग्ज्ञानहुताशनेन, विलयः, प्राक्संचितागामिनाम्॥
ब्रह्मात्मैक्यं, अवेक्ष्ये, तन्मयतया, ये, सर्वदा, संस्थिताः, तेषां, तत्, त्रितयं, मैं, हि, क्वचित्, अपि, ब्रह्म, एवं, ते, निर्गुणम्॥ ४५४॥

ज्ञान तीन प्रकार का है सामान्यज्ञान, सम्यक ज्ञान और ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान, कर्म भी तीन प्रकार का है संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म, आगामी कर्म, इन सभी में अज्ञान दशा में तीनों कर्म का फल भोगना पडता है। सामान्य ज्ञान होने पर भी बलवान् जो प्रारब्ध कर्म है उसका नाश भोगने से ही होता है। और सम्यक् ज्ञान रूप अग्नि के प्रज्वलित होने से पूर्व संचित कर्म तथा, आगामी कर्म का भी लय होता है जो मनुष्य ब्रह्मात्म ज्ञान होने से ब्रह्ममय होकर सदा स्थिर रहते है उन ब्रह्म ज्ञानियों का तीनों प्रकार का कर्म नष्ट हो जाता है किसी प्रकार कर्म फलको भोगना नहीं पडता क्योंकि वह केवल निर्गुण ब्रह्म ही है॥ ४५४॥

उपाधितादात्म्यविहीनकेवलबह्मात्मनैवात्मानि तिष्ठतो मुनेः,
प्रारब्धसद्भावकथा न युक्ता स्वप्नार्थसंबन्धकथेव जाग्रतः॥४५५॥

उपाधितादात्म्यविहीनकेवलब्रह्मात्मना, एवं, आत्मनि, तिष्ठतः, मुनेः॥

प्रारब्धसद्भावकथा, न, युक्ता, स्वप्नार्थसंबन्धकथा, इव, जाग्रतः॥ ४५५॥

जैसे स्वप्न समय में जो विषयों का इन्द्रियों से संबन्ध होता है वह संबन्ध जागने पर नष्ट हो जाता है वैसे देह आदि उपाधियों का तादात्म्य भाव से निवृत्त होकर केवल परब्रह्म आत्मा की एकत्व बुद्धि से सुस्थिर मुनि लोगों के प्रारब्ध कर्म के फल का सम्बन्ध कहना युक्त नहीं है अर्थात् प्रारब्ध कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता॥ ४५५॥

न हि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे देहोपयोगिन्यपि च प्रपञ्चे,
करोत्यहन्तां ममतामिदन्तां किन्तु स्वयं तिष्ठति जागरेण॥ ४५६॥

न, हि, प्रबुद्धः, प्रतिभासदेहे, देहोयोगिनि, अपि, च,
प्रपञ्चे, करोति, अहन्तां, ममता, इदन्तां, किन्तु, स्वयं, तिष्ठति, जागरेण॥ ४५६॥

सम्यक् ज्ञानी पुरुषों को कर्म फल भोगना नहीं पडता इसका कारण यह है कि, ज्ञानी पुरुष प्रतिभास रुपी इस देह में अहंबुद्धि नहीं रखते और इस देह में उपकारक जितना विषय प्रपञ्च है उसमें ममता और इदंता अर्थात् 'यह मेरा है', 'वह तेरा है', ऐसी बुद्धि को छोडकर केवल आत्मस्वरूप में जागरण करते हैं॥ ४५६॥

न तस्य मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा न संग्रहस्तजगतोऽपि दृष्टः,
तत्रानुवृत्तिर्यदि चेन्मृषार्थे न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम्॥ ४५७॥

न, तस्य, मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा, न, संग्रहः, तज्जगतः, अपि, दृष्टः॥
तत्र, अनुवृत्तिः, यदि, चेत्, मेषार्थे, न, निद्रया, मुक्तः, इति, इष्यते, ध्रुवम्॥ ४५७॥

मिथ्या विषयों की प्रार्थना, उनको पाने की इच्छा ब्रह्म ज्ञानी मनुष्य नहीं करते और उनके द्वारा मिथ्या जगत् का संग्रह भी नहीं देखा गया। यदि उस मिथ्या पदार्थ मे उनकी अनुवृत्ति होती अर्थात यथार्थ बुद्धि होती तो निद्रा से मुक्त मनुष्य भी स्वप्नावस्था के विषयों को स्थिर मानते अर्थात् जैसे स्वप्न में देखा गया पदार्थ जागने पर मिथ्या दिखाई देता है वैसे जगत भी ज्ञानी के लिए मिथ्या है॥ ४५७॥

तत्परे ब्रह्मणि वर्तमानः सदात्मना तिष्ठति नान्यदीक्षते,
स्मृतिर्यथा स्वप्नविलोकितार्थे तथा विदः प्राशनमोचनादौ॥ ४५८॥

तत्, परे, ब्रह्मणि, वर्तमानः, सदात्मना, तिष्ठति, न, अन्यत्, ईक्षते॥
स्मृतिः, यथा, स्वप्नविलोकितार्थे, तथा, विदः, प्राशनमोचनादौ॥ ४५८॥

परब्रह्म में वर्तमान होकर आत्मस्वरूप से जो ज्ञानी सदा स्थिर है उनको ब्रह्म से भिन्न दूसरा कुछ नहीं दिखाई देता जैसे स्वनावस्था का देखा गए पदार्थ का स्मरण जागने पर होता है वैसे ही ज्ञान दशा में ज्ञानी को जगत् का मिथ्या स्मरण होता है॥ ४५८॥

कर्मणा निर्मितो देहः प्रारब्धं तस्य कल्प्यताम्,
नानादेरात्मनो युक्तं नैवात्मा कर्मनिर्मितः॥४५९॥

कर्मणा, निर्मितः, देहः, प्रारब्धं, तस्य, कल्प्यताम्॥
न, अनादेः, आत्मनः, युक्तं, न, एव, आत्मा, कर्मनिर्मितः॥ ४५९॥

कर्म से ही देह का निर्माण होता है प्रारब्ध भी देह में ही रहता है। अनादि आत्मा कर्म में निर्माण युक्त नहीं है और आत्मा भी कर्म निर्मित नहीं है॥ ४५९॥

अजो नित्यः शाश्वत इति ब्रूते श्रुतिरमोघवाक,
तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुतः प्रारब्धकल्पना॥ ४६०॥

अजः, नित्यः, शाश्वतः, इति, ब्रूते, श्रुतिः, अमोधवाक्॥
तदात्मना, तिष्ठतः, अस्य, कुतः, प्रारब्धकल्पना॥ ४६०॥

यह श्रुति आत्मा को नित्य कहती है वही आत्म स्वरूप से वर्तमान मनुष्य का प्रारब्ध की कल्पना क्यों होगी॥ ४६०॥

प्रारब्धं सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः,
देहात्मभावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यज्यतामतः॥ ४६१॥

प्रारब्धं, सिध्यति, तदाँ, यदा, देहात्मना, स्थितिः,
देहात्मभावः, न, एव, इष्टः, प्रारब्धं, त्यज्यतां, अंतः,॥ ४६१॥

प्रारब्ध की सिद्धि तब तक ही है जब तक देह में आत्मबुद्धि स्थित है। ऐसी आत्मबुद्धि इस देह में इष्ट नहीं है इसलिये प्रारब्ध का त्याग करना चाहिए॥ ४६१॥

शरीरस्यापि प्रारब्धकल्पना भ्रान्तिरेव हि,
अध्यस्तस्य कुतःसत्त्वमसत्यस्य कुतो जनिः॥ ४६२॥
अजातस्य कुतो नाशः प्रारब्धमसतः कुतः,

शरीरस्य, अपि, प्रारब्धंकल्पना, भ्रान्तिः, एवं, हि,
अध्यस्तस्य, कुतः, सत्त्वं, असत्यस्य, कुतः, जनिः॥ ४६२॥
अजातस्य, कुतः, नौशः, प्रारब्धं, असतः, कुँतः॥

यह शरीर प्रारब्ध से निर्मित है ऐसी कल्पना करना यह भी भ्रान्ति मात्र ही है क्योंकि जो भ्रम से उत्पन्न है वह सत्य कैसे होगा और जिसकी सत्ता ही नहीं है उसका जन्म कैसे हो सकता है॥ ४६२॥

ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य समूलस्य लयो यदि,
तिष्ठत्ययं कथं देह इति शङ्गावतो जडान॥ ४६३॥

ज्ञानेन, अज्ञानकार्यस्य, समूलस्य, लयः, यदि॥
तिष्ठेति, अयं, कथं, देहः, इति, शडीवतः, जडोन्॥ ४६३॥

अज्ञान से उत्पन्न जितने कार्य हैं उनको यदि ज्ञान से समूल लय किया जाय तो जो अजात है अर्थात् जिसका जन्म ही नहीं हुआ उसका नाश

कहाँ से होगा और जो हुआ ही नहीं, उसका प्रारब्ध भी नहीं है।॥ ४६३॥

समाधातुं बाह्यदृष्टया प्रारब्धं वदति श्रुतिः,
न तु देहादिसत्यत्वबोधनाय विपश्चितास॥ ४६४॥

समाधातुं, बाह्यदृष्टया, प्रारब्धं, वैदति, श्रुतिः॥
न, तु, देहादिसत्यत्वबोधनाय, विपश्चितीम्॥ ४६४॥

यदि इस देह की उत्पत्ति नहीं है तो यह वर्तमान क्यों हैं, ऐसी शंका करने वाले जो जड मनुष्य हैं उनको समझाने के लिए श्रुति बाह्यदृष्टि से प्रारब्ध को उसका कारण बता देती है। वह विद्वान को देहादि का सत्यव समझाने के लिए ऐसा नहीं कहती; क्योंकि श्रुति का अभिप्राय तो एकमात्र परमार्थ वास्तु का वर्ना करने में ही है।॥ ४६४॥

परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयमविक्रियम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४६५॥

परिपूर्ण, अनाद्यन्तं, अप्रमेयं, अविक्रियम्॥
एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन॥४६५॥

वास्तव में सर्वत्र परिपूर्ण, अनादि, अनंत, अप्रेमय और अविकारी एक ही अद्वितीय ब्रह्म है जो अनेक प्रकार से जगत् में दिखाई देता है सो सब कुछ नहीं है ऐसा ही उपदेश किया जाताहै।॥ ४६५॥

क्या मिथ्या है?

सदघ्नं चिदघ्नं नित्यमानन्दघनमक्रियम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४६६॥

सदघ्नं, चिघ्नं, नित्यं, आनन्दघनं, अक्रियम्॥
एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन॥ ४६६॥

सत्यघन, चैतन्यधन, नित्यघन, आनन्दघन और त्रिया से हीन एक ही अद्वितीय ब्रह्म है दूसरा कुछ नहीं है॥ ४६६॥

प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४६७॥

प्रत्यक्, एकरसं, पूर्ण, अनन्तं, सर्वतोमुखम्,
एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन॥ ४६७॥

प्रत्यक्ष. एकरस, परिपूर्ण, आदि अन्त से रहित, सर्वव्यापक, एक ही अद्वितीय ब्रह्म सत्य है दूसरा कुछ नहीं है॥ ४६७॥

अहेयमनुपादेयमनादेयमनाश्रयम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४६८॥

अहेयं, अनुपादेयं, अनादेयं, अनाअ॒यम्॥

एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन॥ ४६८॥

जो न त्याज्य है न और ग्राह्य है और न ही किसी में स्थित होने योग्य है तथा जिसका कोई अन्य आधार भी नहीं है, ऐसा एक ही अद्वितीय ब्रह्म सत्य है और जितने भी अनेकों प्रकार के प्रपञ्च हैं, वह सब मिथ्या है॥ ४६८॥

निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४६९॥

निर्गुणं, निष्कलं, सूक्ष्मं, निर्विकल्पं, निरञ्जनम्॥
एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन॥ ४६९॥

निर्गुण, कला से हीन, सूक्ष्म (अर्थात इन्द्रियों का अगोचर), विकल्प से रहित, निर्मल, एक ही अद्वितीय ब्रह्म नित्य है और सब अनित्य हैं॥ ४६९॥

अनिरूप्यस्वरूपं यन्मनोवाचामगोचरम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४७०॥

अनिरूप्यस्वरूपं, यत्, मनोवाचां, अगोचरम्॥
एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन॥ ४७०॥

जिनके स्वरूप का निश्चय किसी ने नहीं किया और जो मन वचन दोनों का अगोचर है वही एक अद्वितीय ब्रह्म नित्य है और सब प्रपञ्च मिथ्या है॥ ४७०॥

सत्समृद्धं स्वतःसिद्धं शुद्धं बुद्धमनीदृशम्,
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥ ४७१॥

संत्, समुंछ, स्वतैःसिद्धं, शुद्धं, बुद्धं, अनीदृशम्,
एकं, एवं, अद्वयं, ब्रह्म, न, इह, नाना, अस्ति॥ ४७१॥

सत्यस्वरूप, स्वतः सिद्ध, स्वच्छ बोधस्वरूप, उपमा से रहित, एक ही अद्वितीय ब्रह्म है, अन्य समस्त मिथ्या है॥ ४७१॥

ब्रह्म ज्ञान उपदेश का उपसंहार

निरस्तरागा विनिरस्तभोगाः शान्ताः सुदान्ता यतयो महान्तः,
विज्ञाय तत्त्वं परमेतदन्ते प्राप्ताः परां निर्वृतिमात्मयोगात्॥ ४७२॥

निरस्तरागाः, विनिरस्तभोगाः, शान्ताः, सुदान्ताः, यंतयः, महान्तः॥
विज्ञाय, तत्त्वं, परं, एतद्, अन्ते, प्राप्ताः, परां, निवृति, आत्मयोगात्॥ ४७२॥

जिन महात्माजनों ने विषय राग को त्याग दिया और विषय भोग की इच्छा को त्यागकर इन्द्रियों का निग्रहकर अपने वश कर लिया तथा

चित्त वृत्ति को रोककर परमतत्व को जान लिया, वह योगी आत्म संयोग होने से परमसुख को प्राप्त होते हैं॥ ४७२॥

भवानपीदं परतत्त्वमात्मनः स्वरूपमानन्दघनं विचार्य,
विधूय मोहं स्वमनःप्रकल्पितं मुक्तः कृतार्थो भवतु प्रबुद्धः॥ ४७३॥

भवान्, अपि, इदं, परंतत्त्वं, आत्मनः, स्वरूपं, आनन्दधनं, विचार्य॥
विधूयं, मोहं, स्वमनःप्रकल्पितं, मुक्तः, कृतार्थः, भवतुं, प्रबुद्धः॥ ४७३॥

अत: हे वत्स ! तुम भी परमात्मा के परमतत्त्व आनन्दघन स्वरूप को विचार कर मन द्वारा कल्पित महामोह को छोडकर मुक्त हो जाओ और इस प्रकार अज्ञान-निद्रा से जागकर कृतार्थ हो जाओ।॥ ४७३॥

समाधिना साधुविनिश्चलात्मना पश्यात्मतत्त्वं स्फुटबोधचक्षुषा,
निःसंशयं सम्यगवेक्षितश्चेच्छ्रुतः पदार्थो न पुनर्विकल्प्यते॥ ४७४॥

समाधिना, साधुविनिश्चलात्मना, पश्यं, आत्मतत्त्वं, स्फुटबोधचक्षुषा॥
निःसंशयं, सम्यक्, अवक्षितः, चेत्, श्रुतः, पदार्थः, न, पुनः, विकल्प्यते॥ ४७४॥

यथार्थ रूप से निश्चलात्मक समाधि के द्वारा और विकसित बोध रूप नेत्रों से आत्मतत्त्व को देखो, यदि आत्मतत्व को संदेह रहित यथार्थ रीति से स्थिर कर लोगे तो जितने सुने हुए पदार्थ हैं तो फिर उसके विषय में कोई संशय नहीं होगा॥ ४७४॥

स्वस्याविद्याबन्धसम्बन्धमोक्षात् सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ,
शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिः प्रमाणं चान्तः सिद्धा स्वानुभूतिः प्रमाणम्॥ ४७५॥

स्वस्य, अविद्याबन्धसम्बन्धमोक्षात्, सत्यज्ञानानन्दरूपात्मलब्धौ॥
शास्त्रं, युक्तिः, देशिकोक्तिः, प्रमाणं, च, अन्तः, सिद्धा, स्वानुभूतिः, प्रमाणम्॥ ४७५॥

अपने अज्ञान रूपी बंधन के संबन्ध से मुक्त होने पर सत्यज्ञान आनन्दस्वरूप आत्मस्वरूप का लाभ होता है। इस विषय में शास्त्र, युक्ति और श्रेष्ठों द्वारा कहा गया प्रमाण है और, अंतःकरण से सिद्ध अपना अनुभव भी प्रमाण है॥ ४७५॥

बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च चिन्तारोग्यक्षुधादयः,
स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञानं परेषामानुमानिकम्॥ ४७६॥

बन्धः, मोक्षः, च, तृप्तिः, च, चिन्तारोग्यक्षुधादयः,
स्वेन, एवं, वेद्याः, यत्, ज्ञानं, परेषा, आनुमानिकम्॥ ४७६॥

क्षुधा और बन्धन से मोक्ष, दृप्ति, चिन्ता, अरोग्य और क्षुधा यह सब स्वयं ही जाने जाते हैं अर्थात् जिसको बन्धना आदि प्राप्त हैं उसी पुरुष को इन सबका यथार्थ ज्ञान होता है और दूसरों को इन सभी का ज्ञान

अनुमान से अर्थात् बन्धन आदि से युक्त पुरुष की चेष्टाओं को देखने से होता है॥ ४७६॥

तटस्थिता बोधयन्ति गुरवः श्रुतयो यथा,
प्रज्ञयैव तरेदिदानीश्वरानुगृहीतया॥ ४७७॥

तटस्थिताः, बोधयन्ति, गुरवः, श्रुतयः, यथा॥
प्रज्ञा, एवं, तरेत्, विद्वान्, ईश्वरानुगृहीतया॥ ४७७॥

जैसे श्रुति शब्द द्वारा ब्रह्म का को बोध कराती है वैसे ही गुरु भी तटस्थ होकर ब्रह्म का बोध कराते हैं इसलिये विद्वान मनुष्य ईश्वर द्वारा अनुग्रहित केवल अपनी बुद्धि से संसार को तरते हैं।॥ ४७७॥

स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम्,
संसिद्धः सम्मुखं तिष्ठेन्निर्विकल्पात्मनात्मनि॥ ४७८॥

स्वानुभूत्या, संयं, ज्ञात्वा, स्वं, आँत्मानं, अखण्डितम्॥
संसिद्धः, सम्मुखं, तिष्ठेत्, निर्विकल्पात्मना, आत्मनि॥ ४७८॥

अपने अनुभव से अखण्ड आत्मा को स्वयं जानकर सिद्ध पुरुष निर्विकल्प भाव से आनंदपूर्वक सदा आत्मा में स्थित रहते हैं।॥ ४७८॥

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च,

अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्मादितीये श्रुतयः प्रमाणम्॥ ४७९॥

वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिः, एषा, ब्रह्म, एंव, जीवः, संकलं, जगत्, च
अखंण्डरूपस्थितिः, एवं, मोक्षः, ब्रह्मोद्वितीये, श्रृंतयः, प्रमाणम्॥ ४७९॥

सम्पूर्ण जगत् और जीव यह सभी ब्रह्मस्वरूप ही हैं ऐसी वेदान्त की सिद्धान्त उक्ति है और अद्वितीय ब्रह्म में अखण्डरूप से अर्थात् भेदशून्य होकर स्थिर रहना यही मोक्ष है। ब्रह्म अद्वितीय है इसमें भी बहुत सी श्रुतियां प्रमाण हैं।॥ ४७९॥

ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होने पर शिष्य द्वारा अपनी अवस्था का वर्णन

इति गुरुवचनाच्छ्रुतिप्रमाणात् परमवगम्य सतत्त्व मात्मयुक्त्या,
प्रशमितकरणः समाहितात्मा क्वचिदचलाकृतिरात्मनिष्ठितोऽभूत्॥ ४८०॥

इति, गुरुवचनात्, श्रुतिप्रमाणात्, परं, अवगम्य, सतत्वं, आत्मयुक्त्या॥
प्रशमितकरणः, समाहितात्मा, क्वचित्, अचलाकृतिः, आत्मनिष्ठितः, अभूत्॥ ४८०॥

श्रुतियों से प्रमाण युक्त गुरु के इन वचनों से और अपनी युक्ति से परमात्मतत्त्व को जान कर और इन्द्रियों का निग्रह करके चित्तवृत्ति

को रोक कर शिष्य निश्छल वृति से आत्मरूप में स्थित हो गया॥ ४८० ।।

कञ्चित्कालं समाधाय परे ब्रह्मणि मानसम्,
उत्थाय परमानन्दादिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८१॥ ,

कञ्चित्, कालं, समाधाय, परे, ब्राह्मणि, मानसम्,
उत्थाय, परमानन्दात्, इदं, वचनं, अबवीत्॥ ४८१॥

और कुछ समय क परब्रह्म में चित्त को समाहित कर, परमानन्द प्राप्त होने के बाद, उठकर आनन्दयुक्त होकर यह वचन बोला॥ ४८१॥

बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिब्रह्मात्मनोरेकतयाऽधिगत्या,
इदं न जानेप्यनिदं न जाने किं वा कियद्वा सुखमस्त्यपारम्॥ ४८२॥

बद्धिः, विनष्टा, गलिता, प्रवृत्तिः, ब्रह्मात्मनोः, एकतया, मैधिगत्या॥
इदं, न, जाने, अपि, अनिदं, न, जाने, किं, वा, कियत्, वा, सुखं, अस्ति, अपारम्॥ ४८३॥

ब्रह्मज्ञानी पुरुष की बोलने की यही रीति है कि, ब्रह्म और आत्मा में एकत्वबुद्धि होने से मेरी बुद्धिका नाश हुआ और बाह्यविषयों में जो चित्तवृत्ति लगी थी वह भी लीन हो गई। मुझे न 'इदम्' पद के अर्थ का ज्ञान है और न 'अनिन्द' का, ब्रह्म के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता

और न ही मैं यह जानता हूँ की वह अपार आनंद कैसा और कितना है॥ ४८२॥

वाचा वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तुं न वा शक्यते
स्वानन्दामृतपूरपूरितपरब्रह्माम्बुधेवैभवम्,
अम्भोराशिविशीर्णवार्षिकशिलाभावं भजन्मे मनो यस्यांशांशलवे
विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम्॥ ४८३॥

वाचा, वक्तुं, अंशक्यं, एवं, मनसा, मन्तुं, न, वा, शक्यते,
स्वानन्दामृतपूरपूरितपरब्रह्माम्बुधेः, वैभवम्॥
अम्भो राशिविशीर्णवार्षिकशिलाभावं, भजेत्, में, मनः, यस्य, अंशांशलवे,
विलीनं, अधुना, आनन्दात्मना, निवृतम्॥ ४८३॥

क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनमिदं जगत्,
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भुतम्॥ ४८४॥

क्व, गतं, केन, वा, नीतं, कुत्रं, लीनं, इदं, जगत्॥
अधुना, ऐवं, मया, दृष्टं, न, अस्ति, कि महत, अद्भतम्॥ ४८४॥

आत्मानन्द रूप अमृत के प्रवाह से परिपूर्ण परब्रह्म रूप समुद्र के वैभव को कहने में वाणी समर्थ नहीं है और मन भी नहीं पहुंच सकता। जैसा वर्षाकाल में जल की धारा से टूटकर शिला का खण्ड समुद्र में जा पडता है वैसे ही मेरा मन ब्रह्मानन्द समुद्र के एक देश में लीन होकर इस समय आनन्दस्वस ब्रह्मज्ञान होने पर ऐसा मालूम

होता है कि, यह जगत् कहां गया? किसने इसको छिपा लिया? किसमें यह लीन हो गया, अभी तो मुझे यह दिखाई देता था अब नहीं दिखाई देता, यह बड़े आश्चर्य की बात हैं॥ ४८३-४८४॥

किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किं विलक्षणम्,
अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे ब्रह्ममहार्णवे॥ ४८५॥

किं, हेयं, किं, उपादेयं, किं, अन्यत्, किं, विलक्षणम्॥
अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे, ब्रह्ममहार्णवे॥ ४८५॥

कौन सी वास्तु त्याज्य है और क्या ग्राह्य है और क्या विलक्षण है? ऐसे ही अमृत से परिपूर्ण ब्रह्मानन्द महासमुद्र में मालूम होता है॥ ४८५॥

न किञ्चिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेद्यहम्,
स्वात्मनैव सदानन्दरूपेणास्मि विलक्षणः॥ ४८६॥

न, किञ्चित्, अत्र, पश्यामि, नैं, शृणोमि, न, वेद्यि, अहम्॥
स्वात्मना, एवं, सदानंदरूपेण अस्मि, विलक्षणः॥ ४८६॥

अब मैं यहाँ. न कुछ नहीं देखता हूँ, न सुनता हूँ, न कुछ जानता ही हूँ। मैं तो अपने में ही सदानन्दरूप से विलक्षण हो गया हूँ॥ ४८६॥

नमो नमस्ते गुरवे महात्मने विमुक्तसङ्गाय सनुत्तमाय,
नित्यादयानन्दरसस्वरूपिणे भूम्ने सदापारदयाम्बुधाम्ने॥ ४८७॥

नमः, नमः, 'ते, गुरवे, महात्मने, विमुक्तसङ्गाय, संदुत्तमाय॥
नित्यादयानन्दरसस्वरूपिणे, भूम्ने, सदा, अपारदयाम्बुधाम्ने॥ ४८७॥

संग से रहित संत शिरोमणि, उत्तम. नित्य, अद्वितीय, आनन्दरसस्वरूपी, अपार दया के सागर, महात्मा श्री गुरु को मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ॥ ४८७ ।।

यत्कटाक्षशशिसान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः,
प्राप्तवानहमखण्डवैभवानन्दमात्मपदमक्षयं क्षणात्॥ ४८८॥

यत्कटाक्षशशिसान्द्रचन्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः,
प्राप्तवान्, अहं, अखंडवैभवानन्दं, आत्मपदं, अक्षयं, क्षणात्॥ ४८८॥

जिस श्रीगुरुमहाराज के दृष्टिरूप चन्द्रमा की सघन किरणों का सम्बन्ध होने से संसारी ताप से उत्पन्न खेद से छूट कर, क्षय से रहित अखण्ड विभवानन्द जो आत्मपद है. उस पद को क्षणमात्र में मैंने प्राप्त किया है।॥ ४८८॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं विमुक्तोऽहं भवग्रहात्,
नित्यानन्दस्वरूपोऽहं पूर्णोऽहं तदनुग्रहात्॥ ४८९॥

धन्यः, अहं, कृतकृत्यः, अहं, विमुक्तः, अहं, भवन भवग्रहात्॥
नित्यानन्दस्वरूपः, अहं, पूर्णः, अहं, तदनुग्रहात्॥ ४८९॥

श्री गुरु महाराज की कृपासे नित्य आनन्दस्वरूप को मैं प्राप्त हुआ इसलिये मैं पूर्ण हूँ, धन्य हूँ, और संसार रूप ग्रह से विमुक्त होकर कृतकृत्य हूँ॥ ४८९॥

असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमलिङ्गोऽहमभङ्गुरः,
प्रशान्तोऽहमनन्तोऽहममलोऽहं चिरन्तनः॥ ४९०॥

असङ्गः, अहं, अनङ्गः, अहं, अलिङ्गः, अहं, अभङ्गुरः॥
प्रशान्तः, अहं, अनन्तः, अहं, अमलः, अहं, चिरन्तनः॥ ४९०॥

मैं असङ्ग हूँ, अशरीर हूँ, अलिंग हूँ, अक्षय हूँ तथा अत्यंत शान्त, अनन्त, निर्मल, पुरातन ब्रह्मस्वरूप, को प्राप्त हुआ हूँ,॥ ४९०॥

अकर्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमक्रियः,
शुद्धबोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः॥ ४९१॥

कर्ता, अहं, अभोक्ता, अहं, अविकारः, अहं, अक्रियः॥
शुद्धबोधस्वरूपः, अहं, केवलः, अहं, सदाशिवः॥ ४९१॥

कर्तृत्व, भोकृत्व, विकार, क्रिया, इन सबसे रहित, शुद्ध बोधस्वरूप केवल सदाशिव स्वरूप मैं हूँ॥ ४९१॥

द्रष्टुः श्रोतुर्वक्तुः कर्तुर्भोक्तुविभिन्न एवाहम्,

नित्य निरन्तरनिष्क्रियनिःसीमासङ्गःपूर्णबोधात्मा॥४९२॥

द्रष्टुः, श्रोतुः, वक्तः, कर्तुः, भोक्तुः, विभिन्नः, एवं, महंम्॥
नित्यनिरन्तरनिष्क्रियनिःसीमासङ्गःपूर्णबोधात्मा॥ ४९२॥

द्रष्टा, श्रोता, वक्ता, कर्ता, भोक्ता – इन सभी से भिन्न हूँ। मैं तो नित्य, सदा क्रिया से रहित, निःसीम, असङ्ग, पूर्ण बोधस्वरूप आत्मा हूँ॥ ४९२॥

नाहमिदं नाहमदोप्युभयोखभासकं परं शुद्धम्,
बाह्याभ्यंतरशून्यं पूर्ण ब्रह्मादितीयमेवाहम्॥ ४९३॥

न, अहं, इदं, न, अहं, अदः, अपि, उभयोः, अवभासकं, परं, शुद्धम्॥
भाह्याभ्यंतरेशून्यं, पूर्ण, ब्रह्म, अद्वितीयं, एव, अहम्॥ ४९३॥

मैं न यह हूँ, न मैं वह हूँ, अर्थात् न मैं स्थूल प्रपञ्च हूँ, न ही सूक्ष्म हूँ, किन्तु दोनों का प्रकाशक बाह्य आभ्यन्तर से शून्य, पूर्ण, अद्वितीय, परम शुद्ध ब्रह्म मैं ही हूँ॥४९३॥

निरुपममनादितत्त्वं त्वमहमिदमदइति कल्पनादूरम्,
नित्यानन्दैकरसं सत्यं ब्रह्मादितीयमेवाहम्॥ ४९४॥

निरुपमं, अनादितत्त्वं, त्वं, अहं, इंदं, अंदः, इति, कल्पनार्दूरम्॥
नित्यानंदैकरसं, सत्यं, ब्रह्म, अद्वितीयं, एवं, अहम्॥ ४९४॥

उपमा से रहित अनादितत्त्व 'त्वं' (तू), 'अहं' (मैं), 'इदं' (यह, वह) आदि की कल्पना से शून्य, नित्य आनन्दक रस, सत्य और अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ॥ ४९४॥

नारायणोऽहं नरकान्तकोऽहं पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः,
अखण्डबोधोऽहमशेषसाक्षी निरीश्वरोऽहं निरहं च निर्ममः॥ ४९५॥

नारायणः, अहं, नरकान्तकः, अहं, पुरान्तकः, अहं, पुरुषः, अहं, ईशः॥
अखण्डबोधः, अहं, अशेषसाक्षी, निरीश्वरः, अहं, निरहं, निर्ममः॥ ४९५॥

मैं नारायण हूँ अर्थात् समुद्रशायी हूँ, नरकासुर नामक दैत्य का अंतक हूँ, त्रिपुरासुर का हन्ता शिव मैं ही हूँ, पुराण पुरुष ईश्वर मै हूँ, अखण्ड बोध, सर्वसाक्षी, ममता अहंकार से शून्य, निरीश्वर ब्रह्म मैं ही हूँ॥ ४९५॥

सर्वेषु भूतेष्वहमेव संस्थितो ज्ञानात्मनान्तर्बहिराश्रयः सन,
भोक्ता च भोग्यं स्वयमेव सर्वे यद्यत्पृथग्दृष्टमिदन्तया पुरा॥ ४९६॥

सर्वेषु, भूतेषु, अहं, एव, संस्थितः, ज्ञानात्मना, अन्तः, बहिः, आश्रयः, सन्॥
भोक्ता, च, भोग्यं, स्वयं, एवं, सर्व, यत्, यत्, पृथक्, दृष्टं, इदन्तया, पुरा॥
४९६॥

सब प्राणियों के हृदय में ज्ञानरूप से वर्तमान मैं हूँ और आश्रयरूप से वर्तमान बाहर भीतर मैं हूँ, भोक्ता भोग्य और जो जो वस्तु इदं शब्द की प्रतीति से अलग अलग देखे गए थे, वह भोक्ता, भोग्य सब कुछ मैं स्वयं ही हूँ ॥ ४९६॥

मय्यखण्डसुखाम्भोधौ बहुधा विश्ववीचयः,
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारुतविभ्रमात्॥ ४९७॥

मयि, अखण्डसुखाम्भोधौ, बहुधा, विश्ववीचयः॥
उत्पद्यन्ते, विलीयन्ते, मायामारुतविभ्रमात्॥ ४९७॥

मुझ अखण्ड सुख के समुद्र में बहुत सी संसाररूप लहरेन माया रुपी वायु के विभ्रम से उत्पन्न होती हैं फिर उसी में लीन भी हो जाती हैं॥ ४९७॥

स्थूलादिभावा मयि कल्पिता भ्रमादारोपिता नु स्फुरणेन लोकैः,
काले यथा कल्पकवत्सरायन्त्वादियो निष्कलनिर्विकल्पे॥ ४९८॥

स्थलादिभावाः, मयि, कल्पिताः, भ्रमात्, आरोपिताः, नु, स्फुरणेन, लोकैः॥
काले, यथा, कल्पवत्सरायन्त्वादियः, निष्कलनिर्विकल्पे॥ ४९८॥

जैसे निर्विकल्पक व्यापक जो एक काल है उसमें कल्प, वत्सर, अयन, ऋतु आदि अनेकों भाव कल्पित होते हैं वैसे ही कला और विकल्प से शून्य परब्रह्म स्वरूप हमारे हृदय में जो स्थूल सूक्ष्म आदिभावना

है वह सब भ्रम से और मिथ्या आरोप की अनुस्फूर्ति से मनुष्यों ने कल्पना कर ली है॥ ४९८॥

आरोपितं नाश्रयदूषकं भवेत् कदापि मूढेरति दोषदूषितैः,
नार्दीकरोत्यूषरभूमिभागं मरीचिकावारिमहाप्रवाहः॥ ४९९॥

आरोपितं, न, आश्रयदूषकं, भवेत्, कदा, अपि, मूढे, अतिदोषदूषितैः॥
न, आर्दीकरोति, ऊषरभूमिभाग, मरीचिकावारिमहाप्रवाहः॥ ४९९॥

जैसे भ्रम से मृगतृष्णा में जो जल प्रवाह का बोध होता है, उस आरोपित जलप्रवाह से ऊपर भूमि कभी गीली नहीं हो सकती, वैसे अत्यंत दोष से दूषित मूढ जनों से ब्रह्म में आरोपित जो संसार है, वह संसार आश्रय जो ब्रह्म है उनको अपने दोष से दूषित नहीं कर सकता॥ ४९९॥

आकाशवल्लेपविदूरगोऽहमादित्यवदास्यविल क्षणोऽहम्,
अहार्यवान्नित्यविनिश्चलोऽहमम्भोधिवत्पारविवर्जितोऽहम्॥ ५००॥

आकाशवत्, लेपविदूरगः, अहं, आदित्यवत्, भास्यविलक्षणः, अहम्॥
आहार्यवत्, नित्यविनिश्चलः, अहं, अम्भोधिवत्, पारविवर्जितः, अहम्॥ ५००॥

ब्रह्मज्ञानी की उक्ति है कि जैसे आकाश सब वस्तुओं में रहता है परन्तु किसी के गुण से लिप्त नहीं होता, वैसे ही मैं विषय लेप से दूरस्थ हूँ

और सूर्य के सदृश प्रकाश्य वस्तु से भिन्न हूँ अर्थात् जैसे सूर्य विषयों को प्रकाश करते हैं परन्तु विषयों से भिन्न है। मैं पर्वतों के सदृश सदा निश्चल हूँ, समुद्र सदृश पारावार से वर्जित हूँ अर्थात् मेरा अन्त कोई नहीं जान पाया।॥ ५००॥

न मे देहेन संबन्धो मेघेनेव विहायसः,
अतः कुतो मे तद्धर्मा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः॥ ५०१॥

न, मे, देहेन, संबन्धः, मेघेन, इवै, विहायसः॥
अतः, कुतः, मे, तद्धर्माः, जात्स्वानसुषुप्तयः॥ ५०१॥

जैसे मेघ के साथ आकाश का कुछ सम्बन्ध नहीं है वैसे ही इस देह से मेरा भी कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये देह का जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि धर्म है वह क्यों हमारे में हो सकता है।॥ ५०१॥

उपाधिरायाति स एव गच्छति स एव कर्माणि करोति भुंक्ते,
स एव जीर्यन् म्रियते सदाहं कुलाद्रिवन्निश्चल एव संस्थितः॥ ५०२॥

उपाधिः, आयाति, सः, एव, गच्छति, सः, एवं, कर्माणि, करोति, भुंक्ते॥
सः, एवं, जीर्यन्, म्रियते, सदा, अहं, कुलाद्रिवत्, निश्चलः, एव, संस्थितः॥ ५०२॥

परब्रह्म में जो अनेकों प्रकार की उपाधि प्रतीत होती है, वही उपाधि इस लोक में आती है फिर अलग भी जाती है। वही समस्त कर्मों को

करती है और वही उपाधि अपने किये कर्मों का भी फल भोगती है। वही वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होती है और मैं तो महापर्वतों के सदृश निश्चल होकर सदा वर्तमान रहता हूँ, ऐसी जीवन्मुक्तों की उक्ति है॥ ५०२॥

न मे प्रवृत्तिर्न च मे निवृत्तिः सदैकरूपस्य निरंशकस्य,
एकात्मको यो निबिडो निरन्तरो व्योमेव पूर्णः स कथं नु चेष्टते॥ ५०३॥

न, में, प्रवृत्तिः, न, च, मे, निवृत्तिः, सदा, एकरूपस्य, निरंशकस्य॥
एकात्मकः, यः, निबिड, निरन्तरः, व्योम, इव, पूर्णः, सः, कथं, नु चेष्टते॥ ५०३॥

मैं अंश से रहित, सदा एकरूप से विद्यमान हूँ, मेरी किसी विषयों में न प्रवृत्ति है, न किसी से निवृत्ति है क्योंकि जो एक आत्मा होकर सदा सर्वत्र आकाश सदृश पूर्णरूप से व्यापक होगा वह किस प्रकार की चेष्टा कर सकता है॥ ५०३॥

पुण्यानि पापानि निरिन्द्रियस्य निश्चेतसो निर्विकतेनिराकृतेः,
कुतो ममाखण्डसुखानुभूतेब्रूते ह्यनन्वागतमित्यपि श्रुतिः॥ ५०४॥

पुण्यानि, पापानि, निरिन्द्रियस्य, निश्चतसः, निर्विकृतेः, निराकृतेः॥
कुतः, मम, अखण्डसुखानुभूतेः, ब्रूते, हि, अनन्वागतं, इति, अपि, श्रुतिः॥ ५०४॥

इन्द्रिय और चित्त आकृति और विकृति इन सबसे शून्य, अखण्ड सुख का अनुभव कराने वाले मुझको पुण्य और पाप कहाँ से होगा क्योंकि पुण्य पाप से सब इन्द्रिय जन्य हैं है। मैं इन सब से विलक्षण हूँ श्रुति भी ऐसा ही कहती है॥ ५०४॥

छायया स्पृष्टमुष्णं वा शीतं वा सुष्टु दुष्ट वा,
न स्पृशत्येव यत्कञ्चित्पुरुषं तद्विलक्षणम्॥ ५०५॥

छायया, स्पृष्टं, उष्णं, वा, शीतं, वा, सुष्टुं, दुष्टुं, वा॥
न, स्पृशति, एवं, यत्, किञ्चित्, पुरुष, तद्विलक्षणम्॥ ५०५॥

जैसे मनुष्यों की छाया को उष्ण-शीत, अच्छी-बुरी कैसी भी हो, किसी भी प्रकार की वस्तु को स्पर्श होने का सुख अथवा दुःख नहीं होता वैसे ही शरीर आदि उपाधि का धर्म जो पुण्य पाप है वह ईश्वर में कभी नहीं होता॥ ५०५॥

न साक्षिणं साक्ष्यधर्माः संस्पृशन्ति विलक्षणम्,
अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत्॥ ५०६॥

न, साक्षिणं, साक्ष्यधर्माः, संस्पृशन्ति, विलक्षणम्॥
अविकारं, उदासीनं, गृहधर्माः, प्रदीपवत्॥ ५०६॥

जैसे गृह के मालिन्य आदि धर्म गृह के दीपक को नहीं स्पर्श करता वैसे देह आदि साक्ष्य वस्तुओं का जो सुख दुःख आदि धर्म है वह

विकार से शून्य उदासीन सबसे विलक्षण जो साक्षी ईश्वर हैं उनको स्पर्श नहीं करता॥ ५०६॥

रवेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वह्नर्यथा दाहनि यामकत्वम्,
रज्जोर्यथारोपितवस्तुसङ्गस्तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे॥ ५०७॥

रवेः, यथा, कर्मणि, साक्षिभावः, वह्नः, यथा, दाह नियामकत्वम्॥
रज्जोः, यथा, आरोपितवस्तुसङ्गः, तथा, एवं, कूटस्थंचिदात्मनः, मे॥ ५०७॥

जैसे सूर्योदय होने पर मनुष्यों की चेष्टा कर्म में प्रवृत्त होती है परन्तु सूर्य उन कर्मों का केवल साक्षी मात्र है। जैसे अग्नि दाह का नियामक है दाह का प्रवर्तक नहीं है क्योंकि अग्नि का स्वतः ऐसा स्वभाव ही है और रस्सी में जैसे आरोपित सर्प का संसर्ग होता है वैसा ही साक्षिभाव देह आदि विषयों में कूटस्थ चैतन्य आत्मस्वरूप मुझे है।॥ ५०७॥

कर्तापि वा कारयितापि नाहं भोक्तापि वा भोजयितापि नाहम्,
द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाहं सोऽहं स्वयंज्योतिरनीदृगात्मा॥ ५०८॥

कर्ता, अपि, वा, कारयिता, अपि, न, अहं, भोक्ता, अपि, वो, भोजयिता, अपि, न, अहम्॥
द्रष्टा, अपि, वा, दर्शयिता, अपि, ना, अहं, सः, अहं, स्वयंजोतिः, अनीदृकू, आत्मा॥ ५०८॥

मैं न किसी वस्तु का कर्त्ता हूँ, न ही कराने वाला हूँ, मैं भोक्ता हूँ, हूं न तो भोजन करने वाला हूँ, न द्रष्टा हूँ, न किसी को देखनेवाला हूँ, सबसे विलक्षण उपमा से रहित वही स्वयं प्रकाशरूप आत्मा मैं हूँ॥ ५०८॥

चलत्युपाधौ प्रतिबिम्बलौल्यमौपाधिकं मूढ धियो नयन्ति,
स्वबिम्बभूतं रविवदिनिष्क्रिय कर्तास्मि भोक्तास्मि हतोऽस्मि हेति॥ ५०९॥

चलति, उपाधौ, प्रतिबिम्बलौल्यं, औपोधिकं, मूढधियः, नयन्ति॥
स्वबिम्बभूतं, रविवत्, विनिष्क्रिय, कर्ता, अस्मि, भोक्ता, अस्मि, हतः, अस्मि, हा, इति॥ ५०९॥

जैसे जल के चञ्चल होने से क्रियारहित जलस्थ सूर्य के प्रतिविम्ब को मूढ़ मनुष्य चञ्चल मानते हैं वैसे ही देह आदि में आत्मा का प्रतिबिम्ब पडने से देह का कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म आत्मा में जानकार 'मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, हाय मारा गया ऐसा कहते हैं, इससे अधिक क्या कष्ट है॥ ५०९॥

जले वापि स्थले वापि लुठत्वेष जडात्मकः,
नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभोयथा॥ ५१०॥

जैले, वा, अपि, स्थले, वा, अपि, लुठंतु, एषः, जडात्मकः॥
न, अहं, विलिप्ये, तेद्धर्मैः, घंटधर्मैः, नभः, यथा॥ ५१०॥

यह जो जडात्मक देह है वह चाहे जल में गिरे अथवा पृथ्वी में गिरे परन्तु इस देह के धर्म से ब्रह्मरूप मैं लिप्त नहीं होता जैसे घड़े के धर्मों से आकाश लिप्त नहीं होता॥ ५१०॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तताजडत्वबद्धत्वविमुक्त तादयः,
बुद्धर्विकल्पा न तु सन्ति वस्तुतः स्वस्मिन् परे ब्रह्मणि केवलेऽद्धये॥ ५११॥

कर्तृत्व भोक्तृत्व खलत्व मत्तता जडत्व बद्धत्व विमुक्त तादयः॥
बुद्धेः, विकल्पाः, न, तु, सन्ति, वस्तुतः, स्वस्मिन्, परे, ब्रह्मणि, केवले, अद्वये॥ ५११॥

कर्तृत्व, भोक्तृत्व, कुटिलता, उन्मत्तता, जडता, बंधन और मोक्ष आदि यह सभी बुद्धि के विकल्प हैं किन्तु अद्वितीय केवल परब्रह्मस्वरूप, स्वात्मा में वस्तुत: नहीं हैं॥ ५११॥

सन्तु विकाराः प्रकृतेर्दशधा शतधा सहस्रधा वापि,
किं मेऽसङ्गचितस्तैर्न घनः क्वचिदम्बरं स्पृशति॥ ५१२॥

सन्तु, विकाराः, प्रकृतेः, दशधा, शतधा, सहस्रधा, वा, अपि॥
किं, मे, असङ्गचितः, तैः, न, घनः, क्वचित्, अम्बरं, स्पृशति॥ ५१२॥

प्रकृति में चाहे दस प्रकार, सैकड़ों अथवा हजारों विकार क्यों न हों, उनसे मेरी क्या हानि है? क्योंकि मैं सब विकारों के संगसे रहित

चैतन्यरूप हूँ। मुझ को कोई विकार उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर सकते जैसे मेघ आकाश को स्पर्श नहीं करता॥ ५१२॥

अव्यक्तादि स्थूलपर्यंतमेतदिश्वं यत्राभासमात्रं प्रतीतम्,
व्योमप्रख्यं सूक्ष्ममाद्यन्तहीनं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि॥ ५१३॥

अव्यक्तादि, स्थूलपर्यंत, एतत्, विश्व, यत्र, आभास मात्रं, प्रतीतम्॥
व्योमप्रख्यं, सूक्ष्मं, आद्यन्तहीनं, ब्रह्म, अद्वैतं, यत्, तत्, एव, अहं, अस्मि॥
५१३॥

बुद्धि आदि स्थूल देहपर्यन्त सब विश्व जिस में मिथ्या आभासमात्र प्रतीत होता है वही आकाश सदृश्य व्यापक सूक्ष्म आदि अन्त से रहित जो अद्वितीय ब्रह्म है मैं वहीं हूँ।॥ ५१३॥

सर्वाधारं सर्ववस्तुप्रकाशं सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम्,
नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि॥ ५१४॥

सर्वाधारं, सर्ववस्तुप्रकाशं, सर्वाकारं, सर्वगं, सर्वशून्यम्,
नित्यं, शुद्धं, निश्चलं, निर्विकल्पं, ब्रह्म, अद्वैतं, यत्, तत्, एव, अहं, अस्मि॥
५१४॥

सबका आधार और सब वस्तुओं का प्रकाशक, सब का आकार और सब में रहनेवाला, सबसे शून्य नित्य शुद्ध निश्चल विकल्प से रहित जो अद्वित्तीय ब्रह्म है वह ब्रह्म मैं हूँ॥ ५१४॥

यत्प्रत्यस्ताशेषमायाविशेष प्रत्यग्रूपं प्रत्ययागम्यमानम्,
सत्यज्ञानानन्तमानन्दरूपं ब्रह्मादैतं यत्तदेवाहमस्मि॥ ५१५॥

यंत्, प्रत्येस्ताशेषमायाविशेषं, प्रत्यग्रूपं, प्रत्ययागम्यमा नम्,
सत्यज्ञानानन्तं, आनन्दरूपं, ब्रह्म, अद्वैतं, यत्, तत्, एँव, अहं, अस्मि॥ ५१५॥

जिसमें सम्पूर्ण माया का कार्य लीन है ऐसा जो व्यापक रूप, प्रत्यक्ष प्रतीति का अगोचर, सत्य, ज्ञान, अनन्त आनन्द रूप, अद्वितीय ब्रह्म है, वह ब्रह्म मैं हूँ॥ ५१५॥

निष्क्रियोऽस्यविकारोऽस्मि निष्फलोऽस्मि निराकृतिः,
निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि निरालम्बोऽस्मि निर्दयः॥ ५१६॥

निष्क्रियः, अस्मि, अविकारः, अस्मि, निष्कलः, अस्मि, निराकृतिः॥
निर्विकल्पः, अस्मि, नित्यः, अस्मि, निरालम्बः, अस्मि, निर्दयः॥ ५१६॥

मैं क्रिया और विकार से रहित हूँ और कला और आकृति से भी शून्य हूँ और विकल्प से रहित और अवलम्ब से रहित अद्वितीय नित्य ब्रह्म मैं हूँ ॥ ५१६॥

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः,
केवलाखण्डबोधोऽहमानन्दोऽहं निरन्तरम्॥ ५१७॥

सर्वात्मकः, अहं, सर्वः, अहं, सर्वातीतः, अहं, अद्वयः॥
केवलाखेण्डबोधः, अहं, आनन्दः, अहं, निरन्तरम्॥ ५१७॥

मैं सबका आत्मा हूँ और जो कुछ वस्तु है वह हमसे भिन्न नहीं है और सबसे अतिरिक्त भी मैं हूँ। अद्वितीय केवल अखण्डबोध निरन्तर आनन्दरूप ब्रह्म मैं ही हूँ॥ ५१७॥

कृतज्ञ शिष्य का गुरु को नमस्कार

स्वाराज्यसाम्राज्यविभूतिरेषा भवत्कृपाश्रीमहिम प्रसादात्,
प्राप्ता मया श्रीगुवे महात्मने नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोऽस्तु॥ ५१८॥

स्वाराज्यसाम्राज्यविभूतिः, एषा, भवत्कृपाश्रीमहिमप्रसादात्॥
प्राप्ता, मया, श्रीगुखे, महात्मने, नमः, नमः, ते, अस्तु, पुनः, नमः, अस्तु॥ ५१८॥

हे श्रीगुरु महाराज ! आपकी कृपा से व महिमा के प्रसाद से स्वर्ग के अखण्ड राज्य की विभूति की प्राप्त हुई है इसलिये महात्मा श्री गुरु महाराज को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥ ५१८॥

महास्वप्ने मायाकृतजनिजरामृत्युगहने
भ्रमन्तं क्लिश्यन्तं बहुलतरतापैरनुदिनम्,
अहंकारख्याघ्रव्यथितमिममत्यन्तकृपया
प्रबोध्य प्रस्वापात्परमवितवान्मामसि गुरो॥ ५१९॥

महास्वमे, मायाकृतजनिजरामृत्युगहने, भ्रमन्तं, क्लिश्यन्तं, बहुलतरतापैः, अनुदिनम्॥
अहंकारव्याघ्रव्यथितं, इमं, अत्यन्तकृपया, प्रबोध्य, प्रस्वापात्, परं, अवितवान्, मां, असि, गुरो॥ ५१९॥

हे श्री गुरुमहाराज ! मायाकृत जो जन्म, जरा, मृत्यु है इन सबसे कठिन महास्वप्न सदृश इस संसार के अत्यन्त दुःख है उस दुःख से क्लेश पाकर रातदिन भ्रमण में प्राप्त और अहंकार रूप महाव्याघ्र से अत्यंत व्यथित मुझ दीन को निद्रा से जगा कर आपने मेरी नहुत बड़ी रक्षा की है।॥ ५१९॥

नमस्तस्मै सदैकस्मै कस्मैचिन्महसे नमः,
यदेतद्विश्वरूपेण राजते गुरुराज ते॥ ५२०॥

नमः, तस्मै, सदा, एकस्मै, कस्मैचित्, महसे, नमः॥
येत्, एतत्, विश्वरूपेण, राजते, गुरुराज, ते॥५२०॥

हे गुरुराज ! आपको सदा नमस्कार करता हूँ जो आप अनिर्वचनीय, स्वयं प्रकाश, ब्रह्मरूप होकर, इस विश्वरूप से विराजमान हैं॥ ५२०॥

इति नतमवलोक्य शिष्यवर्य समधिगतात्मसुखं प्रबुद्धतत्त्वम्,
प्रमुदितहृदयः स देशिकेन्द्रः पुनरिदमाह वचः परं महात्मा॥ ५२१॥

इति, नंतं, अवलोक्य, शिष्यवर्य, समधिगतात्मसुखं, प्रबुद्धतत्त्वम्,
प्रमुदितहृदयः, सः, देशिकेन्द्रः, पुनः, इदं, आह, वचः, परं, महात्मा॥ ५२१॥

परमतत्त्व को जानकर आत्मसुख को प्राप्त हुए उस शिष्य श्रेष्ठ को प्रमाण करते देख कर प्रसन्न हृदय से उपदेष्टा महात्मा श्री गुरु महाराज फिर यह वचन बोले॥ ५२१॥

गुरु का पुन: शिष्य को उपदेश

ब्रह्मप्रत्ययसंततिर्जगदतो ब्रह्मैव सत्सर्वतः
पश्याध्यात्मदृशा प्रशान्तमनसा सर्वास्ववस्थास्वपि,
रूपादन्यदवेक्षितं कियभितश्चक्षुष्मतां दृश्यते
तद्वब्रह्मविदः सतः किमपरं बुद्धे विहारास्पदम्॥ ५२२॥

ब्रह्मप्रत्ययसन्ततिः, जगत्, अतः, ब्रह्म, एव, सत्, सर्वतः, पश्य, अध्यात्मदृशा,
प्रशान्तमनसा, सर्वासु, अवस्थासु, अपि॥
रूपात्, अन्यत्, अवेक्षितं, किं, अभितः, चक्षुष्मतां, दृश्यते, तद्वत्, ब्रह्मविदः,
सतः, किं, अपरं, बुद्धेः, विहारास्पदम्॥५२२॥

हे शिष्य ! शांतचित्त होकर अपनी आध्यात्म दृष्टि से सब अवस्थाओं में देखो कि यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्म प्रतीति का प्रवाह ही है इसलिये सब ब्रह्ममय है। जैसा नेत्रों से चारों तरफ देखनें पर नेत्रवान् पुरुषों को रूप से अन्य दूसरा कुछ भर्र नहीं दिखाई देता वैसे ब्रह्मज्ञानी की

बुद्धि का विषय सच्चिदानन्द परब्रह्म से भिन्न कुछ अन्य नहीं है॥ ५२२॥

कस्तां परानन्दरसानुभूतिमुत्सृज्य शून्येषु रमेत विद्वान्,
चन्द्रे महालादिनि दीप्यमाने चित्रेन्दुमालोकयितुं क इच्छेत्॥ ५२३॥

कः, तां, परानन्दरसानुभूतिं, उत्सृज्य, शून्येषु, रमेत, विद्वान॥
चन्द्रे, महालादिनि, दीप्यमाने, चित्रेन्दु, आलोकयितुं, कः, इच्छेत्॥ ५२३॥

कौन ऐसा विद्वान् होगा जो परमानन्द रस के अनुभव को छोडकर मिथ्या विषयों में रमण करेगा। जैसे परम प्रकाशक सुख प्रद चन्द्रमा का दर्शन छोडकर कौन ऐसा मनुष्य होगा जो चित्र रुपी अथवा लिखे हुए चन्द्रमा का दर्शन करेगा॥ ५२३॥

असत्पदार्थानुभवेन किञ्चिन्नास्ति तृप्तिर्न च दुःखहानिः,
तदद्वयानन्दरसानुभूत्या तृप्तः सुखं तिष्ठ सदात्मानष्ठया॥ ५२४॥

असंत्पदार्थानुभवेन, किञ्चित्, न, हि, अस्ति, तृप्तिः, न, च, दुःखहानिः॥
तंत्, अद्वयानन्दरसानुभूत्या, तृप्तः, सुखं, तिष्ठ, सदात्मनिष्ठया॥ ५२४॥

असत् पदार्थों के अनुभव करने से न तो तृप्ति होगी और न दुःख का नाश ही होगा। इसलिये अद्वयानन्द रस के अनुभव से तृप्त होकर आत्मनिष्ठा से सदा बर्ताव करो॥ ५२४॥

स्वमेव सर्वथा पश्यन् मन्यमानः स्वमदयम्,
स्वानन्दमनुभुञ्जानः कालं नय महामते॥ ५२५॥

स्व, एव, सर्वथा, पश्यन्, मन्यमानः, स्वं, अद्वयम्॥
स्वानन्दं, अनुभुञ्जानः, कालं, नय, महामते॥ ५२५॥

हे महाबुद्धे ! आत्मस्वरूप को सर्वथा, सब तरफ देखते हुए आत्मा को नाशरहित मानो और आत्मानन्द के रस का भोग करते हुए समय को व्यतीत करो॥ ५२५॥

अखण्डबोधात्मनि निर्विकल्पे विकल्पनं व्योम्नि पुरप्रकल्पनम्,
तदद्वयानन्दमयात्मना सदा शान्ति परामेत्य भजस्व मौनम्॥ ५२६॥

अखण्डबोधात्मनि, निर्विकल्पे, विकल्पनं, व्योम्नि, पुरप्रेकल्पनम्॥
तत्, अद्वयानन्दमयात्मना, सदा, शान्ति, परा, एत्य, भजस्व, मौनम्॥ ५२६॥

निर्विकल्प, अखण्ड बोधात्मक परब्रह्म में जो अनेकों प्रकार की कल्पानाएं है वह सब आकाश में नगर की कल्पना के समान मिथ्या हैं, इसलिए अद्वितीय आनन्दमय आत्मस्वरूप से मौन होकर परम शान्ति को धारण करो॥ ५२६॥

तूष्णीमवस्था परमोपशान्तिर्बुद्धेरसत्कल्पविकल्प हेतोः,
ब्रह्मात्मना ब्रह्मविदो महात्मनो यत्राद्वयानन्दसुखं निरन्तरम्॥ ५२७॥

तूष्णी, अवस्था, परमा, उपशान्तिः, बुद्धेः, असत्कल्पविकल्पहेतोः॥
ब्रह्मात्मना, ब्रह्मविदः, महात्मनः, यत्र, अद्वयानन्दसुखं, निरन्तरम्॥ ५२७॥

असत्, कल्प, विकल्प का कारण जो बुद्धि है, उसे शांत करने के लिए मौन अवस्था का प्राप्त होना ब्रह्मा ज्ञानी महात्मा के लिये उत्तम है। जिस अवस्था में ब्रह्मस्वरूप होकर अद्वितीयानन्द सुख का निरन्तर अनुभव होता है॥ ५२७॥

नास्ति निर्वासनान्मौनात्परं सुखकृदुत्तमम्,
विज्ञातात्मस्वरूपस्य स्वानन्दरसपायिनः॥ ५२८॥

न, अस्ति, निर्वासनात्, मौनात्, परं, सुखकृत्, उत्तमम्॥
विज्ञातात्मस्वरूपस्य, स्वानन्दरसपायिनः॥ ५२८॥

जिसने आत्मस्वरूप को जान लिया और जो आत्मानन्द रस का पान करता है उनकी वासना को त्याग देना और मौन धारण करना, इससे अतिरिक्त दूसरा कुछ अन्य सुखदायक नहीं है।॥ ५२८॥

गच्छंस्तिष्ठन्नुपविशञ्छयानो वाऽन्यथापि वा,
यथेच्छया वसेदिदानात्मारामः सदा मुनिः॥ ५२९॥

गच्छन्, तिष्ठन्, उपविशन्, शयानः, वा, अन्यथा, अपि, वो॥
यथा, इच्छया, वसेत्, विद्वान्, आत्मारामः, सदा, मुनिः॥ ५२९॥

विद्वान मुनिजनों को उचित है कि चलते-फिरते, खडे होते, बैठते, सोते हुए सर्वथा अपनी आत्मा में रमण करता हुआ इच्छा अनुकूल वास करें॥ ५२९॥

न देशकालासनदिग्यमादिलक्ष्याद्यपेक्षा प्रति बद्धवृत्तेः,
संसिद्धतत्त्वस्य महात्मनोऽस्ति स्ववेदने का नियमाद्यवस्था॥ ५३०॥

न, देशकालासनदिग्यमादिलक्ष्याद्यपेक्षा, अप्रतिबद्धवृत्तेः॥
संसिद्धतत्त्वस्य, महात्मनः, अस्ति, स्ववेदने, को, नियमाद्यवस्था॥ ५३०॥

जिस महात्मा की चित्त वृत्ति सदैव आत्म स्वरुप में लगी रहती है और जिसने आत्मतत्व की सिद्धि की अवस्था को प्राप्त कर लिया, उस महापुरुष को ध्यान आदि के उपयोगी देश, काल, आसन, दिशा, यम, नियम आदि ध्यान की सामग्री की आवश्यकता नहीं है क्योकि यम, नियम आदि का फल ब्रह्मज्ञान है अत: यदि ब्रह्मज्ञान हो गया तो यह सब व्यर्थ ही है॥ ५३०॥

घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः कोन्ववेक्ष्यते,
विना प्रमाणसुष्टुत्वं यस्मिन् सति पदार्थधीः॥ ५३१॥

घंटः, अयं, इति, विज्ञातुं, नियमः, कः, नु, अवेक्ष्यते॥
विनीं, प्रमाणंसुष्टुत्वं, यस्मिन्, सेति, पदार्थधीः॥ ५३१॥

'जैसा यह घड़ा है ऐसा जानने के लिये किसी नियम की अपेक्षा नहीं होती वैसे ही प्रमाण सौष्ठव के विना भी सत्-ब्रह्म के बोध होने से भला किस पदार्थ की आवश्यकता होती है॥ ५३१॥

अयमात्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते,
न, देशं नापि वा कालं न शुद्धिं वाप्यपेक्षते॥ ५३२॥

अयं, आत्मा, नित्यसिद्धः, प्रमाणे, सति, भासते॥
न, देश, न, अपि, वा, कालं, न, शुद्धिं, वा अपि, अपेक्षते॥ ५३२॥

प्रमाण रहनेसे यह आत्मा नित्य सिद्ध प्रतीत होती है और देशकाल शुद्धि इन सबकी अपेक्षा आत्मज्ञान होने पर नहीं होती॥ ५३२॥

देवदत्तोऽहमित्येतदिज्ञानं निरपेक्षकम्,
तदद् ब्रह्मविदोऽप्यस्य ब्रह्माहमिति वेदनम्॥ ५३३॥

देवेदत्तः, अहं, इति, एतद्, विज्ञानं, निरपेक्षकम्॥
तत्, ब्रह्मविदः, अपि, अस्य, ब्रह्म, अहं, इति, वेदनम्॥ ५३३॥

जिस प्रकार 'मैं देवदत्त हूँ' ऐसे अपने नाम के ज्ञान में किसी नियम की अपेक्षा नहीं होती वैसे ही ब्रह्मज्ञानी का भी 'मैं ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान में किसी की अपेक्षा नहीं होती॥ ५३३॥

भानुनेव जगत्सर्व भासते यस्य तेजसा,

अनात्म कमसत्तुच्छं किं नु तस्यावभासकम्॥ ५३४॥

भानुना, इव, जर्गत्, सर्व, भासते, यस्य, तेजसा॥
अनात्मकं, असत्, तुच्छं, किं, तस्य, अवभासकम्॥ ५३४॥

जैसे सूर्य के उदय होने से जगत प्रकाशित होता है वैसे जिस परब्रह्म के तेज से आत्मा से भिन्न अनित्य, असत्य जगत् प्रकाशित होता है तो उस ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला कोई अन्य कैसे हो सकता है॥ ५३४॥

वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि,
येनार्थवन्ति तं किंनु विज्ञातारं प्रकाशयेत्॥ ५३५॥

वेदशावपुराणानि, भूतानि, सकलानि, अपि॥
येन, अर्थवन्ति, त, किं, विज्ञातारं, प्रकाशयेत्॥ ५३५॥

वेद, शास्त्र, पुराण और समस्त भूतमात्र जिससे अर्थवान होते हैं। उस विज्ञाता ईश्वर को दूसरा कौन प्रकाशित करेगा॥ ५३५॥

एष स्वयंज्योतिरनन्तशक्तिरात्माऽप्रमेयः सक लानुभूतिः,
यमेव विज्ञाय विमुक्तबन्धो जयत्ययं ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः॥ ५३६॥

एषः, स्वयंज्योतिः, अनन्तशक्तिः, आत्मा, अप्रमेयः, सकलानुभूतिः॥
यं, एवं, विज्ञाय, विमुक्तबन्धः, जयति, अयं, ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः॥ ५३६॥

यह आत्मा स्वयं प्रकाशरूप, अनन्त सहक्तिशाली, अप्रमेय और सर्वानुभव स्वरुप है, इस आत्मा को जानने से ब्रह्मज्ञानी बन्धन से मुक्त होकर सबसे उत्तम कहा जाता है।॥ ५३६॥

न खिद्यते नो विषयैः प्रमोदते न सज्जते नापि विरज्यते च,
स्वस्मिन् सदा क्रीडति नन्दति स्वयं निरन्तरानन्दरसेन तृप्तः॥ ५३७॥

न, खिद्यते, नो, विषयैः, प्रमोदते, न, संजते, न, अपि, विरज्यते, च॥
स्वस्मिन्, सदा, क्रीडति, नन्दति, स्वयं, निरन्तरानन्दरसेन, तृप्तः॥ ५३७॥

ब्रह्मज्ञान होने पर योगी लोग न तो खेद को प्राप्त होते हैं, न ही विषय प्राप्त होने से प्रसन्न होते हैं, न किसी में आसक्त होते हैं, न किसी से विरक्त होते हैं, केवल आत्मस्वरूप को पाकर स्वयं सदा आनन्द रस से तृप्त होकर विहार करते हैं।॥ ५३७॥

क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडात वस्तुनि,
तथैव विद्धान रमते निर्ममो निरहं सुखी॥ ५३८॥

क्षुधां, देहव्यथां, त्यक्त्वा, बालः, क्रीडति, वस्तुनि,
तथा, एवं, विद्वान्, रमते, निर्मम, निरहे, सुखी॥ ५३८॥

जैसे भूख व प्यास त्याग कर और देह की व्यथा को भी छोडकर बालक क्रीडा में आसक्त रहता है वैसे ही विद्वान् पुरुष ममता

अहंकार को छोड़कर सुखपूर्वक स्वयं में ही क्रीडा करता है तथा आनंदित होता।॥ ५३८॥

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्षमशनं पानं सरिद्वारिषु स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा स्थितिरभीर्निद्राश्मशाने वने,
वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्माणि॥ ५३९॥

चिन्ताशून्यं, अदैन्यभैक्षं, अंशनं, पानं, सरिद्वारिषु, स्वातन्त्र्येण, निरङ्कुशा, स्थितिः, अभीः, निद्री, शमशाने, वने॥
वस्त्रं, क्षोलनशोषणादिरहितं, दिक्, वा, अस्तु, शय्या, मही, संचारः, निगमोन्तवीथिषु, विदा, क्रीडा, परे, ब्रह्मणि॥ ५३९॥

ब्रह्मज्ञानी चिन्ता और दीनता को त्याग कर समयपर भिक्षा लेकर भोजन करता है और नदियों का जल पीता है। स्वतन्त्र होकर जहां चित्त लगे वहां बैठता और भयसे रहित हो कर श्मशान भूमि में अथवा वन में निद्रा करता है। वस्त्र जो रहे उसको धोने सुखाने का यत्न नहीं करता अथवा दिगंबर अवस्था में ही रहता है। भूमि ही उसकी शय्या है और वेद वेदान्तरूप वन वीथियों में भ्रमण करता हुआ परब्रह्म में क्रीडा रत रहता है ।॥ ५३९॥

विमानमालम्ब्य शरीरमेतद् भुनक्त्यशेषान् विषयानुपस्थितान्,
परेच्छया बालवदात्मवेत्ता योऽव्यक्तलिङ्गोऽननुषक्तबाह्यः॥ ५४०॥

विमानं, आलम्ब्य, शरीरं, एतद्, भुनक्ति, अशेषान्, विषयान्, उपस्थितान्॥
परेच्छया, बालवत्, आत्मवेत्ता, यः, अव्यक्तलिङ्गः, अननुषक्तबाह्यः॥ ५४०॥

आत्मज्ञानी महात्मा पुरुष शरीररूप इस विमान में बैठ कर बिना यत्न उपस्थित संपूर्ण विषयों को बालक के समान भोगता है परन्तु वास्तव में वह ज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप को छिपाकर किसी भी बाह्य विषय में अनुराग नहीं रखता॥ ५४०॥

दिगम्बरो वापि च साम्बरोवा त्वगम्बरो वापि चिदम्बरस्थः,
उन्मत्तवदापि च बालवद्वा पिशाचवद्वापि चरत्यवन्याम्॥ ५४१॥

दिगम्बरः, वा, अपि, च, साम्बरः, वा, त्वगम्बरः, वा, अपि, चिदम्बरस्थः॥
उन्मत्तवत्, वा, अपि, च, बालवत्, वो पिशाचवत्, वा, अपि, चरति, अवन्याम॥ ५४१॥

चैतन्य रुपी वस्त्र धारण कर ब्रह्मज्ञानी माहात्मा वस्त्रहीन, वस्त्र युक्त अथवा चर्माम्बर को धारण कर उन्मत्त के समान, बालक के समान अथवा पिशाच आदि के समान होकर स्वेच्छा से भूमण्डलमें विचरते हैं।॥ ५४१॥

कामानिष्कामरूपी संश्चरत्येकचरो मुनिः,
स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः॥ ५४२॥

कामान्, निष्कामरूपी, सन्, चरति, एकचरः, मुनिः॥

स्वात्मना, एव, सदा, तुष्टः, स्वयं, सर्वात्मना, स्थितः॥ ५४२॥

ज्ञानी पुरुष आत्मस्वरूप में सदा संतुष्ट होकर और सर्वात्मस्वरूप होकर निष्काम रूप से समस्त कर्मो को करते हुए भी सदा ब्रह्म में ही मग्न रहते हैं।॥ ५४२॥

क्वचिन्मूढो विदान क्वचिदपि महाराजविभवः
क्वचिदभ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः,
क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः क्वाप्यविदित
श्वरत्येवं प्राज्ञः सततपरमानन्दसुखितः॥ ५४३॥

क्वचित्, मूढः, विद्वान्, कचित्, अपि, महाराजविभवः, क्वचित्, भ्रान्तः, सौम्यः, क्वचित्, अजगराचारकलितः॥
क्वचित्, पात्रीभूतः, क्वचित्, अवमतः,क्व, अपि, अविदितः, चरति, एवं, प्राज्ञः, सततपरमानन्दसुखितः॥ ५४३॥

ब्रह्म वेत्ता महापुरुष कभी मूढ़, कभी विद्वान् और कभी महाराजाओं के स्वाभाव से युक्त दिखाई देते हैं। वह कभी भ्रान्त, कभी सौम्य और कभी अजगर के आचरण से युक्त होकर निश्छल अवस्था से पड़े रहते हैं। कभी महात्मा बनकर पूजित होते हैं, कभी अनादर प्राप्त करे है, कभी छिपे रहते हैं और कभी प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार ज्ञानी महात्मा सदा परमानन्द सुख से सुखी होकर विचरते है॥ ५४३॥

निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः,

नित्यतृप्तोप्यभुञ्जानोप्यसमः समदर्शनः॥ ५४४॥

निर्धनः, अपि, सदा, तुष्टः, अपि, असंहायः, महाबलः॥
नित्यतृप्तः, अपि,अभुञ्जानः, अपि, असमः, समदर्शनः॥ ५४४॥

ब्रह्मज्ञानी यद्यपि निर्धन हो तब भी सदा संतुष्ट रहते है। यद्यपि उनका कोई सहायक नहीं रहता तो भी वह महाबलिष्ठ ही रहते हैं। भोजन भी नहीं करते तब भी सदा तृप्त ही रहते हैं। यदि वह सबके तुल्य नहीं है तब भी सबको अपने समान ही दिखाई देते हैं॥ ५४४॥

अपि कुर्वन्नकुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि,
शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः॥ ५४५॥

अपि, कुर्वन्, अकुर्वाणः, च, अभोक्ता, फलभोगी, अपि॥
शरीरी, अपि, अशरीरी, एषः, परिच्छिन्नः, अपि, सर्वगः॥ ५४५॥

यद्यपि ज्ञानी पुरुष समस्त बाह्य कर्म करते हुए भी अकर्ता हैं। यद्यपि ज्ञानी पुरुष अभोक्ता है तब भी फल भोगते हैं। शरीरधारी होने पर भी अशरीरी हैं और परिच्छिन्न होने पर भी सर्वव्यापक हैं॥ ५४५॥

अशरीरं सदा सन्तमिमं ब्रह्मविदं क्वचित्,
प्रिया प्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभाशुभे॥ ५४६॥

अशरीरं, सः, सन्तं, इमं, ब्रह्मविदं, क्वचित्,

प्रियाप्रिये, न, स्पृशतः, तथा, एव, च, शुभाशुभे॥ ५४६॥

ऐसे ब्रह्मज्ञानी यद्यपि सदा वर्तमान हैं तब भी वह शरीर रहित हैं इसलिये उनको प्रिय, अप्रिय, शुभ, अशुभ स्पर्श भी नहीं कर सकते॥ ५४६॥

स्थूलादिसम्बन्धवतोऽभिमानिनः सुखं च दुःखं च शुभाशुभे च,
विध्वस्तबन्धस्य सदात्मनो मुनेः कुतः शुभं वाप्यशुभ फलं वा॥ ५४७॥

स्थूलादिसम्बन्धवतः, अभिमानिनः, सुखं, च, दुःखं, च, शुभाशुभे, च॥
विध्वस्तबन्धस्य, सदात्मनः, मुनेः, कुतः, शुभं, वा, अपि, अशुभं, फलं, यो॥ ५४७॥

इस स्थूल देह से सम्बन्ध करनेवाले जो अभिमानी पुरुष हैं उन्हीं को सुख और दुःख शुभ और अशुभ होते हैं जो इस स्थूल देह के बन्धन से मुक्त हो गए उनको शुभ अशुभ का फल कहाँ से प्राप्त॥ ५४७॥

तमसा ग्रस्तवद्भानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः,
ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम्॥ ५४८॥

तमसा, ग्रस्तवत्, भानात्, अग्रस्तः, अपि, रविः, जनैः॥
ग्रस्तः, इति, उच्यते, भ्रान्त्या, हि, अज्ञात्वा, वस्तुलक्षणम्॥ ५४९॥

तद्वद्देहादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम्,

पश्यन्ति देहवन्मूढाः शरीराभासदर्शनात्॥ ५४९॥

तद्वत्, देहादिबन्धेभ्यः, विमुक्तं, ब्रह्मवित्तमम्॥
पश्यन्ति, देहेवत, मूढाः, शरीराभासदर्शनात्॥ ५४९॥

जैसे राहु सूर्य को ग्रस नहीं सकता किन्तु मनुष्यों की दृष्टि में भेद उत्पन्न करता है जिससे यथा वस्तु को न समझने वाले मनुष्य सूर्य को रहू से ग्रस्त कहते हैं वैसे की देह आदि बन्धन से विमुक्त उत्तम ब्रह्मज्ञानी का आभास मात्र शरीर देखने के कारण मूढजन उन्हें देह से बद्ध मानते हैं॥ ५४८-५४९॥

अहिर्निलर्बयनी वायं मुक्त्वा देहं तु तिष्ठति,
इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किञ्चित्प्राणवायुना॥ ५५०॥

अहिः, निलर्बयनीं, व, अयं, मुक्त्वा, देहं, तु, तिष्ठति॥
इतः, ततः, चाल्यमानः, यत्, किञ्चित्, प्राणवायुना॥ ५५०॥

मुक्त मनुष्य का शरीर तो सांप की केंचुली के समान प्राण वायु द्वारा चंचलता को प्राप्त कर अन्यत्र स्थित होता है वैसे ज्ञानी जन भी इस देह का स्नेह छोडकर वर्तमान होते हैं ।। ५५०॥

स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम्,
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु॥ ५५१॥

स्रोतसा, नीयते, दारु, यथा, निम्नोन्नतस्थलम्॥
दैवेन, नीयते, देहः, यथाकालोपभुक्तिषु॥ ५५१॥

जैसे जल के प्रवाह से काष्ठ नीचे ऊँचे जमीन पर प्राप्त होता है वैसे ही प्रारब्ध कर्म से यह देह भी काल के अनुकूल भोगों को प्राप्त करता है।॥ ५५१॥

प्रारब्धकर्मपरिकल्पितवासनाभिः संसारि वच्चरति भुक्तिषु मुक्तदेहः, सिद्धः स्वयं वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्पशून्यः॥ ५५२॥

प्रारब्धकर्मपरिकल्पितवासनाभिः, संसारिवत्, चरति, भुक्तिषु, मुक्तदेहः॥
सिद्धः, स्वयं, वसति, साक्षिवत्, अत्र, तूष्णीं, चक्रस्य, मूलं, इव, कल्पविकल्पशून्यः॥ ५५२॥

ब्रह्मज्ञानी पुरुष का जो ममता से रहित यह देह है, वह देह प्रारब्ध कर्म से कल्पित अनेकों प्रकार की वासना के प्रवाह से भोग्य वस्तुओं को संसारी मनुष्यों के समान भोगता है और साक्षी के समान इस विषय में मौन होकर इस देह के तारतम्य को देखता है। ठीक उसी प्रकार जैसे रथ के चक्र में जो मूल है जिसको धूरा भे कहते हैं वह मूल क्रियाशून्य होकर चक्र के वेग को साक्षीरूप से देखता है परन्तु स्वयं कोई यत्न नहीं करता है।॥ ५५२॥

नैवेन्द्रियाणि विषयेषु नियुक्त एष नैवापयुक्त उपद र्शनलक्षणस्थः,

नैव क्रियाफलमपीपदवेक्षते स सानन्दसान्द्ररसपानसुमत्तचित्तः॥ ५५३॥

न, एवं, इन्द्रियाणि, विषयेषु, नियुक्ते, एषः, न, एव, अपयुङ्क्ते, उपदर्शनलक्षणस्थः॥
न, एव, क्रियाफलं, अपि, ईषत, अवेक्षते, सः, सानन्दसान्द्रसपानसुमत्तचित्तः॥ ५५३॥

ब्रह्मज्ञानी पुरुष सदैव आत्म रूप में स्थिर होकर, विषयों में इन्द्रियों को न तो कभी नियुक्त करते हैं न ही निवृत्त करते और न कभी कर्मों के फल की ओर ध्यान देते हैं। केवल ब्रह्मानन्दरस का पान कर मतवाला होकर विचरण करते हैं।॥ ५५३॥

लक्ष्यालक्ष्यगतिं त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना,
शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः॥ ५५४॥

लक्ष्यालक्ष्यगति, त्यक्त्वा, यः, तिष्ठेत्, केवलात्मना॥
शिवः, एवं, स्वयं, साक्षात्, अयं, ब्रह्मविदुत्तमः॥ ५५४॥

लक्ष्य अलक्ष्य वस्तुओ की गति को त्यागकर केवल एक आत्म स्वरूप से जो ज्ञानीजन सदा स्थिर होते हैं वह साक्षात् शिवस्वरूप हैं और ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम हैं॥ ५५४॥

जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः,

उपाधिनाशाद् ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति निर्द्वायम॥ ५५५॥

जीवेन्, एव, सदा, मुक्तः, कृतार्थः, ब्रह्मवित्तमः॥
उपाधि नाशात्, ब्रह्म, एंव, सन्, ब्रह्म, अपि, ति, निर्द्वायम॥ ५५५॥

जिनकी चित्त से उपाधि नष्ट हो गयी वही उत्तम ब्रह्मज्ञानी कृतकृत्य हैं और सदा जीवन मुक्त होकर, नित्य य ब्रह्मरूप को प्राप्त होते हैं॥ ५५५॥

शैलूषो वेषसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान्,
तथैव ब्रह्मविच्छ्रेष्ठः सदा ब्रह्मैव नापरः॥ ५५६॥

शैलूषः, वेसद्भावाभावयोः, च, यथा, पुमान्॥
तथा, एव, ब्रह्मवित् श्रेष्ठः, सदा, ब्रह्म, एव, न, अपरः॥ ५५६॥

जैसे नट अनेकों प्रकार के स्वरूप धारण करने पर अथवा उसके अभाव में पुरुष रूप ही रहता है वैसे ही ब्रह्म ज्ञानी समस्त अवस्थाओं में सदा ब्रह्म रूपही है॥ ५५६॥

यत्र क्वापि विशीर्ण सत्पर्णमिव तरोर्वपुः पतताात्,
ब्रह्मीभूतस्य यतेः प्रागेव तच्चिदग्निना दग्धम्॥ ५५७॥

यत्र, क्व, अपि, विशीर्ण, सत्, पर्ण, ईव, तरोः, वपुः, पतताात्,
ब्रह्मीभूतस्य, यतेः, प्राक्, एव, तत्, चिदग्निना, दग्धम्॥ ५५७॥

जैसे वृक्ष के पत्ते सूखने पर जहां तहां गिरते हैं, वैसे ही ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त यति का शरीर पहले से ही चैतन्य रूप अग्नि से दग्ध रहता है इसलिये वह चाहे कहीं भी गिर कर शीर्ण हो जाए इसमें ज्ञानी की कोई क्षति नहीं है॥५५७॥

सदात्मनि ब्रह्मणि तिष्ठतो मुनेः पूर्णादयानन्दम यात्मना सदा,
न देशकालाड्यूक्सधुचितप्रतीक्षा त्वङ्मांसविट्पिण्डविसर्जनाय॥ ५५८॥

सदात्मनि, ब्रह्मणि, तिष्ठतः, मुनेः, पूर्णाद्वयानन्दमयात्मना, सः॥
न, देशकालाधुचितप्रतीक्षा, त्वङ्मांसविट् पिण्डविसर्जनाय॥ ५५८॥

पूर्ण अद्वयानन्दमय होकर सच्चिदानन्दात्मक परब्रह्म मे जो मुनि सदा वर्तमान हैं उनका त्वचा, मांस, विष्ठा आदि से परिपूर्ण यह जो देहपिण्ड है इसको त्याग करने के लिये पवित्र देशकाल आदि की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती क्योकि वह तो स्वयं सदा मुक्त हैं॥ ५५८॥

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः,
अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्ततः॥५५९॥

देहस्य, मोक्षः, नो, मोक्षः, न, दण्डस्य, कमण्डलोः,
अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षः, मोक्षः, यतः, ततः॥ ५५९॥

देह का मोक्ष होना मोक्ष नहीं है और दण्डक मण्डलु का त्याग करना भी मोक्ष नहीं है किन्तु हृदय की अविद्या रूप ग्रंन्थि का नाश होना ही मोक्ष है॥ ५५९॥

कुल्यायामथ नद्यां वा शिवक्षेत्रेऽपि चत्वरे,
पर्ण पतति चेत्तेन तरोः किं नु शुभाशुभम्॥ ५६०॥

कुल्यायां, अथ, नद्यां, वा, शिवक्षेत्रे, अपि, चत्वरे॥
पर्ण, पतति, चेत्, तेन,तरोः, कि,नु, शुभाशुभम्॥ ५६०॥

वृक्ष का पत्ता चाहे किसी तालाब में, चाहे किसी नदी में, चाहे काशी क्षेत्र में अथवा चाहे चबूतरे पर गिरे, उस पत्ते के गिरने से वृक्ष का कोई हानि लाभ नहीं होता वैसे ही ब्रह्मज्ञानी का शरीर चाहे कहीं भी गिरे, ज्ञानी को इसमें कोई हर्ष विषाद नहीं होता॥ ५६०॥

पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य नाशवदेहन्द्रियप्राणधियां विनाशः,
नैवात्मनः स्वस्य सदात्मकस्या नन्दाकृतेर्वृक्षवदस्ति चैषः॥ ५६१॥

पत्रस्य, पुष्पस्य, फलस्य, नाशवत्, देहेन्द्रियप्राणधियां, विनाशः॥
एवं, आत्मनः, स्वस्य, सदात्मकस्य, आनान्दाकृतेः, वृक्षवत्, अस्ति, च, एषः॥ ५६१॥

जैसे पत्ते, पुष्प और फल का नाश होने से वृक्ष का नाश नहीं होता वैसे ही देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि इन सबका नाश होने से भी आनन्दरूप आत्मा का कभी नाश नहीं होता।॥ ५६१॥

प्रज्ञानघन इत्यात्मलक्षणं सत्यसूचकम्,
अनूद्यौपाधिकस्यैव कथयन्ति विनाशनम्॥ ५६२॥

प्रज्ञानधनः, इति, आत्मलक्षणं, सत्यसूचकम्॥
अनूद्य, औपाधिकस्य, एव, कथयन्ति, विनाशनम्॥ ५६२॥

सत्य का सूचक 'प्रज्ञान घन' यह जो विशेषण है वह आत्मलक्षण का अनुवाद कर उपाधि के ही नाश का वर्णन करता है॥ ५६२॥

अविनाशी वा अरेऽयमात्मति श्रुतिरात्मनः,
ब्रवीत्यविनाशित्वं विनश्यत्सु विकारिषु॥ ५६३॥

अविनाशी, वा, अरे, अयं, आत्मा, इति, श्रुतिः, आत्मनः॥
ब्रवीति, अविनाशित्वं, विनश्यत्सु, विकारिषु॥ ५६३॥

विकारी जो देह आदि स्थूल सूक्ष्म पदार्थ है इन सबका नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। 'अविनाशो वारेऽयमात्मा' यह श्रुति स्पष्ट रूप से आत्मा को अविनाशी कहती है।॥ ५६३॥

पाषाणवृक्षतृणधान्यकडङ्गाद्या दग्धा भवन्ति हि मृदेव यथा तथैव,

देहेन्द्रियासुमन आदि सम स्तदृश्यं ज्ञानाग्निदग्धमुपयाति परात्मभावम्॥ ५६४॥

पाषाणवृक्षतृणधान्यकडङ्गाराद्याः, दग्धाः, भवन्ति, हि, मृद, एवं, यथा, तथा, एव॥
देहेन्द्रियासुमन आदि, समस्तदृश्यं, ज्ञानाग्निदग्धं, उपयाति, परात्मभावम्॥ ५६४॥

जैसे पत्थर, वृक्ष, घास, धान्य, भूसा और वस्त्र यह सब नाश होने पर मृत्तिका स्वरूप होजाते हैं वैसे ही देह, इन्द्रिय, प्राण, मन आदि जितने दृश्य पदार्थ हैं वह सब नष्ट होने पर परमात्मा स्वरूप को ही प्राप्त होते हैं॥ ५६४॥

विलक्षणं यथा ध्वान्तं लीयते भानुतेजसि,
तथैव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते॥ ५६५॥

विलक्षणं, यथा, ध्वान्तं, लीयते, भानुतेर्जेसि॥
तथा, एवं, सकलं, दृश्यं, ब्रह्माण, प्रविलीयते॥ ५६५॥

विलक्षण अन्धकार जैसे सूर्य के उदय होने पर सूर्य में ही लीन हो जाता है वैसे समस्त दृश्य पदार्थ ब्रह्मज्ञान होने पर ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं॥ ५६५॥

घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्फुटम्,

तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम्॥ ५६६॥

घटे, नष्टे, यथा,व्योम,व्योमं, एवं, भवति, स्फुटम्,
तथा, एव, उपाधिविलये, ब्रह्म, एव, ब्रह्मविद्, स्वयम्॥ ५६६॥

घड़े का नाश होने से घड़े का आकाश जैसे महाआकाश स्वरूप ही हो जाता है वैसे ही उपाधि का नाश होने पर ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मरूप हो जाता है॥ ५६६॥

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले,
संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः॥ ५६७॥

क्षीरं, क्षीरे, यथा, क्षिप्त, तैलं, तैले, जलं, जले॥
संयुक्तं, एकतां, याति, तथा, आत्मनि, आत्मविद्, मुनिः॥ ५६७॥

जैसे दूध को दूध में मिलाने से, तेल को तेल में मिलाने से, जल को जल में मिलाने से एक ही रूप हो जाता है वैसे ज्ञानी मनुष्य आत्मज्ञान होने पर आत्मस्वरूप ही हो जाते हैं॥ ५६७॥

एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम्,
ब्रह्मभावं प्रपद्यैष यति वर्तते पुनः॥ ५६८॥

एवं, विदेहकैवल्यं, सन्मात्रत्वं, अखण्डितम्॥
ब्रह्मभावं, प्रपद्य, एषः, यतिः, न, आवर्तते, पुनः॥ ५६८॥

इस प्रकार से देह त्याग होने पर अखण्ड सत्तामात्र ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर यतिलोग फिर इस संसार में जन्म नहीं लेते॥ ५६८॥

सदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्मणः,
अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद् ब्रह्मणः कुत उद्भवः॥ ५६९॥

संदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्यादिवर्मणः॥
अमुष्य, ब्राभूतत्वात्, ब्रह्मणः, कुतः, उद्भवः॥ ५६९॥

आत्मा में एकत्व ज्ञान होने से अज्ञान का शरीर जब दग्ध हो जाता है तो ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म रूप ही हो जाता है। फिर पुनः ब्रह्म का जन्म कसे होगा॥ ५६९॥

मायाकलृप्तौ बन्धमोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः,
यथा रज्जौ निष्क्रियायां साभासविनिर्गमौ॥ ५७०॥

मायाकलृप्तौ, बन्धमोक्षौ, न, स्तः, स्वात्मनि, वस्तुतः॥
यथा, रज्जौ, निष्क्रियायां, सर्पाभासविनिर्गमौ॥ ५७०॥

जैसे क्रिया से रहित रस्सी में सर्प का भ्रम होता है फिर वह भ्रम निवृत्त भी हो जाताहै परन्तु रस्सी अपने रूप में ही रहती है वैसे ही माया का कार्य बंधन मोक्ष है जो आत्मा में कभी नहीं होता, आत्मा सदा एक रूप ही रहता है।॥ ५७०॥

आवृतेः सदसत्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे,
नावृतिब्रह्मणः काचिदन्याभावादनावृतम्॥ ५७१॥
यद्यस्त्यदैतहानिः स्याद् दैतं नो सहते श्रुतिः॥

आवृतेः, सदसत्त्वाभ्यां, वक्तव्ये, बन्धमोक्षणे॥
न, आवृतिः, ब्रह्मणः, काँचित्, अन्याभावात्, अनावृतम्॥ ५७२॥
यदि, अस्ति, अद्वैतहानिः, स्यात्, दैतं, नो, सहते, श्रुतिः॥

अज्ञान की आवरणशक्ति रहनेसे बन्धन होता है और आवरणशक्ति का अभाव होने से मोक्ष होता है। उस आवरणशक्ति का ब्रह्ममें अभाव होने से ब्रह्म का बन्धन मोक्ष भी नहीं है। क्योंकि यदि ब्रह्म में भी आवरणशक्ति होगी, अर्थात् यदि ब्रह्म भी आवरणशक्ति से आवृत होगा तो ब्रह्म में अद्वैत सिद्ध नहीं होगा और ब्रह्म में द्वैतभाव होना यह सर्वथा श्रुति के विरुद्ध है।॥ ५७१॥

बन्धं च मोक्षं च मृषैव मूढा बुद्धेर्गुणं वस्तुनि कल्पयन्ति,
दृगावृति मेघकृतां यथा रवौ यतोऽद्वयासङ्गचिदेतदक्षरम्॥ ५७२॥

बन्धं, च, मोक्षं, च, मृषा, एव, मूढाः, बुद्धेः, गुंणं, वस्तुनि, कल्पयन्ति॥
दृगावृतिं, मेघकृतां, यथा, रवौ, यतः, अद्वया सङ्गचित्, एतत्, अक्षरम्॥ ५७२॥

बंधन और मोक्ष दोनों बुद्धि के गुण हैं। उस बन्ध मोक्ष को मूढ मनुष्य अद्वयानन्द परब्रह्मवस्तु में कल्पना करते हैं। जैसे मेघ के द्वारा अपनी दृष्टि के ढक जाने से सूर्य को ढका हुआ कहा जाता है उसी प्रकार ब्रह्म भेद से रहित, असङ्ग,चैतन्यरूप, अविनाशी है ऐसे ब्रह्म का बन्धन मोक्ष क्यों होगा॥ ५७२॥

अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि,
बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः॥ ५७३॥

अस्ति, इति, प्रत्ययः, यः, च, यः, च, न, अस्ति, इति, वस्तुनि॥
बुद्धेः, एवं, गुणौ, एतौ, न, तुं, नित्यस्य, वस्तुनः॥ ५७३॥

आत्मवस्तु में जो अस्ति और नास्ति प्रतीति है यह दोनों प्रतीति बुद्धि का ही गुण हैं। नित्य वस्तु जो आत्मा है उसका गुण नहीं है क्योंकि आत्मा अस्ति नास्ति इन दोनों प्रतीतियों से विलक्षण है॥ ५७३॥

अतस्तौ मायया कलृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि,
निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने॥ ५७४॥
अदितीये परे तत्त्वे व्योमवत्कल्पना कुतः॥

अतः, तौ, माया, कृलृप्तौ, बन्धमोक्षौ,न, च, आत्मनि॥
निकले, निष्क्रिये, शान्ते, निवेद्ये, निरञ्जने॥ ५७४॥
अद्वितीये, परे, तत्त्वे, व्योमवत्, कल्पना, कुतः,

इस कारण आत्मा में बंधन और मोक्ष दोनों माया से कल्पित हैं, वस्तुत: नहीं है क्योंकि कला क्रिया से रहित, शान्त, निरवयव, निरंजन, अद्वितीय, आकाशवत्, निर्लिप्त परब्रह्म में कल्पना कैसे हो सकती है॥ ९७४॥

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः,
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥ ५७५॥

न, निरोधः, न, च, उत्पत्तिः, न, बन्धः, न, च, साधकः॥
न, मुमुक्षुः, न, वै, मुक्तः, इति, एषा, परमार्थता॥ ५७५॥

आत्मवस्तु में न कोई विरोध है, न उत्पत्ति है, न बन्धन है, न साधक है, न मोक्ष की इच्छा है ना मुक्ति है, सबसे विलक्षण परमार्थ वस्तु आत्मा ही है ॥ ५७५॥

सकलनिगमचूडास्वान्तसिद्धान्तरूपं
परमिदमतिगुह्यं दर्शितं ते मयाद्य,
अपगतकलिदोष कामनिर्मुक्तबुद्धिं
खसुतवदसकृत्वा भावयित्वा मुमुक्षुम्॥ ५७६॥

सकलनिगमचूडास्वान्तसिद्धान्तरूपं, परं, इदं, अंतिगुह्यं, दर्शितं, ते, मया, अंद्य॥
अपगतकलिदोषं, कोमनिर्मुक्तबुद्धि, स्वसुतवत्, असकृत्, त्वां, भावयित्वा, मुमुक्षुम्॥ ५७६॥

हे वत्स ! कलि के दोषों से मुक्त, कामना से रहित, मोक्ष की इच्छा करने वाले, तुमको अपने पुत्र के समान जानकर, सम्पूर्ण वेदों का सार-शिरोभाग, यह अपने हृदय का परम सिद्धान्त, अतिगोपनीय विषय मैंने तेरे सामने प्रकट किया है॥ ५७६॥

कृत्य कृत्य होकर शिष्य का गुरु को पुन: प्रणाम

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रश्रयेण कृतानतिः,
स तेन समनुज्ञातो ययौ निर्मुक्तबन्धनः॥ ५७७॥

इति, श्रुत्वा, गुरोः, वाक्यं, प्रयेण, कृतानतिः॥
सं:, तेनँ, समर्नुज्ञातः, ययौ, निर्मुक्तबन्धनः॥ ५७७॥

गुरु के ऐसे वचन सुनकर शिष्य ने बडी नम्रता से उन्हें प्रमाण किया और गुरु की आज्ञा पाकर संसार बंधन से मुक्त होकर अपने स्थान को चला गया॥ ५७७॥

गुरुरेव सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः,
पावयन वसुधां सर्वा विचचार निरन्तरः॥५७८॥

गुरुः, एव, सदानन्दसिन्धौ, निर्मग्नमानसः॥
पावयन्, वसुधां, सर्वा, विचचार, निरन्तरः॥ ५७८॥

गुरु भी सच्चिदानन्द ब्रह्म में मग्न मन होकर सम्पूर्ण पृथिवी को पवित्र करते हुए निरन्तर विचरने लगे॥ ५७८॥

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्मलक्षणम्,
निरूपितं मुमुक्षूणां सुखबोधोपपत्तये॥ ५७९॥

विवेक चूड़ामणि ग्रन्थ का उपसंहार

इति, आचार्यस्य, शिष्यस्य, संवादेन, आत्मलक्षणम्,
निरूपितं, मुमुक्षूणां, सुखबोधोपपत्तये॥ ५७९॥

मोक्ष प्राप्त करने के अभिलाभी पुरुष को थोडे परिश्रम से आत्मबोध होने के लिये आचार्य शिष्य के इस संवाद के रुपी आत्मलक्षण का निरूपण किया॥ ५७९॥

हितमिममुपदेशमाद्रियन्तां विहितनिरस्तसमस्त चित्तदोषाः,
भवसुखविरताः प्रशान्तचित्ताः श्रुतिरसिका यतयो मुमुक्षवो ये॥ ५८१०॥

हित, इमं, उपदेशं, आद्रियन्तां, विहितनिरस्तसमस्त चित्तदोषाः॥
भवसुखविरताः, प्रशान्तचित्ताः, श्रुतिरसिकाः, यतयः, मुमुक्षवः, ये॥ ५८०॥

जो यति पुरुष संसारी सुख से वैराग्य को प्राप्त हुए, शान्त चित्त हैं और श्रुतियों में श्रद्धालु होकर मोक्ष की इच्छा रखता है, वह मोक्ष की

कामना करने वाले मुमुक्षुजन समस्त चित्त दोषों को त्याग कर अपने हित के लिये मेरे इस उपदेश का आदर करें॥ ५८०॥

संसाराध्वनि तापभानुकिरणोद्भूतदाहव्यथाखिन्नानां जलकाङ्क्षया मरुभुवि भ्रान्त्या परिभ्राम्यताम्,
अत्यासन्नसुधाम्बुधिं सुखकरं ब्रह्मादयं दर्शयन्त्येषा शङ्करभारती विजयते निर्वाणसंदायिनी॥ ५८१॥

संसाराध्वनि, तापभानुकिरणप्रोद्भतदाहव्यथाखिन्नानां, जल काङ्क्षया, मरुभुवि, भ्रान्त्या, परिभ्राम्यताम्॥
अत्यासन सुधाम्बुधि, सुर्खकरं, ब्रह्म, अद्वयं, दर्शयन्ती, एषा, शङ्करभारती, विजेयते, निर्वाणसंदोयिनी॥ ५८१॥

यह श्री शङ्कराचार्य्य स्वामी की ग्रन्थरूप वाणी है, वह निरंतर जय को प्राप्त हो रही है। यह ग्रन्थ रूप वाणी संसार रूप मार्ग में प्राप्त ताप और अनेक क्लेश रुपी सूर्य की किरणों से दाह और व्यथा इन सबसे दुःख को प्राप्त और ताप शान्ति के लिये जल की इच्छा से निर्जल देशों में भ्रांत होकर परिभ्रमण करते हुए मनुष्यों को सुख प्रदान करने वाले अद्वितीय ब्रह्मरूप, अति निकट, जो अमृतका समुद्र है उसको दिखाती है तथा परम मोक्ष प्रदान करती है॥ ५८१॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्द भवगत्पूज्यपादशिष्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ विवेकचूडामाणः समाप्तः ॥